आत्म-विकास

उत्तरप्रदेश राज्य द्वारा प्रथम पुरस्कार से सम्मानित

आनन्दकुमार

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

प्रथम सस्करण : मई १९४९
द्वितीय सस्करण : मार्च १९५०
तृतीय सस्करण : मई १९५२
चतुर्थ सस्करण . अक्तूबर १९५५
पचम सस्करण : जनवरी १९५८
षष्ठ सस्करण : फरवरी १९६०
सप्तम सस्करण : फरवरी १९६२
अष्टम सस्करण : मार्च १९६४
नवम सस्करण : सितम्बर १९६६
दशम सस्करण : जनवरी, १९७०

मूल्य : [illegible] रुपये

मुद्रक : हरि मुद्रण प्रतिष्ठान द्वारा
शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-३२

ATMA-VIKAS by Anand Kumar
General Knowledge Rs. 7·C0

निवेदन

'आत्म-विकास' का विषय उसके नाम से ही स्पष्ट है। इस ग्रन्थ में मनोविज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, आकृति-विज्ञान, व्यवहार-विज्ञान और अर्थ-विज्ञान आदि मानव-विज्ञान-सम्बन्धी विषयो का अधिक से अधिक उपयोगी, प्रामाणिक एव सारगर्भित सामग्री कम से कम शब्दो में और तर्कसम्मत सरल भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों को इसमें वे सभी बातें संक्षेप में मिलेंगी जिनका जानना एक सामाजिक प्राणी के लिए आवश्यक है। इसमे कोरे सिद्धान्तो की चर्चा नही, व्यावहारिक जीवन का सकेतात्मक वृत्तान्त मिलेगा, प्राचीन और आधुनिक जीवन-विज्ञान का सुन्दर सम्मिश्रण मिलेगा। एक प्रकार से यह जीवन-विषयक एक छोटा-सा विश्व-कोश है। मैं अधिकारपूर्वक यह कह सकता हू कि मैंने इस मौलिक ग्रन्थ को सैकड़ो ग्रन्थो के शास्त्रीय अध्ययन के आधार पर वैज्ञानिक बुद्धि एव आधुनिक दृष्टिकोण से लिखा है। इसके द्वारा पाठको का यदि कुछ भी बुद्धि-वर्द्धन या मनोरजन हुआ, तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक मानूगा।

इस ग्रन्थ को लिखने की प्रेरणा मुझे मेरे मित्र और हिन्दी के सुलेखक, पत्रकार एवं पण्डित ठाकुर राजबहादुरसिंह से मिली थी। इस विषय मे मेरी जितनी जानकारी थी, उसको लिपिबद्ध करने का कष्ट मैंने उनके आग्रह से ही उठाया है। उनके प्रति मुझे उतना ही कृतज्ञ होना चाहिए, जितना कोई उद्योगी किसी उद्योजक के प्रति होता है। प्रकाशक के प्रति भी मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हू, क्योकि उन्होने मेरी इच्छा का सम्मान करके 'आत्म-विकास' को सुन्दर रूप मे प्रकाशित करके यथाशीघ्र जनता के हाथो में पहुंचाने का शुद्ध प्रयास किया है। अन्त मे मैं उन ग्रन्थ-लेखको के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हू जिनके उद्धृत वाक्यो से मेरे ग्रन्थ

का गौरव बढ़ा है। यथास्थान उन ग्रन्थो या ग्रन्थकारो का नामोल्लेख कर दिया गया है।

शीघ्र प्रकाशन के लिए मेरी व्यग्रता के कारण इस पुस्तक में यत्र-तत्र कुछ त्रुटिया रह गई है। विधाता की सृष्टि भी दोषपूर्ण होती है ; अत. मानवकृति का सदोष होना कोई आश्चर्य की बात नही है।

वसन्त-निवास
सुल्तानपुर
२२-३-४६

—आनन्दकुमार

विषय-सूची

आत्म-विकास

१. आत्म-विकास

आत्म-विकास एक प्राकृतिक धर्म है क्योकि मनुष्य स्वभाव से ही महत्त्वाकांक्षी जीव होता है। वह अपनी स्थिति से कभी सन्तुष्ट नही रहता, दूसरो से स्पर्द्धा करता है। ससार के सघर्षमय, प्रतियोगितामय जीवन मे मनुष्य विना आत्मोत्थान किए, विना अपना एक निश्चित स्थान बनाए खड़ा नही रह सकता। सभी महत्त्वानुरागी है, सभी को जीविका, प्रतिष्ठा और सुख-प्राप्ति की चिन्ता रहती है, इसलिए सभी उनके लिए प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसी स्थिति मे सवलता प्राप्त किए विना जीवन मे सफलता प्राप्त करना कठिन है। जगत् का यह प्राकृतिक नियम है कि अचर वस्तुए सचर प्राणियो द्वारा भोग्य होती हैं और प्राणियो में कायर प्राणी वीरो के अन्न (खाद्य) होते है। आत्म-विकास करना एक राष्ट्रीय धर्म भी है, क्योकि महात्मा गाधी के शब्दो मे 'यदि प्रत्येक व्यक्ति आत्मोद्धार कर ले तो सारे देश का उद्धार हो सकता है।' नैतिक, भौतिक, व्यक्तिगत, सामाजिक—सभी दृष्टियो से आत्म-विकास करना मनुष्य का परम कर्तव्य है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना पूर्वज होता है। मनुष्य वाहरी साधनो की सहायता से नही, मुख्यत. आत्मशक्ति द्वारा ही आत्म-विकास करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना विधाता स्वय होता है। दूसरे शब्दो में ईश्वर हमको जैसा बना देता है, हम वैसे ही नही बने रहते। हम वही हैं, जो हम अपने साधनो से अपने को बनाते है। समाज हमारे ईश्वर-निर्मित रूप को उतना मान नही देता, जितना स्वनिर्मित रूप को। सभी द्विज है—एक रूप में वे मनुष्य होकर जन्म लेते हैं, दूसरे रूप मे वे नर-देव, नर-पिशाच नर-पशु या गर्दभ कहे एव माने जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य अपने

को जैसा बनाता है, उसी के अनुसार उसकी गणना होती है। मनुष्याकार का विशेष सम्मान नही होता, बल्कि गुण-कर्म के आधार पर मानवता, दानवता या पशुता की पहचान होती है। आत्मा के पुनर्जन्म मे विश्वास करने से भी इस सत्य को मानना पड़ेगा कि प्रत्येक व्यक्ति स्वय अपना पूर्वज होता है और अपने कर्म के अनुसार फल पाता है—विकास या विनाश को प्राप्त होता है : 'कर्मायत्त फल पुसा बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।'

महाजनो येन गतः स पन्था

आत्मोन्नति कैसे की जाती है, या की जा सकती है—इसपर विचार करना चाहिए। जीवन का क्षेत्र बहुत व्यापक है; अनेक दिशाओ मे लोग अनेक उपायो एव साधनो से आगे बढते हुए देखे जाते है। प्रतिभा-शाली व्यक्ति अवसर के अनुकूल साधनो का निर्माण करते है। विलक्षण प्रतिभावाले प्रायः अपना मार्ग स्वयं बनाते हैं, दूसरो के मार्ग पर नही चलते। कहा भी है कि 'लीक छाड़ि तीनो चले, सायर, सिंह, सपूत' (कबीर)। ऐसी दशा मे किसी एक मार्ग की ओर सकेत करके यह नही कहा जा सकता कि यही सफलता का मार्ग है। केवल कुछ ऐसे मूल गुणो की ओर सकेत किया जा सकता है जो सफल व्यक्तियो के मूल चरित्र में मिलते हैं। उनके आधार पर मनुष्य स्वयं साधना करके अपने जीवन-मार्ग को बना सकता है या ढूढ सकता है। उचित रीति यही है कि जब तक अपने पैरो मे बल और अपनी बुद्धि में स्वतत्र विचार करने की शक्ति न आ जाए, तब तक महत्त्वाकाक्षी व्यक्ति महापुरुषो के कार्य को ही अपना मार्ग मानें। जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में जीवन का विकास कैसे किया जाता है, इसको हम सत्पुरुषो द्वारा प्रयुक्त सिद्धान्तो के आधार पर सक्षेप मे लिखेगे।

आत्म-शक्ति का विकास

आत्म-विश्वास

आत्म-शक्ति की दृढ़ता एव सबलता सब जगह सफलता देती है।

इसके लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। आत्म-विश्वास के बिना मनुष्य मे स्वावलम्बन की प्रवृत्ति ही नही उठती और स्वावलम्बन के बिना वह अपने को उठाने में असमर्थ होता है। महत्त्वाकाक्षी व्यक्ति को आत्मसत्ता में सर्वाधिक विश्वास करना चाहिए। उसमे यह विश्वास होना चाहिए कि उसका जीवन निरर्थक नही है; उसमें कुछ विशेष शक्तिया है, तभी ईश्वर ने उसको मानव-शरीर दिया है, वह तुच्छ होता तो मनुष्य का शरीर न पाकर खटमल या झींगुर का शरीर पाता। यदि आंख से देखने पर अपना शरीर मनुष्य जैसा दिखलाई पडता है तो निश्चित रूप से विश्वास कर लेना चाहिए कि हम भी वही हो सकते है जो कि कोई अन्य मनुष्य-शरीरधारी हो चुका है, और उसके साथ ही अपनी क्षणभगुरता पर नही, बल्कि अपनी ईशता पर विश्वास करना चाहिए। यह विश्वास आत्मस्फूर्ति देता है, मनुष्य के सोए हुए बल को जगाता है।

सुप्रसिद्ध रूसी लेखक गोर्की ने एक बार अपने देश के किसानो के सामने भाषण देते हुए कहा था कि याद रखो कि तुम पृथ्वी के सबसे आवश्यक प्राणी हो।[1] कोई कारण नहीं कि कोई व्यक्ति अपने को अनावश्यक समझे। जब तक वह स्वय अपने को आवश्यक न मानेगा, तब तक दूसरे उसको कैसे आवश्यक मानेंगे। अतएव अपने साथ विश्वासघात न करना चाहिए, अपनी मनुष्यता को पहचानना चाहिए। महाकवि शेक्सपियर ने लिखा है कि सबसे बडी बात यह है कि अपने साथ सच्चे बनो।[2] अपने साथ सच्चे बनने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि मनुष्य अपने को धोखे में न रखे, अपने मनुष्यत्व और मनुष्य-सुलभ शक्तियो मे विश्वास रखे; इस बात पर विश्वास करे कि वह शव की तरह इस भवसागर में बहने के लिए नहीं फेंका गया है; वह जीवित प्राणी है। अतएव सजीव एव शक्तिमान् बनकर भवसागर को तैरकर पार करना उसका धर्म है।

---

1. Remember, you are the most necessary man on the earth.
2. This above all, to thine ownself be true.

आत्म-ज्ञान

दूसरी प्रधान आवश्यकता है आत्म-ज्ञान की। आत्म-ज्ञान का अर्थ है—अपने को पूर्णरूप से पहचानना, अपने बलाबल को जानना, अपनी साधक और बाधक चित्त-वृत्तियो को समझना। अपनी इच्छाओ, कल्पनाओ और विचारधाराओं एवं शरीर-सामर्थ्य को तोलना ही आत्म-ज्ञान है। प्राचीन नीतिकार अप्पय दीक्षित ने लिखा है कि नीतिशास्त्र के पडित, ज्योतिषी, चतुर्वेदी, शास्त्री और ब्रह्मज्ञानी बहुत मिलते हैं, परन्तु अपने अज्ञान को समझनेवाले विरले ही मिलते है :

नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्याः स्वज्ञानज्ञानिनो विरलाः॥

अपने अज्ञान, अपनी अपूर्णता और असमर्थता को समझकर ही अपने को सस्कारित, ज्ञान-गुण से सम‍र्द्धित तथा आत्मशक्ति से समृद्ध बनाया जा सकता है।

आत्म-शुद्धि

आत्म-ज्ञानी वही हो सकता है जो सचाई के साथ स्वयं आत्म-स्वरूप को देखे। शरीर-शास्त्री डॉक्टर आत्म-ज्ञानी नही माना जाएगा। कोई भी व्यक्ति जो अपनी समर्थता और विवशता का विवेचन कर सके, आत्म-ज्ञानी हो सकता है। आत्म-ज्ञान के बाद आत्म-शुद्धि की परम आवश्यकता होती है; क्योकि आत्मा की दैवी सम्पत्तियो को अनेक आसुरी सम्पत्तिया या प्रवृत्तिया उसी प्रकार घेरे रहती है, जैसे प्राचीन ऋषि-मुनियो को दिन में भी निशाचर घेरे रहते थे। अपनी मनोव्याधियो से मुक्त होकर ही मनुष्य स्वस्थचित्त होकर आत्म-विकास कर सकता है। अतएव आत्म-शुद्धि नितान्त आवश्यक है। यह आत्म-शुद्धि रेंडी का तेल पीने से नही, बल्कि मन के मिथ्या विकारो को भगाने से होती है।

मानसिक व्याधियो की सेना बहुत बडी है। उनमे से अधिकांश भय से उत्पन्न होकर स्वय भयोत्पादक हो जाती हैं—जैसे किसी मा की लडकी कुछ दिनो मे स्वय मा बन जाती है। मानसिक भीरुता जीवन की

प्रगति रोक देती है, इसलिए उसके विषय में कुछ जान लेना आवश्यक है। भय मुख्यतः इन कारणों से उत्पन्न होता है :

अज्ञान—किसी विषय को जब मनुष्य नही समझता तो उससे डरता है। अंधेरी कोठरी में जाने से पहले जिस प्रकार भय लगता है, वैसे ही किसी काम में अनभिज्ञ होने पर उसको करने में डर लगता है। प्रकाश से भय स्वभावतः नष्ट हो जाता है—वह चाहे सूर्य-प्रकाश हो या आत्म-प्रकाश अथवा ज्ञान-प्रकाश।

सशय—किसी बात को न समझने से जो सदेह उत्पन्न होता है अथवा समझने पर भी स्वभाववश जो विचिकित्सा की भावना होती है उससे भय तत्काल उत्पन्न होता है। मन मे शका होने पर छोटी वस्तु भी बड़ी लगती है, झाड़ी में भी भूत दिखलाई पडता है। संदेह से भ्रम और भ्रम से निराशा उत्पन्न होती है।

उदासीनता—नीरसता या उदासीनता से जीवन-रथ के दो मुख्य घोड़े—आशा और उत्साह—मर जाते हैं और मनुष्य को ससार अंध-कारमय, मायामय और भयदायक लगता है। विरक्ति से निर्भीकता की नही वल्कि निराशा और भय की सृष्टि होती है।

अनिश्चितता—मन की अस्थिरता या अनिश्चितता अथवा उच्छृं-खलता से जो व्यग्रता उत्पन्न होती है, वह भी अन्तत. भय का कारण होती है। मनुष्य जब दृढमति होकर सप्रयोजन एक निश्चित दिशा की ओर नियम से चलता है तो संकटपूर्ण परिस्थिति मे भय उसको नही लगता।

अनैतिकता—यह भय की बड़ी मां है। चरित्र की निर्बलता से मनुष्य पद-पद पर डरता है। शारीरिक अपराध से ही नही, मानसिक अपराध से भी उसके भय का बीजारोपण होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, स्वार्थ, घृणा, प्रतिकार-भावना और अनुचित पक्षपात से भीतर-भीतर आत्मा कांपती है। मिथ्याभाषण, मिथ्याव्यवहार अथवा मिथ्या-विश्वास या अन्धविश्वास से तो भय अवश्य ही बढता है। हिंसा या

क्रूरता से भय का भयानक संचार होता है। फ्रास के एक महामान्य ग्रथ-कार ने लिखा है कि अत्याचार और भय परस्पर हाथ मिलाते है, एक-दूसरे के सखा होते हैं।[1] भयभीत दशा में मनुष्य क्रूरता करता है और क्रूरता करने के बाद उसको भय लगता है। मनुष्य अनैतिक आचरण से भयभीत होता है और भयभीत होने पर अनैतिक आचरण करता है। नैतिक पक्ष प्रबल होने पर एक व्यक्ति में भी दस हज़ार व्यक्तियो का मनोबल आ जाता है।

अशक्तता—भय और अशक्तता भी एक-दूसरे के बाप-बेटे हैं। किसी भी प्रकार की निर्बलता मे प्रतिपक्षी की चिन्ता होती है। स्वास्थ्य के निर्बल होने पर रोग का, मन के निर्बल होने पर परिस्थितियो का और व्यक्तित्व के निर्बल होने पर शत्रु का भय मन में आता है। इसी प्रकार भयत्रस्त रहने पर सभी बातो में अशक्तता आ जाती है। घबराहट और रोगजन्य अशक्तता—दोनों से नाड़ी की गति बढती है, हृदय धड़कता है। इसी से समझना चाहिए कि भय और अशक्तता का प्रभाव एक-सा होता है। जब मनुष्य अपने को अशक्त पाता है, तभी वह वेदना या वेदना की कल्पना से भयाक्रान्त होता है। छोटे बच्चे अशक्त होते हैं, तभी तो वे बात-बात मे डरकर चिल्लाते हैं। अशक्त होने पर दूसरो से ही नही, अपने से भी डर लगता है। क्षीणकाय व्यक्ति सदैव डरता है कि कही उसके हृदय की गति न रुक जाए। शरीर और मन से दुर्बल बच्चे कभी-कभी अपने चिल्लाने की आवाज से चौंकते है।

अयोग्यता—अयोग्यता के कारण मनुष्य को यह भय सदा बना रहता है कि कही कोई भूल न हो जाए और भय से प्रायः भूल हो ही जाती है क्योंकि मन में भय रहने से रही-सही योग्यता भी स्फुटित नही होने पाती, मनुष्य की बोली तक बन्द हो जाती है; वह हक्का-बक्का हो जाता है।

अकर्मण्यता—हाथ पर हाथ रखकर बैठने से भय मुह खोलकर सामने खड़ा हो जाता है। आलस्य से पुरुषार्थ क्षीण हो जाता है और भयंकर

---

1. Cruelty and fear shake hands together. —Balzac.

परिस्थितिया मनुष्य को दवा लेती हैं। उसको चारों ओर भय के भूत ही दिखलाई पड़ते हैं। काम के साथ भय निश्चित रूप से समाप्त हो जाता है। जब मनुष्य एक दिशा मे चल पड़ता है तो भय उसके पैरो के नीचे आ जाता है। युद्धस्थलो मे यह देखा गया है कि युद्धारम्भ के पूर्व बहुत-से सिपाही भावी सहार की कल्पना से भयभीत रहते है, परन्तु युद्ध के प्रारम्भ होने पर भीत सैनिक भी गोलियो की बौछार मे निर्भय होकर दौड़ता है। इसका कारण केवल यह है कि कर्मोद्यत होने पर भय समाप्त हो जाता है; तव मनुष्य अपनी मृत्यु से भी नही डरता। शारीरिक श्रम से मन का भय निश्चय ही भागता है। आलस्य में कल्पनाजन्य भय से अपनी निस्सहायावस्था का जो अनुभव होता है वह महाआत्मनाशी होता है। शारीरिक एव मानसिक शिथिलता के कारण ही प्रायः जीवन में असफलता होती है।

दीनता—चाहे परिवार की दीनता हो या स्वभाव की अथवा साहस-उत्साह की या घन की, वह भय उपजाती है। आर्थिक दीनता से असमर्थता ज्ञात होती है। पारिवारिक दीनता से मनुष्य अपने को हीन मानकर दूसरो से डरता है। स्वभाव की दीनता से स्वामी होने पर भी मनुष्य अपने सेवको तक से डरता है। दीन व्यक्ति सदैव हीनचित्त एवं आकुल-व्याकुल रहता है।

परवशता—परवशता में, सर्वत्र भय ही भय का सामना करना पडता है। परवशता हम उस परिस्थिति को कहते है, जिसमें मनुष्य अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को खो देता है। उस दशा मे वह स्वावलम्वी न होकर पूर्णरूपेण परावलम्वी वन जाता है। पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ स्वतन्त्र व्यक्तित्व बना लेने पर मनुष्य आत्म निर्भर हो जाता है। अपने को किसी के आश्रित कर देने पर अथवा भीड का एक अंग वना देने पर आत्म-शक्ति क्षीण हो जाती है। भीड़ मे अन्धविश्वास और उसके कारण भय के भाव उठते हैं। भीड़ में मिले रहने पर यदि किसी ओर भय का सचार हुआ तो भगदड मच जाती है, लोगो मे परिस्थिति को समझने या उसका सामना करने की

योग्यता नही रह जाती। भीड में भेड़ बनने की प्रवृत्ति उठती है। अकेले रहने पर धैर्य सबल होता है। कोई कुत्ता भी अकेले रहने पर जब विषम परिस्थिति मे पडता है तो तनकर मुकाबला करता है। नेपोलियन का कहना था कि जो अकेले चलते हैं वे तेजी से बढते हैं।[1] और यही निर्भीक हिटलर का भी मत था कि साहसी व्यक्ति यदि अकेला रहे तो महासाहसी बन जाता है।[2] इसका तात्पर्य यह है कि स्वतन्त्र अधिकारी बनने से भय का निवारण होता है।

असहनशीलता—असहनशीलता से भय खड़ा होता है। असहनशील होने पर मनुष्य स्वभाववश छोटी-छोटी बातो को भी भयकर समझता है, क्रोध करता है और अन्त मे विषाद, पश्चात्ताप तथा लोक-भय से पीडित होता है। भावोन्माद से असहनशीलता तीव्र होती है और भावोन्माद या भावुकता से भय की भावना भी तीव्र होती है।

व्यसन—प्रत्येक व्यसन भयकारी होता है, क्योकि बन्धनग्रस्त प्राणी भयभीत रहता ही है। किसी सुख से परिचित होने पर उसमे आसक्ति होती है और परिणामत. दु ख से द्वेष तथा भावी कष्ट की कल्पना से भय उत्पन्न होता है। व्यसनी या विलासी व्यक्ति भय से निर्मुक्त होता हुआ नही देखा जाता।

श्रद्धा-विश्वास की कमी—श्रद्धा और विश्वास की कमी से आत्म-असमर्थता का अनुभव होता है और यह भय लगा रहता है कि सारा ससार हमारे ही ऊपर आक्रमण करने को तैयार है। सुप्रसिद्ध जार्ज इलियट ने लिखा है कि अविश्वास से बढकर एकाकीपन और कौन होगा, अर्थात् उससे अपनी निस्सहायावस्था की कल्पना उठती है।[3] गाधीजी ने भी कहा है कि विश्वास करना एक धर्म है; अविश्वास करना दुर्बलता है।[4] और

---

1. They walk with speed who walk alone.
2 The strong man is stronger if he remains alone.
3. What loneliness is more lonely than distrust ?
4. To trust is a virtue. It is weakness that begets distrust.

हम जानते है कि गाधीजी अपने शत्रु पर भी विश्वास करके सदैव भय-निर्मुक्त रहते थे। अविश्वास से दुराशा ही जन्मती है और दुराशा के गर्भ से भय नामक आत्मज पैदा होता है।

भय को आधार मानकर हमने अनेक मनोव्याधियो का निर्देश ऊपर कर दिया है। सक्षेप मे यही जानना चाहिए कि जब तक मस्तिष्क शुद्ध एव सुव्यवस्थित नही होता तब तक मनुष्य विवेकपूर्वक कर्त्तव्य का निश्चय नहीं कर सकता। स्वाभाविक भीरुता, निराशा, अस्थिरता, उद्विग्नता अथवा अनभिज्ञता या अनुभवहीनता के कारण जब मन अस्तव्यस्त रहता है, सारा जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। उस अवस्था में मन में द्वन्द्व या द्विविधात्मक भाव उठते हैं और मनुष्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। किंकर्तव्यविमूढ होने पर भयंकर परिस्थितियां उठ खड़ी होती है। जीवन के बहुत-से काम चित्त की अस्तव्यस्तता और भय के कारण बिगड़ते हैं। हिटलर इस मनोवैज्ञानिक रहस्य को जानता था। सन् १९३३ मे राज्य प्रधान होने पर उसने कहा था : हम शत्रु को बाहरी साधनो से नही, बल्कि उसी के द्वारा जीतेंगे, भीतर ही भीतर हम उनको नष्ट करके उसपर विजय प्राप्त करेंगे। यही हमारी योजना है। घबराहट, परस्पर-विरोधी विचारो का सघर्ष, अनिश्चितता, भयकर त्रास की भावना—यही हमारे हथियार होगे।[1]

और हम जानते है कि हिटलर ने कई अवसरो पर शत्रु-जनता के चित्त को डावांडोल एव भय-सत्रस्त बनाकर उसको नष्ट कर दिया था। किसी पुराण में भी इस सम्बन्ध में एक कथा है। एक बार यमराज ने दूतो को बुलाकर कहा कि मुझे चार सौ मृत प्राणियों की आवश्यकता है, जाकर लाओ। दूत चार सौ मनुष्यों को मारने के लिए व्याधियो आदि के सहारक अस्त्र-शस्त्र लेकर ससार में पहुचे। चार सौ के स्थान पर वे आठ

1. Our strategy is to destroy the enemy from within, to conquer him through himself. Mental confusion, contradiction of feelings, indecision, panic are our weapons. —Hitler

सौ मृत प्राणी लेकर यमराज के सम्मुख पहुंचे तो यमराज ने बिगड़कर अनावश्यक व्यक्तियों को लाने का कारण पूछा। दूतो ने कहा कि हम क्या करें, हम तो चार सौ व्यक्तियो को मार रहे थे, चलते समय ज्ञात हुआ कि उस हत्याकाड से भयभीत होकर चार सौ व्यक्ति अपने-आप मर गए हैं। अतः उनके प्राणो को भी लाना पडा।

इस कथा के मर्म को समझिए। वह यह है कि अधिकाश लोग बिना मारे मरते हैं। उनके मन में भय का भूत समाया रहता है। वह भूत मस्तिष्क की अशुद्धता से आता है, क्योकि भूतवादियो के भूत भी गन्दी जगहो में, खडहरो और श्मशानो ही में रहते हुए सुने जाते हैं—देव-मन्दिरो और सज्जनो के घर में नही। भय से जब अपना ही पैर लडखड़ाने लगता है तो मनुष्य जीवन-सग्राम मे खडा नही रह सकता।

अतएव आत्मोत्थान करने के लिए मन को शकारहित, स्वच्छ बनाना चाहिए; उसके कुसस्कारो को मिटाना चाहिए। उनके मिटाने पर ही निर्मुक्त आत्मा उसी प्रकार चैतन्य होगी जैसे किसी की स्वतत्र मातृभूमि। यह स्मरण रखना चाहिए कि आत्म-शुद्धि एक दिन में या एक बार में नही होती। इसके लिए दैनिक अभ्यास करना पड़ता है कि मस्तिष्क मे मैल न बैठे। कर्त्तव्य करते समय जहा मन भयभीत हो वहां समझना चाहिए कि मस्तिष्क विकारग्रस्त है। जहा कर्त्तव्य करने की प्रेरणा या किसी काम को ठीक समझते हुए भी उसको करने का साहस न पैदा हो वहा मानना चाहिए कि मन मे कायरता है, भय है, कापुरुषता है।

आत्म-संयम

आत्म-शुद्धि का कार्य तभी चल सकता है जब साथ-साथ आत्म-सयम का कार्यक्रम भी चलता रहे। मस्तिष्क तो विचारो का भूखा रहता है। यदि कोई चाहता है कि दुर्विचारो से पोषित न हो तो उसके स्थान पर सद्विचारो का प्रबन्ध करना पडेगा। सद्विचारो का अर्थ है, अपनी मूल प्रवृत्तियो को जगाना और सुव्यवस्थित करना। मूल प्रवृत्तियो मे सत्य, अहिंसा मुख्य है। सत्य से अधिक शुद्ध और सरल वस्तु कोई अन्य नही हो

सकती। सत्य और अहिंसा के आधार पर ही प्रकृति का कार्य चलता है, अतएव प्रकृति के प्रधान प्रतीक—मानव के यही मूलधर्म है। क्रूरता और धूर्तता आदि पशु-धर्म हैं। प्रत्यक्ष जगत् में हम देखते हैं कि सत्य की अन्त में विजय होती है। धन और मान आदि न्याय से अर्जित होने पर ही सुरक्षित एव चिरस्थायी रहते हैं। अन्यायी अन्त में हारते है। पतजलि ने सत्य लिखा है कि सत्य प्रतिष्ठित होने से क्रियाफल स्वाधीन हो जाता है : 'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।' सत्य ही से परम मानव-धर्म अहिंसा भी सिद्ध होती है। व्यास के मत से : 'अहिंसा परमो धर्मः स च सत्ये प्रतिष्ठितः।' अहिंसा का अर्थ है सहृदयता। उसको जीव-रक्षा के अर्थ में ही लेना चाहिए। स्वभाव एव चरित्र की सरलता एव उदारता से सत्य-अहिंसा की विज्ञापना होती है। इन गुणो से पारस्परिक विश्वास बढता है और यह स्मरण रखना चाहिए कि विश्वास ही लोक-जीवन का धारक है। ससार के सूत्र मे बधकर आगे बढने के लिए विश्वासपात्र बनना परमावश्यक है।

इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख आत्म-विकास के भाव हैं—आशा, उत्साह, साहस और धैर्य। आशा मानव-आत्मा का एक विशेष गुण है, क्योंकि हम देखते हैं कि जब तक शरीर में प्राण रहता है, तब तक आशा उसके साथ बधी रहती है, अतएव उसको दबाना न चाहिए और उसको अधकारमय न बनाना चाहिए। उज्ज्वल भविष्य की आशा रखने से आत्म-स्फूर्ति चिर-जागरित रहती है। उत्साह से बढकर ससार मे कोई बल नही है, ऐसा व्यास ने कहा है : 'नास्त्युत्साहात् पर बलम् ।' आदिकवि के मत से उत्साह द्वारा ससार में कुछ भी दुष्प्राप्य नही है : सोत्साहस्य हि लोकेपु न किंचिदपि दुर्लभम्।' और उन्हीं के शब्दो मे हनुमान् के मत से उत्साह ही सदैव सब कार्यों की सफलता का कारण होता है : 'अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेपु प्रवर्त्तक.।' साहस से पुरुषार्थ और मनोबल सिद्ध होता है। इस वर्ग के गुणो में धैर्य का स्थान बहुत ऊचा है। आशा, विश्वास, उत्साह और साहस आदि से उत्पन्न मनस्विता का धारक धैर्य ही होता है। धैर्य

के बिना सभी मानस-शक्तिया अल्पजीवी होती है। कैसा भी उत्साह-सम्पन्न या साहसी व्यक्ति हो, यदि वह धैर्य-स्खलित होगा तो हताश होकर कही न कही बैठ जाएगा, विघ्न पडने पर कार्य-सिद्धि के पूर्व ही कर्म-घात करेगा और एकवार गरमाकर फिर ठडा पड जाएगा। जीवन के सभी क्षेत्रो में धैर्य सफलतादायक होता है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे आविष्कारको को देखिए, वार-बार, विफल होकर भी वे हार नही मानते। विजली का आविष्कार करते समय एडिसन को ६०० प्रयोगों मे असफलता ही मिली थी, परन्तु वह धैर्य-च्युत नही हुआ। अन्त मे उसने बिजली का आविष्कार कर ही लिया। राजनीति के क्षेत्र मे गाधीजी के प्रयासो को देखिए। बार-बार हारकर भी वे मैदान में धैर्यपूर्वक खडे ही मिलते थे। अन्त में वे विजयी हुए। इग्लैंड के प्रसिद्ध भूतपूर्व प्रधानमत्री विलियम पिट ने एक वार कई विद्वानो से पूछा कि प्रधानमत्री के लिए सबसे आवश्यक गुण कौन-सा होना चाहिए। किसी ने कहा परिश्रम, किसी ने उत्साह, किसी ने वाक्-पटुता। पिट ने कहा कि धीरता से बढकर शासक के लिए अन्य गुण नही हो सकता। उस अनुभवी प्रधानमत्री का कथन सत्य था। हम भारतीय राजनीति में प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि धीरता और बुद्धिमत्ता से सरदार वल्लभभाई पटेल ने धीरे-धीरे लगभग ६०० ऐसे महाराजाओ के राजमुकुट उतरवा लिए जिनमे से प्रत्येक महीपाल, धर्मावतार, नरेश, अन्नदाता और न जाने क्या-क्या बना हुआ था। वह शासक की बुद्धिधीरता का ही प्रभाव है। जिस धीरता से कृष्ण ने (हिंसात्मक ढग से कुरुक्षेत्र मे हजारो राजाओ के सिर उतरवाकर) भारतीय एकता की स्थापना की थी, जिस धीरता से चाणक्य ने (कूटनीति और शत्रु-वध का आश्रय लेकर) अखड मौर्य-साम्राज्य की नीव डाली थी, उसी धीरता से पटेल ने (अहिंसात्मक रीति से अनेक सत्ताधारियो का नैतिक वध करके) भारतीय एकता को दृढ बनाया।

यही कुछ मानसिक विभूतिया है जिनके सचय से पौरुष दृढ होता है, पराक्रम सिद्ध होता है। मर्यादापुरुषोत्तम राम के भी यही विशेष गुण

थे । सीता ने लंका में उनके इन्हीं गुणो का स्मरण करके हनुमान् से कहा था कि उत्साह, पौरुष, बल, अक्रूरता, कृतज्ञता, विक्रम, प्रभाव—ये सब गुण राम के है :

उत्साह. पौरुषं सत्त्वमानृशस्य कृतज्ञता ।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ।। (रामायण)

इस स्थान पर हम फिर यही कहेगे कि 'महाजनो येन गतः स पन्था ।' चित्त-सयम द्वारा अपनी सामर्थ्य-शक्ति को सगठित एवं प्रतीव्र बनाकर ही मनुष्य जीवन मे विजय की आशा कर सकता है । आत्म-सयम से अपने स्वास्थ्य, चरित्र, स्वभाव तथा ज्ञान—इन चारो का सस्कार करना चाहिए। इनके सयमित होने से इच्छा-शक्ति स्वभावतः बलवती होती है।

संकल्प

अपनी इच्छाओं को जगाकर देखना चाहिए कि उनमे सबसे प्रबल इच्छा कौन-सी है ? सबके मन में एक न एक इच्छा प्रधान होती है और उसी की ओर उनके मस्तिष्क का स्वाभाविक झुकाव होता है। साधारण मनोयोग से अपनी रुचि का पता चल जाता है। सामान्य इच्छाओ को त्यागकर एक विशिष्ट इच्छा को पकड़ना चाहिए । साहित्य, व्यापार, राजनीति, विज्ञान या कला-कौशल जो भी स्वभाव के अनुकूल जान पड़े उसी को अपना प्रमुख विषय मानना चाहिए, उसी के पीछे मनोरथ को दौड़ाना चाहिए ।

प्रबल तरग को पकड़कर तब निश्चयात्मक बुद्धि से विचार करना चाहिए कि क्या बनना है, कैसे बनना है ? इसका दृढ सकल्प करना चाहिए कि अपनी मनोकामना को पूर्ण करके हमें ऐश्वर्यवान् बनना है। जीवन का एक आदर्श बनाकर उसकी पूर्ति का सकल्प करने से जीवन का राजमार्ग सामने दिखलाई पड़ने लगता है, भीतर से उद्योग करने की आत्म-प्रेरणा होती है । लक्ष्य का निश्चय करके कल्पना को दौड़ाना चाहिए। मस्तिष्क का कल्पना-तत्त्व ही उसका प्रधान शिल्पी या चित्रकार है। वह जीवन के भविष्य का सुन्दर मानचित्र बना सकता है।

उसी के अनुसार बुद्धि उपाय सोचती है, विचारो को साकार बनाने की चेष्टा करती है और जो कमी होती है उसकी पूर्ति बाहरी ज्ञान या शक्ति से करती है। अतएव कल्पना को दूर तक दौड़ाना चाहिए, दूरदर्शी बनना चाहिए।

उद्योग

निश्चित कार्यक्रम बनाकर उसके अनुसार उद्यम करने से ही सफलता मिलती है। उद्योग के बिना मनोरथ कभी सफल नही होते, इसको स्मरण रखना चाहिए। उद्योग ही सच्चा पुरुषार्थ है। उद्योग आत्म-विकास का मूलमंत्र है। नेपोलियन ने एक बार कहा था कि मैंने कर्मोद्योग से ही अपने को बहुगुणित किया है।[1]

इस सम्बन्ध में विद्वान् कार्लाइल के इस मत को ग्रहण करना चाहिए : जीवन का एक लक्ष्य बनाओ और उसके बाद ईश्वर ने तुम्हे जितना शारीरिक सम्बल और मनोबल दिया है उसको कार्यपूर्ति के निमित्त लगा दो।[2]

महाप्रतिभाशाली और महोद्योगी जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कभी अपना नब्बेवां जन्मदिन मनाते हुए सफलता का एक मुष्टियोग बताया था। शॉ के कथनानुसार आनन्दमय जीवन बिताने का उपाय यही है कि मनुष्य तन्मय होकर अपने को मनोनुकूल कार्य मे व्यस्त रखे और सुख-दु:ख की चिन्ता के लिए अपना कुछ भी समय न दे।[3]

स्वपुत्र सजय से कहा हुआ विदुला का यह वचन भी कण्ठस्थ रखने योग्य है : उठो, आलस्य को त्यागो, कल्याण-कर्म मे अपने को लगाओ।

---

1. I multiplied myself by my activity. —Napoleon

2 Have a purpose in life and having it throw into your work such strength of mind and muscle as God has given you. —Carlyle

3. The way to have a happy life is to be busy doing what you like all the time, having no time left to consider whether you are happy or not. —G. B. Shaw

इस भांति मन को चिन्तामुक्त करके कार्य करोगे तो अवश्य सफल होगे :

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ।। (महाभारत)

अनन्य अनुभवी विद्वान् व्यास का कथन भी ध्यान में रखने योग्य है—बुद्धि, प्रभाव, तेज, बल, उठने की इच्छा, उद्योग—ये सब जिस मनुष्य में हों उसको जीविका का क्या भय हो सकता है :

बुद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च।
व्यवसायश्च यस्य स्यात्तस्याऽवृत्तिभयं कुतः ।। (महाभारत)

अध्यवसाय

उद्योगारंभ करके उसको एक लगन के साथ अन्त तक निभाने से ही कार्यसिद्धि मिलती है। कर्मयोजना के अनुसार निरन्तर परिश्रम करने को अध्यवसाय कहते हैं। कौटिल्य के मत से इसी को व्यायाम कहते हैं : 'कर्मारम्भाणां योगाराधनो व्यायामः।' सावधानी के साथ एक दिशा में एकाग्रचित्त से चिन्तन, सम्पूर्ण पुरुषार्थ से कार्याभ्यास और लक्ष्य का अनुशीलन करना अध्यवसाय या व्यायाम है। यही कर्म-साधन है। यह साधना प्रतिदिन प्रत्येक क्षण करनी पड़ती है।

कर्मोपासना में अनेक दैनिक बाधाएं, विवशताएं, विफलताए पग-पग पर मिलती हैं। उनपर विजय प्राप्त करने से ही मनोरथ सफल होता है। अतएव कर्म-मार्ग में संकटों को झेलने के लिए तैयार रहना चाहिए। साधारण प्रलोभन में पड़कर मुख्य व्यवसाय को न भूलना चाहिए। एक रूसी कहावत है कि जब हल जोतने चलो तो अगल-बगल कोई चुहिया देखकर उसको पकड़ने में समय न गवाओ। अपनी स्मृति को ठीक रखना चाहिए क्योंकि स्मृति-नाश से पीछे के अनुभव आगे सहायक नहीं होते और योजना-क्रम ठीक नहीं चलता। आत्म-विस्मृति से भी बचना चाहिए। परिश्रम से थोडी सफलता पाकर कार्य-गति को शिथिल बनाने से लक्ष्य-देवता दूर भाग जाते हैं। आत्म-विस्मृति से मनुष्य को समय का ज्ञान-

नही रहता। दुःख के बाद जब एकाएक सुख मिलता है तो कालज्ञ मुनि तक अपने को तथा अपने कर्त्तव्य को भूल जाते है और समय को नही पहचानते। तपस्वी विश्वामित्र को मेनका के साथ व्यतीत किए हुए दस वर्ष एक दिन के समान प्रतीत हुए थे। ऐसे ही विष्णुपुराण-वर्णित एक कण्डु ऋषि थे जो प्रम्लोचा नामक अप्सरा पर मुग्ध होकर जप-तप को भूल गए थे। ९०७ वर्ष, ६ महीने, ३ दिन उसके साथ गोमती तट पर रहकर वे अपने को भूले रहे। जब वह जाने लगी तो महर्षि कमण्डलु लेकर सन्ध्योपासना करने चले। इसपर अप्सरा ने पूछा कि आज इतने दिन बाद आपको सन्ध्या-वन्दन का ध्यान कैसे आया? तब मुनि ने कहा कि क्या कहती हो, अभी कल शाम को उपासना कर चुका हू, आज फिर जा रहा हू। सुख के इतने दिन उनको एक दिन ही प्रतीत हुए।

कहने का तात्पर्य यह है कि सजग होकर, समय की गति और अपने मूल प्रयोजन को ध्यान मे रखकर अथक परिश्रम करना चाहिए। कही मार्ग भूलकर पथ-भ्रात न होना चाहिए। उससे अध्यवसाय खडित होता है। साथ ही, आकस्मिक घटनाओ और विपदाओ से विचलित न होना चाहिए। इग्लैड के एक सुप्रसिद्ध भूतपूर्व प्रधानमत्री के इस कथन को याद रखना चाहिए कि बहुत-सी और बड़ी गलतिया किए बिना कोई व्यक्ति महान् नही बनता।[1]

अपनी गलतियो से आगे की शिक्षा लेते हुए और अपने को सुधारते हुए सतत उद्योग करने मे बुद्धिमानी है। आत्मिक विकास करने वाले को यह समझ रखना चाहिए कि कर्म-त्याग प्राण-त्याग से कम भयंकर नही होता। इस लोक को कर्म-लोक कहते हैं: 'कर्मभूमिरिय ब्रह्मन्।' (महाभारत)। इसमे कर्म की ही प्रधानता है: 'कर्म-प्रधान विश्व करि राखा।' (तुलसी)। अतएव कर्म-नाश से आत्म-नाश होना स्वाभाविक है। आत्मिक विकास के सम्बन्ध मे यही मुख्य-मुख्य बातें है। जीवन-क्षेत्र में

1. No man ever becomes great or good except through many and great mistakes. —Gladstone

इन्ही आत्म-साधनो से सर्वत्र सफलता मिलती है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक साधन हैं, जिनका उपयोग आत्मोत्थान के लिए करना पडता है। उनका भी सक्षिप्त परिचय हम आगे देते हैं।

ज्ञान का विकास

ज्ञान आत्मोन्नति में परम सहायक होता है। उससे ही बुद्धि का सशोधन होता है। ज्ञान के साथ विवाह करके बुद्धि योग्यता, प्रगल्भता व सफलता की जननी बनती है। ज्ञानोपार्जन से बुद्धिमान् व्यक्ति सहस्रधी एव सहस्राक्ष बनता है। ईश्वर की सर्व प्रधानता का एक कारण यह भी है कि वह सर्वज्ञ है। मनुष्य छोटे-से जीवन में सम्भवतः सर्वज्ञ तो नही हो सकता परन्तु बहुज्ञ अवश्य हो सकता है। जो जितना अधिक जानता है, वह उतना ही स्वतत्र एवं सामान्य होता है; उसका क्षेत्र उतना ही व्यापक होता है।

ज्ञान की कोई सीमा नही है। प्राकृतिक ज्ञान का समुद्र इतना अगाध है कि हजारो वर्षों के परिश्रम से भी मनुष्य अभी तक उसकी गहराई नही नाप सका है। साधारण परमाणु की शक्ति तक का उसको पूरा पता नहीं था। कौन जानता था कि वे यम के दूत भी है। ज्ञान की असीमता को देखते हुए कोई यह नही कह सकता कि अब हमे कुछ सीखने को नही है। जीवन को विकासशील बनाने के लिए सदैव कुछ न कुछ ज्ञानोपार्जन करना आवश्यक है। कुछ न कुछ का अर्थ यह नही कि जो भी सामने मिले उसी को हृदयगम कर लिया जाए।

इस सम्बन्ध में चाणक्य का यह मत है कि शास्त्र असख्य है, विद्याए भी बहुसख्यक हैं, समय कम है, बाधाए अनेक है अतएव हस जिस प्रकार पानी में मिले दूध को अलग करके ग्रहण करता है, उसी प्रकार जो साररूप हो उसी को ग्रहण करना चाहिए :

अनन्तशास्त्र बहुलाश्च विद्या,
अल्पश्च कालो बहु विघ्नता च।

यत्सारभूत तदुपासनीय,
हसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ।। (चाणक्य)

उसी ज्ञान का सचय करना चाहिए जो उपयोगी हो, भ्रम-शून्य अर्थात् यथार्थ हो, जिससे मस्तिष्क का भरण ही नही, मुख्यतः उसका पोषण हो, जिससे जानकारी ही न बढे बल्कि आत्म-निर्माण भी हो। मस्तिष्क के भीतर पर्याप्त स्थान होता है, उसमें कौतुकालय न बनाकर कार्यालय बनाना चाहिए, जिससे लोकोपयोगी कर्म हो सके और अपना लाभ भी।

ज्ञान के विषय को ठीक से समझकर तब देखना चाहिए कि किन साधनो से उसका सचय हो सकता है। ज्ञान के दो भेद है: (१) ज्ञान और (२) विज्ञान। शास्त्रीय ज्ञान को 'ज्ञान' कहते हैं। प्रयोगात्मक, रचनात्मक या व्यवसायात्मक अनुभव-सिद्ध एवं अभ्यास-साध्य ज्ञान को 'विज्ञान' कहते हैं। शुक्राचार्य के मत से वाणी-सम्बन्धी कर्मों को विद्या और ऐसा कर्म जो बिना वाणी के सहयोग के भी किया जा सके, कला कहते है। विद्या और कला को हम क्रमशः ज्ञान और विज्ञान कह सकते है। सक्षेप में ज्ञान-विज्ञान, विद्या-कला का यही परिचय है। इनकी प्राप्ति के मुख्य साधन ये है—स्वानुभूति, जिज्ञासा, स्वाध्याय, शिक्षा और अनुभव तथा अभ्यास।

स्वानुभूति

बहुत-सा ज्ञान बुद्धि की चैतन्यता, एकाग्रता एवं जागरूकता से स्वय प्रस्फुरित होता है। आत्म-तत्त्व और मानवता का मर्म सहानुभूति से ही ज्ञात होता है। मस्तिष्क की खिड़कियो को खोल देने से आत्म-ज्ञान तो प्रकाशित होता ही है, साथ ही बाहर के ज्ञान-प्रकाश की किरणें भी अपने-आप मानस-मन्दिर मे प्रवेश करती हैं। मानस-पट स्वच्छ रहने पर उसपर दूसरो के चरित्र की छाप चुपचाप अकित होती है, और उसके अनुसार मनुष्य को कर्त्तव्य-ज्ञान की स्वानुभूति होती है। बुद्धि को सक्रिय रखने से बहुत-सा ज्ञान आत्मा द्वारा ही सुलभ हो जाता है क्योंकि वह

(आत्मा) स्वयं कई घाट का पानी पिए रहती है।

जिज्ञासा

यदि मनुष्य अपनी बुद्धि-जिज्ञासा को सचेत रखे, अपनी प्राकृतिक ज्ञान-पिपासा को शान्त न होने दे और प्रत्येक समझ मे न आनेवाले रहस्य को कौतूहल की दृष्टि से देखकर समझने का सहज प्रयत्न करे, तो मस्तिष्क ज्ञान-समृद्ध हो जाता है। प्रसिद्ध अंग्रेजी राजकवि रडयर्ड किप्लिग ने लिखा है कि मैं जो कुछ जानता हूं वह मेरे छः स्वामिभक्त सेवको का बताया हुआ है; उनके नाम ये है—कहा, क्या, कब, क्यो, कैसे और कौन।[1]

स्वाध्याय

स्वाध्याय का तात्पर्य वेद-शास्त्र पढना नही है। उसका अर्थ है स्वयं अध्ययन करना। वह अध्ययन पुस्तक का भी हो सकता है, परिस्थिति का भी और देश-काल या मानव-स्वभाव का भी। सस्कृत मे वेदपाठी के अतिरिक्त नगर-व्यापारी को भी स्वाध्यायी कहते हैं क्योंकि वह बाजार का अध्ययन करता है, भाव के चढाव-उतार को समझता है, उसको पढता है और तोलता है।

बिना पढे-लिखे मनुष्य यदि स्वाध्यायी हो तो वह व्यावहारिक ज्ञान का पडित हो सकता है। आत्मोन्नति के लिए शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान कही अधिक उपयोगी होता है। सुप्रसिद्ध पत्रकार लुई फिशर ने हाल ही में स्टैलिन पर एक लेख-माला प्रकाशित की है। उसमें एक स्थान पर लिखा है कि मनुष्यो और परिस्थितियो को समझने की योग्यता ही स्टैलिन की ज्ञान-पूंजी है, वह बहुत विद्या-सम्पन्न नही है, परन्तु जो एक शासक को जानना आवश्यक है अर्थात् अधिकार लेकर

---

1. 'I had six honest serving-men. They taught me all, I know ' Their names are · where and what, and when and why and how and who '

उसको कैसे सुरक्षित रखना चाहिए—इसको उसने सीख लिया है।[1]

जीवन-संग्राम मे खड़े और पड़े रहने से, देखने-सुनने से, मिलने-जुलने से, देश-भ्रमण करने से और सामाजिक कार्यों मे भाग लेने से निश्चय ही स्वाध्याय होता है। कम से कम काल-प्रगति का ज्ञान, लोक-विचारधारा का ज्ञान उसी से सुलभ होता है। कभी-कभी मनुष्य परिस्थितियो का धक्का खाकर और कभी-कभी कुछ खोकर सीखता है या सचेत होता है। गाधीजी ने एक स्थान पर लिखा है कि घोर सकटपूर्ण परिस्थिति (या मर्मविदारक घटना) ही महापुरुषो का विद्यालय है।[2] प्राय: मनस्वी लोग अपनी पराजय से भी शिक्षा लेते हैं। इन सबको स्वाध्याय ही मानेंगे।

स्वाध्याय के इन समस्त साधनो की अपेक्षा पुस्तक द्वारा स्वाध्याय करना निश्चय ही अधिक सरल होता है। पुस्तको द्वारा अनुभूत ज्ञान एक ही स्थान पर सचित मिल जाता है, इसलिए उनको स्वाध्याय का मुख्य साधन बनाना चाहिए। सामान्य ज्ञान[3] और विशिष्ट ज्ञान[4] दोनो की उपलब्धि पुस्तको से होती है। सामान्य ज्ञान के लिए ऐसे ग्रन्थो को पढ़ना चाहिए जिनसे जीवन-शिक्षा, चरित्र-शिक्षा, लोक-शिक्षा मिले। महर्षि पतजलि ने तीन विषयो का ज्ञान मनुष्य-मात्र के लिए उपयोगी माना है—मानस-सम्बन्धी ज्ञान; वाणी-सम्बन्धी ज्ञान तथा शरीर-सम्बन्धी ज्ञान। इसलिए उन्होने मन, वचन और काया के सुधार के लिए तीनो विषयो पर एक-एक ग्रन्थ लिखा है—योग-दर्शन, व्याकरण महा-भाष्य और वैद्यक-शास्त्र। प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम साधारण मनो-विज्ञान, भाषा-व्यवहार और शरीर-विज्ञान का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त

---

1. But his great asset is the ability to read men and events. He possesses no rich fund of knowledge. But he has learnt what every political boss must know, how to get and keep power.

—Louis Fischer

2 Deep tragedy is the school of great men.

3. General knowledge.

4. Spcialised knowledge.

करना चाहिए। इनके अतिरिक्त साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति को भी अपने अध्ययन का विषय बनाना चाहिए। सभी विषयो में पारगत होना आवश्यक नही, परन्तु प्रवेश तो अनेक विषयो में होना ही चाहिए। बहुज्ञता से व्यक्तित्व व्यापक बनता है, यह हम कह चुके है।

पुस्तक पढने की एक कला होती है। विशेषज्ञो का कथन है कि धीरे-धीरे नही बल्कि तेज़ी के साथ पढना चाहिए, क्योंकि गति और ज्ञान का परस्पर गहरा सम्बन्ध होता है। तेज पढ़ने से विचारो की धारा खडित नही होती और एक-एक वाक्य का सम्पूर्ण विचार मस्तिष्क मे यथास्थान बैठता जाता है। एक-एक शब्द को घोटनेवाला व्यक्ति वाक्यगभित विचार को एकसाथ ग्रहण नही करता, इसलिए वह उसको ठीक-ठीक याद नही कर पाता। यह स्मरण रखना चाहिए कि पूरा भाव एक शब्द या दो-चार शब्दों में नही समाया रहता बल्कि वह उनके द्वारा सयोजित वाक्य में मिलता है। अतएव शब्दार्थ पर अधिक ध्यान न देकर वाक्यार्थ पर ध्यान देना चाहिए क्योंकि अभिप्राय समझने के लिए ही ग्रन्थ-पाठ किया जाता है। शैली, कथाक्रम और शब्द-जाल मे न उलझकर ग्रन्थ के मर्म को समझना चाहिए। पढते समय कल्पना और स्मृति दोनो को सचेत रखना चाहिए। कल्पना से वर्णित विषय को साकार करके देखना चाहिए। तब वह अधिक स्पष्ट हो जाता है। स्मृति को चैतन्य रखने से ज्ञान ठीक-ठीक गृहीत होता है। यदि स्मरण-शक्ति ठीक न हो तो पुस्तक पढने से कोई लाभ नही होता; केवल क्षण-भर का मनोविनोद होता है। स्मृति-हीन व्यक्ति की दशा जर्मनी के भूतपूर्व नाज़ी-सचिव 'हरहेस' जैसी हो जाती है। न्यूरेम्बर्ग के सुप्रसिद्ध 'ट्रायल' के दिनो मे 'हेस' की स्मरण-शक्ति लुप्त हो गई थी। वह एक ही ग्रथ को सात-आठ बार पढ़ता था और प्रत्येक बार उसको यही ज्ञात होता था कि वह उसको प्रथम बार पढ़ रहा है।

पढना और विचार करना जब साथ-साथ चलता है, तभी ग्रन्थ-पठन

का प्रभाव पड़ता है। तोताराम बनने के लिए पढ़ना व्यर्थ होता है। हमारे पुरखे विमान पर चढ़ चुके है, इसको जानकर आत्म-सन्तोष कर लेने से भी पठन-परिश्रम सफल नही होता। सफल तब होता है जब कि इस जानकारी से हमे आत्म-प्रेरणा और आत्म-स्फूर्ति मिले। मर्म को समझकर चिन्तन करना चाहिए कि कहा तक लेखक का मत सग्रहणीय है। उसको तोलना चाहिए, तर्क-बुद्धि से व्यावहारिकता की कसौटी पर कसकर देखना चाहिए और यथार्थता के आधार पर अपना स्वतन्त्र मत निश्चित करना चाहिए; जो मानने योग्य हो, उपयोगी हो, उसी को धारित करना चाहिए। कठस्थ ज्ञान अपना हो जाता है, पुस्तकगत ज्ञान अपने किसी काम का नही होता। विवाहिता होने पर ही कोई स्त्री पत्नी होती है अन्यथा वह अपने बाप की बेटी ही बनी रहती है। सुगमता से यदि कोई विषय कठस्थ न हो तो उसको उच्च स्वर से पढकर ध्यानस्थ करना चाहिए। उच्चारण से बुद्धि जागती है, तभी तो मास्टर की गर्जना से विद्यार्थी की बुद्धि ठिकाने आ जाती है। स्वय उच्चारण करके पढने से ज्ञान कान के द्वारा भी बुद्धि मे पहुचता है। प्राचीन आर्यों का मत था कि श्रवण से ज्ञान अधिक धारित होता है। पहले विद्यार्थी को आखो के सहारे नही बल्कि कानो के सहारे ही पढाया जाता था। बुद्धिमान् व्यक्ति स्वभाव से ही कर्णरसिक होता है। अतएव कान की सुरग से बुद्धि तक पहुचना सुगम है। यह तभी हो सकता है जब ज्ञान ध्वनिमय हो। ध्वनित मगलस्तोत्रो से प्रात.काल भगवान् भी जग जाते है, इसलिए अपने महत् को भी ध्वनि-वाणी से जगाना चाहिए। जिस तरह भी हो, ज्ञान को हृदयस्थ करना चाहिए। हां, ध्यान रखना चाहिए कि उसके साथ निस्सार बातें भी स्मृति-देश में कुहरे की तरह छाई न रहे। बहुत तीव्र स्मरण-शक्ति हानिकारक भी होती है क्योकि वह अनावश्यक बातो को भी बटोरे रहती है जिनके कारण मस्तिष्क भारी हो जाता है।

साधारण ज्ञान के लिए अपने प्रिय विषयो को लेना चाहिए और प्रिय लेखको को चुनना चाहिए। लेखकों की शैली मे भिन्नता होती है,

अतएव एक ही विषय पर बहुत-से लेखकों की पुस्तकें एक-सा प्रभाव नही डाल सकतीं। ऐसे लेखको के ऐसे ग्रंथों का अवलोकन लाभकर होता है जो अपने विचारो को उत्तेजित एवं संवेदनाओ को तीव्र बना सके। अतएव ऐसी पुस्तको को ही स्वाध्याय के लिए लेना चाहिए जो मनोरंजन के साथ ज्ञान-वृद्धि कर सकें। ज्ञान के लिए ही सदैव न पढना चाहिए। पुस्तकें पढने का एक उद्देश्य मन की थकावट को मिटाना भी होता है। मनोरंजक उपन्यासो और कहानियों तथा कविताओं से मस्तिष्क के कल्पना-खड का पोषण होता है, विश्राम मिलता है। इसलिए रात मे 'स्वान्त.सुखाय' मनोरजक साहित्य पढने से नीद आती है। मस्तिष्क को सरस बनाने के लिए सरस पढना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि जीवन-साहित्य। स्वाध्याय के लिए उपयोगी ग्रथों के साथ मनोरजक ग्रंथों को भी लेना चाहिए।

आजकल स्वाध्याय का सर्वोतम साधन है—समाचारपत्र। समाचारपत्रो और पत्र-पत्रिकाओ से लोक-प्रगति का सामयिक ज्ञान मिलता है। लोकमत का विज्ञापन ही नही, बहुत कुछ निर्माण भी पत्रो द्वारा होता है। एक अमेरिकन पडित ने लिखा है कि हम लोग एक ऐसी गवर्नमेंट द्वारा शासित होते है जो मनुष्यो और दैनिक पत्रो द्वारा सचालित होती है।[1] अपने को राष्ट्र और समाज के अनुकूल बनाए रखने के लिए आधुनिक समय में एक न एक अच्छे समाचारपत्र को पढना आवश्यक है। उनको न पढने से मनुष्य नवयुग के साथ नही चलता; उसका पुस्तक-सुलभ ज्ञान बासी हो जाता है और वह स्वय कई पीढियो पीछे का जीव या प्रेत हो जाता है।

विशिष्ट ज्ञान के लिए अपनी मूल प्रवृत्ति को पहचानकर और भावी वृत्ति का निश्चय करके तब किसी एक विषय का अध्ययन करना चाहिए और उसमें पारगत बनना चाहिए। एक न एक विषय का विशेषज्ञ होना

1. We live under a Government of men and morning newspapers.
—Wendell Phillips

मनुष्य के महत्त्व को बढाता है; उसके जीविकोपार्जन और यशोपार्जन में सहायक होता है, अतएव सतर्कतापूर्वक एक उपयोगी विषय का सांगोपाग अध्ययन करना चाहिए और उस विषय के मूल सिद्धान्त को समझकर उसके आधार पर अपने ज्ञान को मौलिक बनाना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य उस विषय का अधिकारी बन सकता है। विचार-स्वतन्त्रता के लिए दूसरो के विचारो का उपयोग करना चाहिए क्योकि ज्ञान का वही प्रयोजन है।

जो भी पढे और जैसे भी पढे या सीखे, पाठक को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि ज्ञान का अजीर्ण न हो। जो ज्ञान अभ्यास में नही आता वह विष हो जाता है: 'अनभ्यासे विष शास्त्रम्।' लोक-दृष्टि मे ज्ञान-विलासी नही, बल्कि कर्मशील व्यक्ति पण्डित माना जाता है: 'यः क्रियावान् स पण्डितः।' सुप्रसिद्ध विचारक हर्बर्ट स्पेन्सर ने लिखा है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ज्ञान नही, बल्कि कर्म है।[1]

अतएव सर्वप्रथम क्रियात्मक रचनात्मक ज्ञान का ही सग्रह करना चाहिए और सग्रह के साथ उसका प्रयोग करके तथा उसकी प्रतीक्षा करके भी देखना चाहिए कि वह कहा तक उपयोगी है। शिक्षा और स्वाध्याय का प्रयोजन तभी सफल होता है। अभ्यास मे आने पर सिद्धान्तो की उपयोगिता-अनुपयोगिता का पता चलता है। कर्म से ही ज्ञान सार्थक होता है, अन्यथा निरर्थक।

कला-सम्बन्धी ज्ञान का स्वाध्याय सीखने और काम करने से होता है। पुस्तको से उनकी पूरी जानकारी नही होती। काम करने से अभ्यस्त ज्ञान प्राप्त होता है और वही परिपक्व ज्ञान माना जाता है। इसलिए कम से कम व्यावसायिक ज्ञान के उपार्जन के लिए किसी विषय का दैनिक अभ्यास करना चाहिए – काम करते हुए सीखना और सीखते हुए काम करना चाहिए। सीखना और विचार करना जब साथ-साथ चलता है

---

1. The great aim of Education is not knowledge but action.
—Herbert Spencer

तभी ज्ञान की वृद्धि होती है।

शिक्षा-अनुभव-अभ्यास

शिक्षा, अनुभव और अभ्यास के सम्बन्ध में बहुत कुछ ऊपर प्रसंग-वश लिखा जा चुका है। इनके सम्बन्ध में इतना और जानना चाहिए कि मनुष्य स्वय सभी बातें नही सीख सकता। वह एक ऐसा जीव है जो दूसरों द्वारा शिक्षित बनाए जाने पर शिक्षित बनता है, अतएव निरभिमान होकर अपने से योग्य व्यक्तियो द्वारा शिक्षा लेनी चाहिए। योग्य अध्यापको द्वारा और सत्पुरुषो की शिक्षा से जो ज्ञान एक घटे मे मिल सकता है वह सौ ग्रन्थों के पढने से भी नही आ सकता। अनुभव से भी यही बात होती है। अनुभव से एक मुख्य बात यह होती है कि आवश्यकता का पता चलता है और आवश्यकता ही आविष्कारो की जननी होती है। अभ्यास से ज्ञान सक्रिय होता है, यह हम कह चुके हैं।

इस सम्बन्ध मे हम, अन्त मे, फिर यही कहेंगे कि शिक्षा पा लेने मात्र से अथवा निष्प्रयोजन ढेर की ढेर पुस्तको को पढ लेने से कोई ज्ञानी नही बनता। यह स्मरण रखना चाहिए कि गीता-पाठ सुनकर अर्जुन लड़ाई नही जीते थे; गीता-धर्म के अनुसार आचरण करने से उनको सफलता मिली थी। 'बम-बम' का उच्चारण करने ही से शिव प्रसन्न नही होते। गत युद्ध के दिनो मे प्रायः सभी दिन मे दस-पांच बार बम-बम बोलते थे, परन्तु किसी को दैव अनुग्रह प्राप्त होता नही दिखाई पडा। सप्रयोजन ज्ञानोपार्जन करके कर्मोपार्जन करना सिद्धि देता है। दान करने से ज्ञान बहुत बढता है—चाहे वह किसी व्यक्ति को दिया जाए या किसी कर्म को।

सर्वप्रकार से विद्या द्वारा अपने स्वभाव, सुपात्रत्व, धन और सुख की वृद्धि करनी चाहिए। विद्या का प्रयोजन यही है कि उससे विनय, विनय से सुपात्रता, सुपात्रता से धन, धन से धर्म और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है :

> विद्या ददाति विनय, विनयाद्याति पात्रताम्।
> पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥ (हितोपदेश)

सामाजिक जीवन का विकास

मनुष्य एक शुद्ध सामाजिक जीव है। समाज ही उसका कर्म-क्षेत्र, साधन-क्षेत्र और जीवन-क्षेत्र होता है। अतएव उसको अपने सामाजिक जीवन का पूर्ण ध्यान रखना पडता है, समाज की रीति-नीति, मर्यादा का ध्यान रखना पडता है और अपने को समाज के उपयुक्त बनाना पडता है। समाज कितना प्रबल है, इसको इन बातो से समझिए—लोक-धर्म ही सर्वमान्य धर्म है, लोक-बल ही सर्वप्रधान बल है; लोक-प्रतिष्ठा ही मनुष्य की सबसे बडी निधि मानी जाती है, लोक-सम्मत कार्य ही कर्त्तव्य है; लोक-सेवा सर्वाधिक महत्त्व-प्रदायक साधन है; लोक-मत ही मनुष्य के लिए ईश्वरीय मत और ईश्वरीय शक्ति है; लोक-प्रथा सबसे बडा बन्धन है; लोक-लज्जा ही उच्छृङ्खलता को रोकने वाली 'पुलिस' है, लोक-दृष्टि ही मनुष्योचित कर्म की कसौटी है और लोक-हित का सम्पादन मानवता है। पच-परमेश्वर के बल को कौन अस्वीकार करेगा ? कौन ऐसा बुद्धिमान् है जो अपना अप्रिय करके भी लोकप्रिय होने का आकाक्षी न हो !

सार्वजनिक जीवन मे सफल बनने के लिए मनुष्य अपने स्वार्थ का भी त्याग कर देता है। वास्तव मे त्याग और सहानुभूति पर ही समाज स्थापित है। सब अपने-अपने स्वार्थ का थोड़ा-बहुत त्याग कर एक अंश तक अपना कृत्रिम रूप बनाकर समाज मे रहते है। यदि ऐसा न हो तो सबकी आवश्यकताओ की पूर्ति नही हो सकती। अतएव सब अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्तियो को दबाते हैं, अपने स्वार्थ के साथ दूसरो का स्वार्थ भी देखते हैं, सहयोग पाने के लिए दूसरो के साथ सहयोग करते हैं और समाज के नैतिक आदर्शों के सामने सिर झुकाते है। सामाजिक जीवन अब मानव-स्वभाव का अग बन गया है।

सार्वजनिक जीवन के विकास के लिए निम्नलिखित बातो को ध्यान में रखना चाहिए :

लोक-धर्म का पालन

धर्म से हमारा अभिप्राय किसी साम्प्रदायिक धर्म से नही है। मीमासा के शब्दो मे जो मगलजनक हो, जिससे सुख हो, वही धर्म है: 'य एव श्रेयस्कर: स एव धर्मशब्देनोच्यते।' मगल ही जीवन का परम पुरुषार्थ है। देश, काल और समाज के अनुकूल नैतिक आचरण ही धर्म है। उसी से समाज धारित होता है। इसलिए समाज में, शुक्राचार्य के मत से, जो स्वार्थ मे निरत रहता है, वही तेजस्वी होता है: 'यो हि स्वधर्मनिरत. स तेजस्वी भवेदिह।'

सत्य, अहिंसा, न्याय, विश्वास, शील, सौजन्य और सच्चरित्रता आदि ही मुख्य लोक-धर्म हैं। इन्हीं से मानव-चरित्र बनता है, कर्त्तव्य की रूपरेखा बनती है और लोक-कल्याण होता है। सक्षेप में, नैतिकता को लोक-धर्म मानना चाहिए। उसी से लोक-मर्यादा स्थापित होती है। अनैतिकता, निर्लज्जता या कामुकता आदि लोक-व्यवस्था को तोड़ती है, इसलिए समाज में इनका मान नही है।

लोक-सेवा से समाज में प्रधानता प्राप्त होती है। जो निस्वार्थ भाव से जनता की, मुख्यत: पीडितो की सेवा करता है, वही धीरे-धीरे 'जन-गण-मन-अधिनायक' बन जाता है। ईसा ने कहा है कि जो तुममे सबसे बडा होगा, वह तुम्हारा सेवक होगा।[1]

इसमे सन्देह नही कि जो महापुरुष होता है, वह जनता का सेवक होता है और जो जनता का सेवक होता है, वह महापुरुष। लोक कि प्रवृत्ति ऐसी है कि यदि आप सबकी सेवा करें तो आपकी सेवा को तैयार मिलेंगे। यदि आप उसके लिए आत्मबलिदान कर दें तो सब समाज भी आपके स्थान को संसार में चिरस्थायी बना देना चाहता है। लोक-सेवा से मनुष्य की एक सर्वप्रमुख आकाक्षा की पूर्ति होती है · वह है यशोपार्जन की। सच्ची कीर्ति इसी से मिलती है और विद्वानो के मत से जो कीर्तिवान् होता है वही जीवित होता है: 'कीर्तिर्यस्य स जीवति।'

---

1. He that is the greatest among you shall be your servant.
—Christ

लोक-सेवा के अनेक रूप हैं, जैसे—देश-सेवा, समाज-सेवा, साहित्य-सेवा आदि। कोई भी रचनात्मक कार्य जिससे सार्वजनिक हित हो, वह लोक-सेवा है। आत्म-विकास के लिए मनुष्य को ऐसा कर्म करना चाहिए जिससे अन्त में यश और सुख मिले :

तत्कर्म पुरुषः कुर्याद् येनान्ते सुखमेधते। (नैषध)

गुण-कर्म का मान

समाज में गुण और कर्म से ही सम्मान मिलता है और आत्मोत्थान होता है। कारण यह है कि जगत् मे सब कुछ गुणमय एव कर्ममय है। सभी वस्तुएं अपने गुणो का विज्ञापन करती हुई एक न एक कर्म मे लगी हुई हैं। गुण एव कर्म से मनुष्य की उपयोगिता सिद्ध होती है। विष्णु पुराण में लिखा है कि गुणहीन पुरुष मे बल, शौर्य आदि सभी का अभाव हो जाता है और निर्बल तथा अशक्त पुरुष सभी से अपमानित होता है :

बलशौर्याद्यभावश्च पुरुषाणा गुणैर्विना।
लङ्घनीय समस्तस्य बल-शौर्य-विवर्जितः॥

व्यास ने लिखा है कि ससार में मनुष्य कर्म से ही प्रधान बनता है, धन या विद्या से नही : 'वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया।'

शौर्य-पराक्रम का मान

वीरो का ससार मे सदा से ही मान होता आया है। कहा भी है : 'वीरभोग्या वसुन्धरा'। शुक्राचार्य ने लिखा है कि शौर्य और पराक्रम से मनुष्य को जैसा सम्मान मिलता है, वैसा कुल से नही : न कुल पूज्यते यादृग् बल-शौर्य-पराक्रम.।' लोग स्वभाव से ही वीर को अपना नायक बना लेते हैं। दबनेवाले को सज्जन भी नही पूछते। वेदकालीन ऋषि भी इन्द्र को प्रभु बनाते समय कहते थे कि तू किसी से न दबता हुआ हमारा नेता बन : 'अदब्ध. सुपुर एता भवा नः' (ऋग्वेद)

संगठन का महत्त्व

जिसमे लोक-सग्रह या लोक-मत के सगठन की शक्ति होती है, वह

समाज मे सबल माना जाता है। दुर्गासप्तशती मे लिखा है कि सघ मे ही शक्ति है : 'सङ्घे शक्तिः।' संघ-शक्ति की दृढता से एक मनुष्य बहुतो की सम्मिलित शक्तियो को एक कार्य में जोड सकता है। सहयोग या एकसूत्रता से असाध्य भी साध्य हो जाता है। सघ-शक्ति दृढ करने के लिए योग्यता, चातुर्य, विश्वासपात्रता और आत्म-वीरता की आवश्यकता होती है।

संघ-शक्ति का यही अर्थ नही है कि मनुष्य कोई सेना खड़ी करे या संघ स्थापित करे। राष्ट्रीय जीवन का सबसे बडा संघ तो गवर्नमेंट है, जिसको दृढ़ बनाने से जन-शक्ति दृढ होती है। व्यक्तिगत जीवन का सबसे बड़ा सघ मित्र-मडल है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मित्रबल मनुष्य का बड़ा भारी बल है, जो उसके जीवन को विकासशील बनाता है।

धन और पद का मान

सम्पत्ति और पद-प्रतिष्ठा से भी समाज में गौरव बढता है। धन से इच्छाओ की पूर्ति नही होती, बल्कि सम्पूर्ण जीवन की पूर्ति होती है। रिक्त होने से सर्वत्र लघुता मिलती है और पूर्णता से गौरव मिलता है, ऐसा महाकवि कालीदास ने मेघदूत मे लिखा है। 'रिक्तः सर्वो भवति हि लघु. पूर्णता गौरवाय।' पुरुष को धन-काम-धाम कहते ही है। धन न रहने से पुरुषार्थ खडित हो जाता है।

पद से मनुष्य का स्थान उच्च होता है और वह अपने अधिकारी नाम को सार्थक करता है।

पारिवारिक जीवन का विकास

पारिवारिक जीवन का विकास करना भी आत्म-विकास का एक अंग है। समाज तो मनुष्य के जीवन का संग्राम-क्षेत्र होता है, घर या परिवार शिविर होता है। जीवन-सग्राम के थके सैनिक का वह रैन-बसेरा होता है। घर वही स्थान है जहां मनुष्य के स्वार्थ की पूर्ति होती है, जहा वह पूर्णतया मुक्त होकर अपनी स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति करता है। समाज मे मनुष्य की बहुत-सी प्रवृत्तिया दबी रहती हैं क्योकि वहा उसको

दूसरो के अनुकूल बनकर रहना पड़ता है। परिवार मे उन प्रवृत्तियो को तृप्त होने का अवसर मिलता है।

इसमे संदेह नही कि सर्व साधारण के लिए अपने पारिवारिक जीवन का विकास करना नितान्त आवश्यक है। गृह की सुख-समृद्धि से आत्म-समृद्धि होती है, अपनी नीव मजबूत होती है। इसलिए सफल गृहस्थ बनना सबके लिए कल्याणकारी है। गृहस्थ-जीवन का आरम्भ विवाह से होता है। विवाह मानव-जीवन का एक मधुरतम प्रसग है। दो अपरिचित परिचित बनते हैं। लोक-जीवन मे एकात्मता होती है। मनुष्य की एक हार्दिक कामना रहती है कि कोई वस्तु ऐसी हो जिसको वह अपनी कह सके, कोई वस्तु ऐसी हो जिसका उपभोग वह, और केवल वही, स्वच्छ-न्दतापूर्वक कर सके। पति को पत्नी के रूप मे और पत्नी को पति के रूप मे वह वस्तु प्राप्त होती है। पत्नी पति के पुरुषार्थ और पति पत्नी की मोहिनी शक्ति से, जो स्त्रियों मे स्वाभाविक होती है, परस्पर प्रभावित होते हैं। इस प्रकार सघर्षमय जीवन-क्षेत्र मे सरसता की धारा बहती है। इसका प्रभाव चरित्र पर और सम्पूर्ण जीवन के विकास पर पड़ता है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि बहुत-से पुरुष स्त्रियो की प्रेरणा से उद्यमशील बनकर महापुरुष या सफल व्यवसायी बने हैं। स्त्री के सामने पुरुष को अपना पुरुषार्थ स्वभावतः प्रमाणित करना पड़ता है, इसलिए इसमे आश्चर्य की कोई बात नही। स्त्रियो की प्रेरणा से ही नही, उनके लात मारने से भी कालिदास मूर्ख से महाकवि हो गए थे। स्त्री के दुर्व्यवहार से तग होकर कितनो ही ने परमार्थ के बड़े-बड़े काम किए हैं।

विवाह से ही जीवन का विकास होता है, ऐसा नही कहा जा सकता। सुप्रसिद्ध भारत-भक्त फ्रेंच लेखक रोम्यां रोला का मत था कि विवाहित व्यक्ति अर्द्ध-पुरुष या खण्डित पुरुष है।[1] अग्रेजी मे पत्नी को अपना उत्तम अर्द्ध-भाग (बेटर हाफ) कहते हैं। इस प्रकार पुरुष बेचारा तो हीनाग

1. A married man is no more than a half.

हो ही जाता है। खैर, हम रोम्या रोला के मत की पुष्टि के लिए यह सब नही लिख रहे हैं। हमारा अभिप्राय यह है कि स्वतन्त्र रहकर भी मेधावी मनुष्य आत्मोत्थान कर सकता है। विलायती पडितो का यह मत सर्वमान्य नही है कि पत्नियां ही पति को काम के मैदान मे खड़ा करती हैं। हमारे यहा राम को सीता से, कृष्ण को राधा से और बुद्ध को यशोधरा से क्या प्रेरणा मिली, पता नही। चाणक्य और पटेल को निश्चय ही कोई प्रेरणा नही मिली। ऋषि-मुनियो के तो हजारो उदाहरण इस प्रकार के है।

सत्य बात यह है, सयमित और आनन्दमय सांसारिक जीवन बिताने के लिए विवाहित जीवन परमावश्यक है। जो लोक-सेवा के पीछे अपने जीवन को लगाना चाहता है, उसके लिए यह उतना आवश्यक नही है। परन्तु सुन्दर पारिवारिक जीवन से उसको सहायता अवश्य मिलती है। यदि स्त्री दुर्मुखा मिली तो आत्म-विकास तो दूर रहा, वहा आत्मनाश होने लगता है। एक संस्कृत कवि ने कहा है कि दुर्विनीता स्त्री से वेश्या पत्नी ही अच्छी है : 'वर वेश्या न पुनरविनीता कुलवधूः।' पारिवारिक जीवन आनन्दमय हो सकता है और घोर विपत्तिमय भी। प्रयत्न यही करना चाहिए कि वह सुखमय हो, क्योकि उससे आत्म-सुख के अतिरिक्त समाज का सगठन होता है। अंग्रेजी की इस कहावत को ध्यान मे रखना चाहिए कि प्रसन्न परिवार तात्कालिक स्वर्ग है।[1]

व्यक्तित्व का विकास

अपने सपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना ही सच्चा आत्म-विकास है। समाज या परिवार का एक अग होकर भी प्रत्येक व्यक्ति अपना एक स्वतन्त्र रूप, एक स्वतन्त्र स्थान रखता है, उसी को उसका व्यक्तित्व या अपनापन कहते हैं। व्यक्तित्व का साधारण अर्थ है—व्यक्ति विशेष का सहज रूप, स्वत्व, स्वास्थ्य, स्वाभाविक रूप। परन्तु इसका व्यावहारिक

1. A happy family is an earlier heaven

अर्थ अधिक व्यापक है। शारीरिक या स्वाभाविक भिन्नता तो सबमें जन्म से होती है। उनके ही आधार पर सबके व्यक्तित्व का निर्णय नही होता। शरीर एव स्वभाव की भिन्नता होते हुए भी जिनमें कोई विशेषता नही होती, उनकी गणना सर्वसाधारण मे होती है। वे झुण्ड-मण्डली या भीड़ की संख्या बढानेवाले, समाज, जाति या किसी कुल के अग-मात्र गिने जाते है। समाज, जाति या कुल के नाम से परिचित होने वालो का स्वतत्र व्यक्तित्व नही माना जाता।

व्यक्तित्व वह है जिससे किसी की स्वतन्त्र सत्ता, आत्म-योग्यता, प्रभावता, श्रेष्ठता और असाधारणता प्रकट हो। व्यक्ति-विशेष के व्यक्तित्व मे जब मौलिकता होती है, निरालापन होता है, तभी उसका स्वरूप जनसाधारण से भिन्न माना जाता है। दूसरे शब्दो में, लौकिक जीवन मे किसी की अलौकिकता की व्यक्तता या विलक्षणता अथवा विशिष्टता ही उसको स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करती है। इस सम्बन्ध मे दर्शनशास्त्र का यह सिद्धान्त ध्यान रखने योग्य है कि किसी वस्तु की महानता ही उसके प्रत्यक्ष या व्यक्त होने का कारण होती है। अणु-परमाणु सूक्ष्म होने के कारण ही अव्यक्त रहते हैं। मनुष्य के सम्बन्ध मे भी यही बात लागू होती है। किसी का असाधारण विकास उसको व्यक्तित्व और स्वतन्त्र व्यक्तित्व देता है। तुच्छ बने रहने से मनुष्य अव्यक्त, अप्रसिद्ध एव सत्ता-महत्ता-विहीन होता है। जिस व्यक्ति के जीवन में प्रभाव, आकर्षण, तेज, आत्मबल और गुण-चरित्र का विकास होता है उसी के व्यक्तित्व की रजिस्ट्री समाज में होती है।

अतएव हमे यह जानना चाहिए कि जिस रूप मे मनुष्य अपने नाम से पहचाना जाए, समाज-जाति या वर्ग-विशेष के नाम से नही, वही उसका व्यक्तित्व है। यह रूप कुछ अशो में जन्म से प्राप्त होता है और विशेष अशो मे अपने बनाने से बनता है। बहुत-से लोग जन्म से ही विशेष लक्षण-सम्पन्न होते है, उनकी आकृति से तेज झलकता है, उनके आचार-विचार से उनकी प्रतिभा, स्वभावज सद्गुणो की आभा टपकती

है और वे सर्वसाधारण से अधिक निर्मुक्त एव ऊचे लगते है। जन्मजात व्यक्तित्व का आगे के विकास पर वडा प्रभाव पडता है। वहुत-से लोग जन्म से विलक्षण न होते हुए भी स्वाध्याय, गुणो के सचय और कर्म से संस्कारित करके अपने को दूसरो की दृष्टि मे महान् वना लेते हैं। वहुत-से लोग ऐसे है जो जन्म से सतेज, प्रभावशाली होते हुए भी अपने को विगाड लेते है। इसलिए स्थायी व्यक्तित्व उसी को मानना चाहिए जो अपने वनाने से वनता है। सक्षेप मे उन वातो को जान लीजिए जिनसे व्यक्तित्व वनता या विगडता है।

स्वभाव

स्वभाव से मनुष्य के आत्म-स्वरूप का सच्चा विज्ञापन होता है। स्वभाव से मनुष्य प्रिय-अप्रिय, मान्य या हेय वनता है। स्वभाव से दूसरे लोग ही नही, अपना शरीर भी प्रभावित होता है। आकृति, व्यवहार, वाणी, अग-चेष्टा—सभी पर छाप पड़ती है। प्राचीन काल से विद्वान् लोग इसको मानते आए हैं। भारतीय विद्वानो के अतिरिक्त यूनानी विद्वान् भी इसको मानते थे कि शारीरिक वनावट मे स्वभाव की झलक मिलती है और उसके अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व-निरूपण हो सकता है। प्रसिद्ध कवि होमर इसका समर्थक और विशेपज्ञ था। दार्शनिक पडित सुकरात भी इस रहस्य को मानता था और महत्त्व देता था। अद्वितीय पाश्चात्य दर्शनशास्त्री अरस्तू ने अपने एक प्रसिद्ध ग्रन्थ में आकृति, वर्ण, अग, वाणी आदि के आधार पर मानव-स्वभाव की परीक्षा का वर्णन छ अध्यायो मे किया है। वाद के अनार्य द्विजो में हर्वर्ट स्पेन्सर, डार्विन आदि ने इस विपय का वैज्ञानिक विश्लेपण करके इसकी सत्यता को सिद्ध किया है। सवका यही मत है कि प्रत्येक मनोभाव का विशेप लक्षण होता है, जो शरीर पर प्रकट होता है। और उसके अनुकूल अग-चेष्टाए होती है। जव कोई मनोभाव स्वभाव के रूप मे स्थायी हो जाता है तो उसके स्थायी लक्षण शरीर पर और शारीरिक चेष्टाओ मे मिलते हैं।

प्रत्येक दशा में स्वभाव आकृति से प्रतिविम्वित होता है। इस विषय

में प्राचीन यूनानी ग्रन्थो में एक घटना का उल्लेख है। एक बार एक मनोवैज्ञानिक ने सुकरात को देखकर कहा कि यह आकृति और लक्षणो से विषयी, मूढ और आलसी प्रकट होता है। सुननेवालो ने मनोवैज्ञानिक की बातो पर विश्वास नही किया, परन्तु सुकरात ने कहा, "इसका कथन सत्य है—ये बातें मेरे स्वभाव मे जन्मगत थी। मैंने दर्शनशास्त्र के अध्ययन से अपने को सस्कारित कर लिया है।"

साराश यह है कि स्वभाव की सरलता, कुटिलता या जटिलता से मनुष्य के आकार-प्रकार, पारस्परिक व्यवहार और सम्पूर्ण व्यक्तित्व मे भेद पडता है। अतएव स्वभाव को सरल एव उन्नत बनाना चाहिए। उससे व्यक्तित्व का स्वाभाविक आकर्षण बढता है। मनस्विता से पुरुषार्थ प्रदीप्त होता है। सरल स्वभाव से ही व्यक्तित्व प्रकट होगा, अन्यथा मनुष्य गोरख-धन्धा जैसा लगता है। जब तक व्यक्तित्व सरल न हो, तब तक वह स्पष्ट कैसे होगा! कुटिल व्यक्तियो को कोई नहीं पूछता है। खारे समुद्र के पास चिडिया अपनी प्यास बुझाने नही जाती।

गुण और चरित्र

गुण और चरित्र से व्यक्ति को विशेष प्रधानता मिलती है। गुणों से वह गुणित, गण्यमान्य होता है। गुणवान् एव चरित्रवान् व्यक्ति कुरूप, निर्धन, अकुलीन होकर भी प्रभावशाली तथा लोकमान्य होता है। जाति और कुल की महत्ता इनके आगे क्षीण हो जाती है। जाति-कुल व्यक्तित्व को बनाने मे सहायक अवश्य होते हैं, परन्तु इतने नही। जाति-कुल के कारण ही किसी का बडप्पन या छोटापन सिद्ध नही होता। चीनी का मान इसलिए नही होता कि वह गुड की बेटी है। अग्निजात होने पर भी राख राख ही रहती है। गुण-चरित्र के प्रभाव से हीनजात व्यास पण्डित-समाज में वन्दित होते है। व्यास अविवाहित मत्स्यगधा की पाप-सन्तान थे। पराशर ऋषि ने उसको योजनगधा (अर्थात् जिसके शरीर की सुगन्ध एक योजन तक जाए) बनाकर उसके द्वारा व्यास को पैदा किया था। व्यास ने अपनी विद्वत्ता, तपस्या और श्रेष्ठ आचरण से कुल-कलंक

को धोकर अपने व्यक्तित्व को ऊचा उठाया। साधारण लोक-जीवन मे देखिए तो यही ज्ञात होगा कि गुणी और चरित्रवान् की ही लोक मे प्रतिष्ठा है। किसी चित्र मे जिस प्रकार हम उसके रगो के मेल को नही बल्कि उसकी कला को महत्त्व देते हैं; किसी कविता मे जैसे शब्द योजना को नही उसके भाव को महत्त्व देते हैं और पुष्प में उसके आकार और बाह्य सौंदर्य को नही उसके प्राकृतिक रूप-गन्ध को मान देते है; उसी प्रकार मनुष्य के सम्बन्ध मे उसके शारीरिक रूप को नही, बल्कि उसके गुण, चरित्र को विशेष स्थान दिया जाता है। वेश्या शरीर से रूपवती हो सकती है, परन्तु समाज उसके व्यक्तित्व को स्वीकार नही करता, यद्यपि उसमे कुछ गुण होते है, परन्तु चरित्र नही होता। गुण के साथ नैतिकता होने से ही मान बढ़ता है। उन्ही से मनुष्य का लोकरंजक रूप बनता है। नैतिकता-नाश से वह पतित बन जाता है। नेपोलियन ने कहा कि बड़े-बड़े लोग भी अपनी चारित्रिक दुर्बलता के कारण पथभ्रष्ट, मानभ्रष्ट हो जाते है। स्त्रियो के पीछे कितने ही लोग अपने को नष्ट कर देते हैं

कार्य-दक्षता

किसी भी विषय मे कार्य-पटु, प्रवीण, सिद्धहस्त, विशेषज्ञ होने से मनुष्य की आत्म-समर्थता, उपयोगिता व्यक्त होती है और उसके कार्य-क्षेत्र में उसकी सत्ता स्वीकार की जाती है। कोई भी रचनात्मक कार्य सुचारु रूप से करके मनुष्य अपने को ऊचा उठा देता है, इसमें सशय नही।

वाणी-बल

वाणी-बल के विकास से व्यक्तित्व का अत्यधिक विकास होता है। वाणी की सिद्धि से मनुष्य लोकनायक बन जाता है। उसी मे मनुष्य का अन्तर्बल, प्रभाव-बल प्रकट होता है। अतएव आत्मोत्थान के लिए इस श्रेष्ठ साधन का आश्रय लेना चाहिए। जीवित होने का लक्षण है, बोलना। वाणी बन्द होने पर प्राणी मृतक या मृत-तुल्य माना जाता है। मनुष्य होकर जीवित होने का लक्षण है सार्थक वाणी बोलना, क्योकि जीवो

में मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जो भावों को भाषामय बनाकर सार्थक कर सकता है। अतएव अपनी इस विलक्षण शक्ति के विकास से विलक्षणता प्राप्त करनी चाहिए।

वाणी-प्रयोग के कई रूप हैं। सबसे प्रभावक रूप है—भाषण। अपने भाषणों से लोग जनता को वश मे कर लेते हैं। अच्छा भाषण वह होता है जो विचारोत्तेजक हो, मर्मस्पर्शी हो और जिससे सार्वजनिक हित का सम्पादन हो। भाषण का प्रयोजन देर तक जोर से चिल्लाना नही होता। एक योजना पर, धैर्य विश्वास के साथ, सप्रमाण और सक्षिप्त दिया हुआ भाषण ही प्रभावोत्पादक होता है। वक्ता बनने के लिए व्यापक दृष्टिकोण रखना चाहिए, एक लक्ष्य रखना चाहिए, एक सिद्धान्त और नैतिक मत व्यजित करना चाहिए। सक्षेप मे सप्रभाव कहा हुआ छोटा-सा सारगर्भित भाषण लम्बे-चौडे व्याख्यान से कही अधिक हृदय-आन्दोलक होता है। अफ्रीका की कुछ जातियो में, एक विचित्र प्रथा है। वहा वक्ता को एक पैर पर खड़े होकर ही व्याख्यान देना होता है। उठे हुए पैर के गिरते ही उसको अपना भाषण समाप्त कर देना होता है। इस इस प्रथा के आविष्कारको का प्रयोजन यह लगता है कि कम से कम समय मे अधिक सारयुक्त बात कहनी चाहिए; श्रोता के समय का अपव्यय न करना चाहिए। दूसरी बात यह होती है कि 'विचलित हुए तो गए'। अतएव दृढ होकर भाषण करना चाहिए, निश्चयात्मक बुद्धि से आशा-धैर्य-विश्वास का देवदूत बनकर बोलना चाहिए, मूर्ख जनता हो तो उसको हाकना चाहिए, भीरु हो तो उसका हाथ पकडकर खीचना चाहिए, समझदार हो तो उसको आगे का मार्ग बतलाना चाहिए—नेतृत्व करना चाहिए; सकट से पूर्व सचेत करके उज्ज्वल भविष्य की ओर सकेत करना चाहिए। तर्क-सम्मत, न्याययुक्त वाणी बोलने से लोकमत अपने पक्ष में होता है और इस प्रकार कुशल वक्ता का व्यक्तित्व लोक-दृष्टि मे ऊंचा उठता है।

वाणी-बल का दूसरा उपयोग लिखने में होता है। लेखन-शक्ति से मनुष्य महाशक्तिशाली बन जाता है। उससे वह देश-समाज मे क्रान्ति-शान्ति कुछ भी कर सकता है। सुन्दर सारगर्भित शैली मे जीवन साहित्य आदर्श साहित्य प्रस्तुत करनेवाले व्यक्ति अपनी रचनाओ से लोक मे अपना विशेष स्थान बना लेते हैं। उनकी आर्थिक, पारिवारिक, शारीरिक और चारित्रिक विवशताए भी उनकी साहित्यिक कीर्ति के पीछे छिप जाती है। बर्नार्ड शॉ कुरूप थे, परन्तु अपने ग्रथो मे महारूपवान् लगते हैं, उनकी प्रतिभा साकार होने पर उनकी कुरूपता को ढक देती है। उनके जीवन की एक घटना है कि एक बार उनके एक नाटक के अभिनय के उपरान्त उसकी प्रधान पात्री, एक अनिन्द्य सुन्दरी, शॉ की योग्यता के कारण उनपर मुग्ध हो गई। उसने कहा कि यदि हमारा-आपका विवाह-सम्बन्ध हो जाए तो उसके फलस्वरूप जो सन्तान होगी वह अभूतपूर्व होगी क्योंकि उसमे आप जैसी विलक्षण प्रतिभा और मेरे जैसा आकर्षक रूप होगा। बर्नार्ड शॉ ने कहा कि ठीक है, परन्तु दैवयोग से यदि उलटा हुआ तो क्या होगा, अर्थात् मेरे जैसा कुरूप हुआ और तुम्हारी जैसी दुर्बुद्धि हुई तो वह सतान कैसी होगी ?

तात्पर्य यह है कि लेखन-शक्ति से व्यक्तित्व का आकर्षण बढ जाता है। आकर्षण ही नही, बल भी बढ जाता है। आजकल पत्रकार होने में एक बड़ा लाभ यही है कि लोकमत हाथ में आ जाता है। अच्छे पत्रकार से सभी डरते है नेपोलियन जैसा महावीर भी समाचारपत्रो से डरता था। उसने एक बार कहा था कि मैं एक लाख सगीनो की अपेक्षा तीन समाचार-पत्रो से अधिक डरता हू।[1]

लेखक या पत्रकार होकर भी अपनी महिमा निश्चय ही प्रकट की जा सकती है। दिग्गज विद्वान् को सब दिग्गज जैसा महान् मानते हैं। आलोचक को छोटा कौन मानता है? गवर्नमेण्ट भी उससे शकित

---

1 I fear three newspapers more than a hundred thousand bayonets

—Napoleon

रहती है।

वाणी-व्यवहार में इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि कहीं सत्य की हत्या न हो। सत्य को दबाने से वाणी का प्रभाव कम हो जाता है। निर्भीकता, विचार-स्वतन्त्रता और सतर्कता से उसके शरीर में आत्मा, बुद्धि और मन की स्थापना होती है, वाणी जीवित हो जाती है।

गम्भीरता

विचार, वाणी, कर्म—तीनो की गम्भीरता से व्यक्तित्व का मान बढता है। चचलता से हलकापन प्रकट होता है। गम्भीर रहने से मनुष्य सबसे घुलता-मिलता नही, यह सत्य है, परन्तु वह औरो से अधिक ठोस प्रतीत होता है। लोग उसका सम्मान करते है; समझते हैं कि इस अगाध समुद्र मे न जाने कितने रत्न और मगरमच्छ हो सकते हैं! कोई लोक-नेता या उच्च-पदाधिकारी जब तक गम्भीर रहता है, तभी तक उसके नीचेवाले उसका सम्मान करते हैं। सर्वसुलभ होते ही उसका व्यक्तित्व पानी में चीनी की तरह गल जाता है। गम्भीर और शान्तचित होना शासकों और लोकनायको का एक असाधारण गुण माना गया है। फ्रास के बहु-प्रसिद्ध भूतपूर्व मत्री कार्डिनल रिचलू का कथन है कि उचित रीति से राष्ट्र-शासन करनेवाले के लिए अधिक सुनना और कम बोलना नितान्त आवश्यक है।[1]

एक सुप्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि शासक के लिए अव्यग्रता सबसे आवश्यक गुण है।[2]

अस्थिरता, असहनशीलता और क्रोध से चित्त की शान्ति और गम्भीरता नष्ट हो जाती है। और कम से कम क्रोध का यह परिणाम होता है कि अधिकारी व्यक्ति मर्यादाभ्रष्ट होकर अपने आश्रितो के अधीन हो

1. One must listen a great deal speak little to govern a nation properly. —Richeleu

2. Coolness is the most important quality for man destined to rule. —Andre Mauris

जाता है। इसीलिए विद्वानो का मत है कि क्रोध आने पर गम्भीर हो जाना चाहिए, क्योकि क्रोध को व्यक्त करने में विलम्ब करना ही उसके नाश की एकमात्र अमोघ औषधि है।

अलौकिकता

लौकिक जगत् मे अलौकिक लगने से मनुष्य का व्यक्तित्व विलक्षण बनता है, यह हम कह चुके है। उस अलौकिकता का तात्पर्य यह नही है कि अप्राकृतिक कार्य करो। उसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य सर्वसाधारण की पहुच से बाहर रहे। सर्वसाधारण स्वार्थग्रस्त रहते हैं, अतएव स्वार्थ-त्याग अलौकिक गुण है। सर्वसाधारण वासनाओ में फसे रहते है, अतएव वासनामुक्त होना अलौकिकता है; प्रलोभनमुक्त होना तथा मोहमुक्त होना अलौकिकता है। जब किसी के चरित्र मे साधारण मानवीय दुर्बलताओ का आभास नही मिलता तभी हम उसको अलौकिक प्राणी मानकर उसके व्यक्तित्व का सम्मान करते है। ऐसे अनेक वृत्तान्त हैं, जिनसे प्रकट होता है कि मनुष्य जब तक असाधारण बना रहता है तब तक लोग उसको देवता की तरह पूजते हैं। यदि वह किसी स्त्री के प्रेम मे फसकर आचरणभ्रष्ट हो जाता है अथवा कोई अन्य चारित्रिक दुर्बलता दिखलाता है तो लोग समझते हैं कि यह तो हमारी ही कोटि का दुर्बल प्राणी है। वहीं उसके प्रति आदर-श्रद्धा समाप्त हो जाती है। इसलिए साधारण व्यक्तियो जैसी कोई भूल न करनी चाहिए। उच्चपद पर रहकर किसी को यह समझने का अवसर न देना चाहिए कि आप केवल लौकिक प्राणी हैं—अर्थात् वही हैं जो दूसरे भी हैं। इसके लिए कुछ अशो तक अपने व्यक्तित्व को रहस्यमय बनाना पडता है। अपना एक रूप रखना चाहिए जो बार-बार देखने पर भी वैसा ही लगे, जो दूर से भी उतना ही प्रभावशाली हो, जितना निकट से। 'नाम बड़े और दर्शन छोटे' की उक्ति चरितार्थ नही होनी चाहिए। व्यक्तित्व को सरल रखकर भी उसको गम्भीरता से, चतुराई से, रहस्यमय बनाया जा सकता है। आकाश निर्मल होने पर भी रहस्यपूर्ण है।

संगति

सगति का प्रभाव भी व्यक्तित्व के निर्माण पर पडता है। तुलसी के शब्दो में 'सत्सगति महिमा नहि गोई।' अर्थात् सत्सगति की महिमा छिपी नही है। और उन्ही के शब्दो में 'को न कुसगति पाइ नसाई।' कुसगति से कौन नहीं नष्ट होता ! यह प्रभाव तो अपने चरित्र पर पडा ही है; अपने व्यक्तित्व के विकास पर और भी अधिक पडता है। इसको इन पंक्तियो से समझिए . 'गगन चढइ रज पवन प्रसगू।' (तुलसी) तथा 'गो गर्देराह हैं मगर आधी के साथ है।' (अकबर)। बडो की सगति से छोटे भी बडे बन जाते हैं या बडो जैसे लगते है। बडो के नाम ही में बडी सिद्धि होती है। उनके दर्शन-मात्र से हृदय में सत्प्रेरणाए उठती हैं। मनुष्य प्रत्यक्ष जीवन का एक आदर्श देखता है। सब दृष्टियो से सत्पुरुषो के सम्पर्क में रहना आत्म-विकासक होता है। महात्मा व्यास ने लिखा है कि महा-पुरुषो का दर्शन कभी निष्फल नही जाता। द्वेष, अज्ञान, प्रमाद या प्रसग-वश भी लोहा यदि पारसमणि से छू जाए तो वह सोना ही हो जाता है :

> महता दर्शन ब्रह्मन् जायते नहि निष्फलम् ।
> द्वेषादज्ञानतो वापि प्रसङ्गा प्रमादतः।
> अयसः स्पर्शसस्पर्शो रुक्मत्वायैव जायते। (महाभारत)

स्वावलम्बन

व्यक्तित्व के विकास के लिए सर्वदा स्वावलम्बन का ही आश्रय लेना चाहिए। सहायको की प्रतीक्षा मे बैठने से अपनी प्रगति रुकी रहती है। इस विषय में टैगोर का 'एकला चलो रे' उपदेश मान्य है। कर्तव्य का निश्चय करके और आत्म-शक्ति को सतुलित करके एक मार्ग पर चल निकलना चाहिए। जो अपनी रुचि का विषय हो उसको मौलिक बनाकर उसकी साधना मे अपने को लगाना चाहिए। जहा कठिनाइया मिलें वहा 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' न चिल्लाकर पूर्ण मनोबल और पुरुषार्थ के साथ अपनी परीक्षा देनी चाहिए। अग्नि-परीक्षा के बाद ही स्वर्ण कुन्दन होता है। हीरा खरादे जाने के बाद ही मूल्यवान् होता है। यह सोचकर

साहस के साथ कठिनाइयो में कूद पड़ना चाहिए। सकट को पार कर जानेवाला लोक-पूज्य होता है।

क्रमशः विकास

व्यक्तित्व का जब क्रमश. विकास होता है तभी वह स्थायी रहता है। विकास तब होता है जब सफलता के बाद सफलता की शृखला बधी रहे, जब कीर्ति अखण्डित रहे। अग्रेजी के किसी विचारक ने कहा कि प्रसिद्ध होने का यह एक दण्ड है कि मनुष्य को निरन्तर उन्नतिवान् बने रहना पड़ता है।[1]

क्रम खण्डित होने पर उसको पुन जोडना कठिन होता है। साख उखडने पर फिर नहीं बैठती। इसलिए अपने प्रभाव को प्रतिदिन बढाते रहना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब कि कहने से अधिक करके दिखाया जाए। कहने-मात्र या बड़प्पन का अभिनय करने-मात्र से धाक नही जमती। सिनेमा मे राम का अभिनय करनेवाले महापात्र की प्रतिष्ठा उतनी कभी नही हो सकती जितनी मर्यादा पुरुषोत्तम राम की। वास्तविकता का ही मान होता है। आत्मोत्थान करनेवाले का ध्येय सदैव यह होना चाहिए कि वह साधिकार अनुपम, अनन्य, सर्वाग्रणी बनकर दिखला देगा। 'मनसा वाचा कर्मणा' एक होकर उसको आत्म-विज्ञापन करना चाहिए और यथाशक्ति कीर्ति, धन और स्वास्थ्य का सचय करना चाहिए।

साराश

मनुष्य एक घड़ी की तरह है, जिसका सचालन-यन्त्र गुप्त रहता है, काम करनेवाले हाथ बाहर रहते हैं। दोनो जब ठीक रहते हैं तो मनुष्य घडी की तरह समय के साथ चलता हुआ विकास करता है। अतएव मनोबल और पुरुषार्थ को सयुक्त करके निश्चित गति से बढना चाहिए।

---

1 It is the penalty of fame that a man must ever keep rising.

२. मनुष्य का मस्तिष्क

मस्तिष्क-बल मनुष्य का प्रधान बल है

अथर्ववेद के शब्दो में मनुष्य का मस्तिष्क एक 'हिरण्यमय कोष' अर्थात् स्वर्ण से भरा हुआ कोष है। इनका स्पष्ट प्रमाण एक तो यही है कि शुद्ध शारीरिक परिश्रम करनेवाला व्यक्ति (मजदूर) दिन-भर मे अधिक से अधिक एक रुपया कमाता है, परन्तु एक बुद्धि-व्यवसायी उतने ही समय मे लाखो-करोड़ो रुपये कमा सकता है और कमानेवाले कमाते ही हैं। दूसरा प्रमाण यह है कि शरीर के हड्डी-मास एव रासायनिक तत्त्वो का मूल्य चार या पाच रुपये तक हो सकता है, परन्तु मानव-मस्तिष्क से निकली हुई एक तत्त्व की बात कभी-कभी लाखो रुपये की हो जाती है।

'हिरण्य-कोष' का अर्थ यह नही है कि मस्तिष्क एक रुपया बनाने का यन्त्र है। उसका व्यापक अर्थ यह है कि मस्तिष्क मानवजीवन की प्रधान सम्पदा है। मनुष्य की सभी सम्पत्तियों एव विलक्षणताओ का वही उत्पादक है। वही उसकी प्रधानता का मूल आधार है। कहा भी है कि 'सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम्'—सब अगो मे सिर प्रधान है। मस्तिष्क-बल का विकास ही मनुष्यता का प्रथम लक्षण माना जाता है।

शरीर से मनुष्य एक बहुत साधारण कोटि का जीव है। शरीर-सम्बन्धी कोई भी ऐसा बल और कर्म नही है जिसमे कोई न कोई पशु उससे श्रेष्ठ न हो। सिह जैसा पराक्रम और नाद, हाथी जैसा आकार-प्रकार, गृद्ध जैसी दृष्टि, पक्षियो जैसी गमन-शक्ति, घोड़े-गधे जैसी भार वहन करने की शक्ति मनुष्य को कहां सुलभ है! वह तो जन्म से ही

शारीरिक असमर्थता लेकर, जकड़ा हुआ, रोता-चिल्लाता, अर्द्ध-विक्षिप्त-सा पृथ्वी पर आता है; विना सिखाए अपने पैरो पर न तो खड़ा हो सकता है और न कोई काम ही कर सकता है। पशु-पक्षियो के वच्चे जन्म से ही समर्थ और शारीरिक क्रियाओ मे स्वावलम्वी होते हैं। इन असमर्थताओ के होते हुए भी मनुष्य केवल अपने मानसिक वल की श्रेष्ठता से सर्वसमर्थ एवं सर्वप्रधान प्राणी वन जाता है। ईश्वर के वाद सर्वशक्ति-सम्पन्न वही माना जाता है। मस्तिष्क-वल से साधनो का आविष्कार करके वह पशुवर्ग पर विजय प्राप्त करता है, प्रकृति से अतिरिक्त शक्ति लेता है और ससार के भीतर अपने एक नये ससार का निर्माण करता है। वायुयानो पर वैठकर वह सैकड़ो-हजारो पक्षियो की सम्मिलित गति से आकाश में गमन करता है। ध्वनि-विस्तारक यन्त्र से वह ऐसी आकाश-वाणी सुनाता है कि वह पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक गूंज जाती है। मनुष्य-निर्मित यन्त्रो मे सहस्रो घोडो की शक्ति समाई रहती है। उसकी एक मालगाड़ी पर लाखों गधों का भार ढोया जाता है। दूरदर्शक यन्त्रो से वह दूर के ग्रहो के भीतर भी झाक लेता है। जो उनसे भी नही दिखलाई देते, उनको ज्योतिष-गणित से देख लेता है। अपनी ज्ञान-दृष्टि से वह भूत-भविष्यत्-वर्तमान सवको देखने की क्षमता रखता है। उससे वह प्रत्यक्ष को ही नही, अप्रत्यक्ष को भी देखता है। ससार-व्याप्त अनन्त शक्ति-तरगो का अनुभव करता है और उनको पकड़ता है।

शारीरिक सम्वल की सीमा है, मानस-सम्वल की कोई सीमा आज तक देखी नही गई। पैरो से मनुष्य एक सीमा तक ही दौड़कर जा सकता है, और शरीर से मृत्यु तक दौड़ सकता है, परन्तु मस्तिष्क के विचार जहा तक दौडकर जा सकते है, वह सीमा आज तक निर्धारित नही हो सकी। शरीर-नाश के वाद भी मस्तिष्क भविष्य की शताव्दियो में समाया रहता है और कई युगों तक उसके विचार सजीव रहते हैं। मस्तिष्क-वल से मनुष्य जितना ऊचा उठ सकता है, उसकी नाप भी नही हो सकती। एक से एक वढकर कवि, विचारक, आविष्कारक, राजनीतिज्ञ और कूट-

नीतिज्ञ पैदा होते ही रहते हैं। उनकी विशालता का अनुमान भी नही लगाया जा सकता। एक छोटा-सा प्राणी भी एक विशाल जगत् को अपने मस्तिष्क के एक कोने में डाले रहता है। यही नही, वह तो विराट्‌रूपधारी परमेश्वर को भी अपने अन्तस्तल में बैठने के लिए निमन्त्रण देता रहता है। उसका पेट सेर, दो सेर भोजन से भर जाता है; जेब, तिजोरिया कुछ लाख रुपयो से भर जाती है, परन्तु चित्त तो संसार की समस्त सम्पत्तियो से भी नही भरता और कभी-कभी दो-चार बातो से ही भर जाता है।

वास्तव में मस्तिष्क-बल असीम है। उसकी असीमता के कारण मानव-शक्ति भी असीम है। लोग भ्रमवश अपने मन मे अपनी समर्थता की एक कल्पित सीमा बना लेते हैं। वह उनकी व्यक्तिगत सीमा होती है। मस्तिष्क के विकास की कोई सीमा नही बाधी जा सकती, यह असख्य प्रमाणो से प्रसिद्ध है। सारी बातो से यह स्पष्ट है कि मनुष्यो का मस्तिष्क ही उसका कल्पतरु, सर्वसिद्धिदायक कवच, महत्त्व का महत्तत्व और अपना सर्वस्व है। जिस प्रकार एक हज़ार की सख्या मे से यदि एक को निकाल लिया जाए तो उसके आगे के शून्य, शून्य—अर्थात् मूल्यरहित हो जाते हैं, उसी प्रकार मानवजीवन से उसके मस्तिष्क को अलग कर देने से उसकी 'एकता' या महत्ता और सारी मनुष्यता ही समाप्त हो जाती है। किसी पागल की दशा को देखकर यह बात ठीक से समझी जा सकती है। जीवित रहते हुए और शरीर के सबल होते हुए भी ऐसा व्यक्ति पशु से भी अधिक निर्बल, निस्सहाय और बेकार हो जाता है। मानसिक बल की महत्ता पर एक दृष्टि से और विचार कीजिए। शरीर से निर्बल होकर भी बुद्धिमान् व्यक्ति करोड़ों बलवानो पर अपना आधिपत्य स्थापित करता हुआ देखा जाता है। शरीर-बल मस्तिष्क-प्रसूत उपाय-बल की सर्वदा विजय होती आई है। मनुष्य को संसार में ऐश्वर्य अर्थात् देवत्व देनेवाला उसका मस्तिष्क ही है। भीतर से नही, बाहर से भी वह मानव की महिमा का प्रतीक है। सिर उठाने से मनुष्य की मनुष्यता उठती है, उसके झुकाने

से दीनता प्रकट होती है। वैभवसूचक वस्तुए मस्तक पर ही रखी जाती हैं—जैसे पगड़ी, टोपी। मस्तक पर पुरुषो का विजय-तिलक और स्त्रियो का सौभाग्य-बिन्दु लगता है। महान् की महत्ता कहा नही पूजी जाती।

मस्तिष्क का साधारण परिचय

मानव-बल के प्रभाव को समझते हुए भी स्वय मस्तिष्क के स्वरूप को समझना कठिन है। सत्य बात यह है कि कोई भी ठीक-ठीक यह नही बता सकता कि वह (मस्तिष्क) क्या है और कैसा है। स्थूल रूप से वह कपाल के भीतर सुरक्षित एक छोटा-सा चेतना-यत्र है, जो सपूर्ण शरीर के चेतना-चक्र[1] से संयुक्त होकर इन्द्रियो को चेतनता देता है और उनके द्वारा विषयो का ज्ञान प्राप्त करता है। यह उसका अग-रूप है। उसका एक अनगरूप भी है, जो अधिक शक्तिशाली एव स्वतन्त्र रहता है। अग-अनग दोनो मस्तिष्क के पर्यायवाची हैं। मस्तिष्क का अगरूप तो वही है जिसको सभी शरीरशास्त्री जानते हैं और जिससे शरीर का समस्त चेतना-कर्म सम्पादित होता है। अनगरूप भावनामय है, तत्त्वमय और अनुभवगम्य है, परन्तु प्रत्यक्ष नही। वह शरीररहित और भाव-शरीरधारी है। उस रूप मे वह कैसा है, कितना बडा है, इसको कोई नहीं बता सकता। अतएव मस्तिष्क के विषय मे इतना ही ज्ञात है कि वह क्या करता है और कैसे करता है तथा किस प्रकार व्यक्त होता है। उसकी जिन शक्तियो या प्रवृत्तियो से स्वय उसका चेतना-भाव सचालित होता है, उनकी अनुभूतिमात्र होती है। एक बात का अनुभव और होता है कि मस्तिष्क का शारीरिक रूप ही उसके क्रिया-तत्त्वो का धारक होता है। वह विकृत हो जाता है तो चेतना-शक्ति स्वय शरीर को प्रभावित नही कर सकती।

मनोवैज्ञानिको ने मस्तिष्क की क्रिया-प्रणाली का अध्ययन करके उसको दो भागो में विभाजित किया है। सामने के उन्नत भाग को वृहत् मस्तिष्क या चेतन मन कहते है और पीछे के भाग को लघु मस्तिष्क

1. Nervous system.

या अन्तर्मन। इन्ही दोनो से भाव, विचार या सज्ञा-सम्बन्धी शारीरिक कार्य होते हैं। ज्ञान-तन्तुओ के यही केन्द्र-स्थान होते हैं। दूसरे शब्दो में चित्त-प्रवृत्तियो और सवेदनाओ के यही चेतना-स्थान होते हैं। मन नामक तत्त्व से ये दोनो अग सचालित होते हैं। 'मन', चित्त, अन्त करण, हृदय और मस्तिष्क के अर्थ मे भी व्यवहृत होता है। प्राचीन तत्त्वज्ञो ने हृदय के भावना-सम्बन्धी जो गुण-धर्म बताए है, उनसे उनका अभिप्राय मस्तिष्क से है। इस तथ्य को स्वर्गीय विद्वान् महामहोपाध्याय डाक्टर गणनाथ सेन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रत्यक्ष शरीर' मे तर्कसहित प्रमाणित किया है। अतएव हमे मन को मस्तिष्क का क्रियातत्त्व मानकर उसके दोनो अगो के सम्बन्ध मे कुछ जान लेना चाहिए।

चेतन मानस ज्ञान एव विचार का स्रोत होता है। यही अग कल्पना करता है, मनन करता है, चिन्तन, विवेचन और विवेक करता है। इस खण्ड पर मनुष्य का पूर्ण अधिकार रहता है। विद्या, अभ्यास, ज्ञान, व्यायाम और पौष्टिक तत्त्वो से इसको विशेष सक्रिय, कुशाग्र तथा प्रबुद्ध बनाया जा सकता है। इसको इच्छानुसार केन्द्रित और नियन्त्रित किया जा सकता है। इसी भाग के विकास से ज्ञान और सम्पूर्ण मनुष्यत्व का विकास होता है। यही मनुष्य का भविष्य-निर्माता या भाग्य-विधाता होता है। तभी लोग कहते हैं कि ललाट में मनुष्य का भाग्य लिखा रहता है। यह अनुभवी होने के साथ-साथ विचारक और आविष्कारक भी होता है।

चेतन मन स्वभाव से स्वच्छन्द, चचल और शीघ्रगामी होता है। ससार की अन्य कोई वस्तु इतनी स्वेच्छाचारिणी और तीव्रगामिनी नही होती। यह स्वर्ग तक दौडता है और पल-मात्र मे शरीर खाट पर पडा रहे, तो भी मन हज़ार दो हज़ार मील की दूरी पर किसी के बन्द शयनागार मे पहुच सकता है। उसके आने-जाने की कही रुकावट नही; वह अपने ही रथ पर चलता है, जिसको मनोरथ कहते हैं। ब्रह्म के विषय मे कही हुई तुलसी की यह उक्ति उसके विषय मे भी चरितार्थ होती है :

पग बिनु चलै सुनै बिनु काना ।
करबिनु कर्म करै विधि नाना ।। (मानस)

यह मन कभी खो जाता है, कभी चोरी हो जाता है, कभी जल-भुनकर राख हो जाता है, कभी फूल जाता है, कभी छोटा होता है और कभी किसी रस मे मग्न होकर डूब जाता है। कभी यह कटाक्षमात्र से घायल हो जाता है, कभी केवल बातो से, और कभी गालियो को भी बडे प्रेम से सुनता है—जैसे विवाह में। जिसमे यह रम जाता है, वही मनुष्य के लिए मनोरम हो जाता है, चाहे वह कितना ही कुरूप क्यो न हो! जहा से यह टूट जाता है, वहा से जीवन का सम्बन्ध टूट जाता है। चेतन मन का यह वर्णन कवित्वपूर्ण नहीं बल्कि यथार्थ है। जब यह मनमोदक खाता है, तो मुख मे अनायास लार टपकती है। मानसिक दुराचार की अवस्था में इन्द्रिया अकारण चचल हो जाती है। कल्पित कोप से शरीर उत्तप्त हो जाता है। शरीर पर ही नही, सम्पूर्ण जीवन पर कल्पना-क्रिया का प्रभाव पडता है।

सक्षेप मे यही समझना चाहिए कि चेतन मानस का क्षेत्र अत्यन्त उर्वर है। उसमे प्रत्येक क्षण विचारो की सृष्टि होती रहती है। वह केवल इन्द्रियो की सहायता से ही विषयोपलब्धि नही करता, बल्कि स्वतन्त्र रूप मे भी कार्य करता है। किसी कार्य में लगे रहने पर वह उसी के सम्बन्ध मे विचार करता है, परन्तु कार्य न होने पर वह स्वभाववश बाहर दौडने लगता है और यह समझ लेना चाहिए कि किसी कार्य मे चेतन मन के लग जाने का अर्थ है, उस कार्य में सम्पूर्ण शारीरिक शक्ति का एक साथ लग जाना, क्योकि वही शरीर का चेतनाधार होता है।

अन्तर्मन

अन्तर्मन चेतन मन का ज्ञानकोष होता है। अगरूप मे यह गोलाकार होता है और इसको काटने पर इसमे पुस्तक के पन्नो जैसे छोटे-छोटे दल मिलते हैं। इस खण्ड में ज्ञान-विचार के तन्तु नही होते। चेतन मानस की तरह न तो यह स्वतन्त्र होता है और न बाह्य जगत् से सम्बद्ध।

वाहर से चेतन मन द्वारा जो अनुभूति होती है, वही यहा पर स्मृति-रूप में सचित रहती है। देखी, सुनी अथवा विचार की हुई प्रत्येक वात यहा वैठती है और आगे विचारों की आवश्यकता के अनुसार उनसे सयुक्त होती है। एक ही बात को बार-वार देखने-सुनने या सोचने से उसकी गहरी छाप इस मन पर पड जाती है और समय पड़ने पर चेतन मन उन आकृतियो, ध्वनियो आदि के अनुरूप व्यक्ति को तत्काल पहचान लेता है। प्राय. ऐसा होता है कि किसी को देखकर आप उसको पहचान लेते है, परन्तु उसका नाम, पूर्व-परिचय का स्थान ध्यान में नही आता। वहुत-सी वातें मन मे रहती हैं, परन्तु वे ठीक-ठीक याद नही आती या जीभ पर नही आती। इसका कारण यह है कि उनकी छाप अन्तर्मन पर गहरी नही रहती, पर रहती अवश्य है। होता यह है कि अन्तर्मन मे वहुत-सी वातें वैठती हैं और खो जाती हैं। कभी-कभी वे अनायास प्रकट हो जाती हैं और कभी-कभी वहुत-सी वातो के साथ उलझी हुई। स्वप्नावस्था में कभी-कभी जो विचित्र दृश्य दिखलाई पडते हैं, उसका मुख्य कारण एक यह भी है कि मनुष्य के अन्तर्मन में कल्पित, पठित या प्रत्यक्ष घटित घटनाओ के क्रम उलझकर एक विचित्र रूप में प्रकट होते हैं। उन स्वप्नो से मनुष्य की आन्तरिक स्थिति का पता चल जाता है। स्वप्नो से यह पता चलता है कि चेतन मन किस प्रकार के विचारो से अपने घर को भर रहा है और मनुष्य की भीतरी स्थिति कैसी है।

अन्तस्तल विचारो का सरक्षक या धारक ही नही, उनका सचालक एव उत्पादक भी होता है। जीवन की इच्छाए, प्रवृत्तिया यही उत्पन्न होती हैं और वे चेतन मानस की विचारधारा को चुपचाप प्रभावित करती है। असख्य चित्त-प्रवृत्तिया, भावनाए, वासनाए जो स्वभाव के रूप मे होती है, इसी खड मे सोती रहती है। आशा, विश्वास, मान, मद श्रद्धा-भक्ति, प्रेम, भय, लोभ, क्रोध और मोह आदि के भाव-दुर्भाव यही उत्पन्न होते है। मनोज का तो वह पिता ही होता है। इन वासनाओ का या भावो का विचारो पर प्रवल प्रभाव पडता है। मन मे भूत रहने से

झाड़ी में भी भूत दिखाई पड़ता है, स्वभाव में वासना रहने से सती की आकृति मे भी कामिनी का रूप प्रतीत होता है और सद्‌भाव रहने से वेश्या में भी बहन की छाया दिखाई पड़ती है। अन्तर्मन में कपट की भावना होती है तो कल्पनाकार मन हाथ को माला पकडाकर वैठा देता है और दान-दक्षिणा की कामना करता है। उसमें ग्लानि होती है, तो वह विचारक मन आत्महत्या का विचार करता है। उसमें वैराग्य होता है, तो मनुष्य लाखो-करोडो की सम्पत्ति को कोडी बराबर समझता है। वास्तव में अन्तःकरण में जैसी भावना रहती है, उसी के अनुसार हमारा बाहरी दृष्टिकोण बनता है। किसी मन्दिर की मूर्ति मे एक व्यक्ति देवता का आभास देखता है, दूसरा व्यक्ति उसी को एक निर्जीव पत्थर का टुकड़ा मानता है। क्यो ?—क्योकि पहले व्यक्ति के हृदय मे देवता की भावना-मूर्ति रहती है जिसके अनुसार उसी की छाया वह पत्थर की मूर्ति मे देखता है। देवता पत्थर में नहीं रहते, हृदय मे रहते है। दूसरे के हृदय मे वह भावना नही रहती, इसलिए वह बाहर देवता को कहा से देखेगा ! किसी को एक व्यक्ति परम आदर-श्रद्धा की दृष्टि से देखता है, दूसरा व्यक्ति उसी को घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। इसका भी कारण वही है—प्रद्वेप या अतिसम्मान की भावना मन के संकल्पो के अनुसार ही उत्पन्न होती है : 'प्रद्वेपो बहुमानो वा सकल्पादुपजायते।'— (स्वप्नवासवदत्ता)। तुलसी के शब्दो मे :

जाकी रही भावना जैसी ।
प्रभु-मूरति देखी तिन्ह तैसी ॥ (मानस)

एक पाश्चात्य विचारक ने भी लिखा है कि हम किसी वस्तु को उसके यथार्थ रूप मे नही बल्कि उस रूप में देखते हैं जिस रूप में हम स्वय होते हैं।[1] अग्रेजी में कहा भी है कि सौन्दर्य देखने वाले की आख मे (पहले से ही) रहता है।[2] यह सर्व-अनुभूत सत्य है कि विचारों को सरस

1. We see things not as they are but as we are
2. Beauty lies in the eye of the beholder

या नीरस, आशामय या निराशामय बनानेवाला हमारा अन्तर्मन ही होता है, जिसमे हमारे स्वाभाविक एव उपार्जित गुण संचित होकर हमारे दृष्टिकोण को बनाते है। वही हमारे संम्पूर्ण चरित्र और व्यक्तित्व का आधार होता है। वही हमारा साधन-क्षेत्र है।

इस प्रसग मे यह स्मरण रखना चाहिए कि अन्त:करण बाह्य जगत् के सम्पर्क में नही रहता। उसमे मनुष्य की कुछ सहजात वृत्तिया रहती हैं, जो चेतन मन को प्रेरित करती है। सद्‌भाव और दुर्भाव दोनो उसमें रहते है। प्रत्येक व्यक्ति मे इनमे से एक की प्रबलता होती है। उनका पोषण या निराकरण मनुष्य स्वेच्छा से नही कर सकता। यदि दुर्भाव है, तो वे आसानी से हृदय-प्रदेश से निर्मूल नही किए जा सकते। उनको निर्मूल करने का एक ही उपाय है। यदि चेतन मन द्वारा हम लम्बे अर्से तक सद्विचार करें तो अन्तर्मन की सद्‌भावनाए पोषित होगी। उनके प्रबल होने से दूषित मनोवृत्तिया दब जाती हैं। कल्याण के विचार करने से, सद्‌गुणो का अभ्यास करने से तथा शिक्षा द्वारा अन्तर्मन सस्कारित हो जाता है। अन्य किसी उपाय से अन्तस्थल मे सद्‌वृत्तियो की सृष्टि नही हो सकती। यदि इसके प्रतिकूल किया जाए तो धीरे-धीरे भीतर दुर्भावनाओ का विकास होता है, मनुष्य व्यसनी, विषयी और आदतो का गुलाम हो जाता है। सार रूप में यही समझना चाहिए कि सद्विचारों, दुर्विचारो तथा सत्कर्मो-दुष्कर्मों से हमारी आदतें बनती हैं, स्वभाव बनता है, मनोदशा बनती है और मनोदशा के अनुसार सम्पूर्ण जीवन बनता है। स्वभाव या मनोदशा के दुष्ट होने पर विचार निर्बल हो जाते हैं और इन्द्रिया दुराचारिणी हो जाती हैं। यदि मनुष्य मन से क्लीव होता है तो उसका सारा पुरुषार्थ निष्फल हो जाता है। उपनिषद्‌कारो ने सत्य ही लिखा है कि मन ही मनुष्य के बन्धन एवं मोक्ष का कारण होता है: 'मन एव मनुष्याणा कारण बन्धमोक्षयो:।' मनोयोग से कोई तो मनो-बल सचित करके अधिक समर्थ एवं स्वतन्त्र बन जाता है और कोई अपनी आदतों की गुलामी से बन्धन-ग्रस्त हो जाता है। एक बार जो स्वभाव

बन जाता है, वह कठिनाई से बदलता है, इसलिए नीति का वचन है कि 'स्वभावो दुरतिक्रमः' ।

अन्तर्मन के सम्बन्ध मे दो-चार अन्य बातें भी जानने योग्य है :

१. शरीर के अगो की जो स्वाभाविक चेष्टाए होती है, उनका सचालक अन्तर्मन ही है। कोई विचार मस्तिष्क में आते ही यह मन शरीर के अगो को तत्काल सचालित कर देता है। इसमे जैसी दुर्भावनाए जगती हैं या उठती हैं, उनका प्रभाव शारीरिक चेष्टा और मुखमुद्रा से तत्काल लक्षित होता है।

२. सबके मस्तिष्क का भावना-अग चेतना-अग से अधिक सबल होता है। सब विचारक भले ही न हो परन्तु एक अश तक भावुक अवश्य होते है। सबमे कुछ प्राकृतिक भावनाए होती हैं इसलिए हृदयस्पर्शी या मर्मस्पर्शी बातो का प्रभाव अधिक पडता है। भावो को आन्दोलित करने से किसी की विचारधारा उनके अनुकूल चल पडती है, परन्तु शुद्ध ज्ञान-क्षेत्र मे भावुकता का प्रदर्शन सूर्योदय मे चन्द्र जैसा होता है। दोनो के अलग-अलग अवसर होते है। जहां ज्ञान-प्रयोग निष्फल होता है, वहा भाव की सजगता कार्य कर जाती है।

३. अन्तर्मन की दो प्रवृत्तिया सबमे प्रबल होती हैं—एक आर्थिक, दूसरी मनोवैज्ञानिक। पहली के अन्तर्गत क्षुधा या जीविकोपार्जन-सम्बन्धी वृत्तिया होती हैं, दूसरी के अन्तर्गत प्रेम-प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति की भावनाए। इनको विचारो के वेग से उखाडा नही जा सकता। अतएव विचारो को इस रूप मे ढालना पड़ता है, जिससे क्षुधा और मान आदि की तृप्ति हो सके।

४. विचारो या सवेदनाओ की अधिक उत्तेजना से पहला आघात अन्तर्मन पर पड़ता है। वह निर्बल हो जाता है। इस स्मृति-अग के निर्बल होने से बुद्धि नष्ट हो जाती है। क्योकि धारक यत्र ही निर्बल होगा तो विचार ठहरेंगे कहा, विचार-शृखला कैसे बधेगी ! पागलो की पहले स्मृति ही नष्ट होती है। क्रोध मे भी पहले स्मृति-नाश होता है, जिससे

मनुष्य भला-बुरा कुछ नही पहचान सकता और वेसिर-पैर के काम करता है। वहुत-से लोगों के व्यक्तित्व मे जो विभिन्नता दिखलाई पड़ती है, उसका मुख्य कारण उनकी स्मृति-दुर्बलता है। विचारो या संवेदनाओ की शिथिलता अथवा अकर्मण्यता से मस्तिष्क मे जड़ता आ जाती है। अतएव छोटे-बड़े मन का कार्यक्रम तभी ठीक रह सकता है, जब कि दोनों में परस्पर आदान-प्रदान होता रहे। मनुष्य उन्नति तब करता है, जब उसके विचार उसकी भावुकता पर शासन करते हैं। इसलिए चेतन मन को गृहपति और अन्तर्मन को गृहस्वामिनी मानकर उनको उनकी मर्यादा मे रखने से सफलता मिलती है।

मस्तिष्क का प्रधान तत्त्व

मस्तिष्क की क्रिया-प्रणाली के आधार पर उसका साधारण परिचय ऊपर दिया जा चुका है और इसका भी सकेत किया जा चुका है कि उसका सचालक मन नामक तत्त्व है। उसके अतिरिक्त मस्तिष्क का एक और अग है, जिसको वुद्धि कहते है। वुद्धि वह तत्त्व है जो मानस को प्रकाशित करता है। वह मानस से संयुक्त रहता है। ज्ञान, विवेक और स्मृति-सम्बन्धी जिन कार्यों का उल्लेख ऊपर हुआ है, वे वुद्धि के सहयोग से ही होते हैं। या यो कहिए कि मानस-खण्डो की सहायता से वुद्धि ही कल्पना, मनन आदि करती है। वुद्धि का हम अलग से वर्णन केवल उसकी कुछ विशेषताओ को व्यक्त करने के लिए कर रहे हैं।

वुद्धि मस्तिष्क की प्रधान शक्ति है, जिसका अधिकांश सबको जन्म से ही सुलभ होता है। उसका केवल एक विशेष रूप है, जो सर्वसुलभ नही होता, वह है प्रतिभा। प्रतिभा उस वुद्धि को मानते हैं जिसमें मौलिक विचारो की सृष्टि करने की क्षमता हो। ऐसी विलक्षण वौद्धिक शक्ति विलक्षण व्यक्तियो को जन्म से प्राप्त होती है, और वनाने से नही वनती। वुद्धि-प्रयोग से कोई भी व्यक्ति वुद्धिमान् और विद्या-अभ्यास से विद्वान् हो सकता है; परन्तु सव प्रतिभाशाली नही हो सकते।

न्यायशास्त्र के मत से साधारण बुद्धि के दो भेद होते हैं—अनुभूति और स्मृति। इनका विवरण चेतन और अन्तर्मन के अन्तर्गत आ चुका है। उपयोग के अनुसार शास्त्रकारो ने उसके कुछ और भी भेद किए हैं। उनका भी संक्षिप्त परिचय जान लेना आवश्यक है। इस प्रकार की बुद्धि को आसक्त बुद्धि कहते हैं। वह किसी विषय मे आसक्त होकर, तब स्वार्थ-भावना से उसपर विचार करती है। इसलिए वह अपने प्रधान धर्म—न्याय या विवेक—को भूल जाती है और विषय के यथार्थ रूप का निरूपण नही कर पाती। उत्तम बुद्धि निरासक्त होती है, जो न्यायपूर्वक किसी वस्तु का यथातथ्य निरूपण करती है। निरासक्त और आसक्त बुद्धि के आधार पर ही ज्ञानी-अज्ञानी का भेद किया जाता है।

इस प्रकार की बुद्धि संशयात्मक होती है, जो भ्रमपूर्ण, मलिन और द्विविधाग्रस्त रहती है। अल्पज्ञ, अपराधी और चचल स्वभाव के मनुष्यो की बुद्धि संशयात्मक अतएव अस्थिर होती है। दूसरे प्रकार की बुद्धि निश्चयात्मक होती है, जो स्थिर, गम्भीर, स्वच्छ और ज्ञान से प्रकाशित रहती है।

इसी प्रकार बुद्धि के सदुपयोग, दुरुपयोग और अनुपयोग के आधार पर उसके अनेक भेद किए जाते हैं। मर्मज्ञता, कुशाग्रता, दूरदर्शिता, सूक्ष्मदर्शिता, प्रत्युत्पन्नता आदि उसके विशेष गुण माने जाते हैं और दीर्घसूत्रता, जडता, मुग्धता आदि आत्मनाशी अवगुण। सरलता, विचारो की स्पष्टता, सुव्यवस्थित ढग से भावो की अभिव्यजना, प्रगल्भता, सक्रियता, एकाग्रता और परिणामदर्शिता—ये उत्तम बुद्धि के गुण है। जो बुद्धि क्रियात्मक होती है, सप्रयोजन विचार करती है और विचारों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए मनुष्य को प्रेरित करती है, वही बुद्धि विशेष गुणवती कही जाती है। सबसे निकृष्ट बुद्धि वह है जो मन्द होती है और शृगाल की तरह भीरु रहती है। ऐसे बुद्धिवालो या बुद्धिहीनो को क्रमश: मन्दबुद्धि और शृगालबुद्धि कहते हैं।

बुद्धि की महत्ता

विस्तार-भय से हमने सूक्ष्म रूप में ऊपर बुद्धि का साधारण विवरण दे दिया है। उसके सदुपयोग के सम्बन्ध में हमें सर्वप्रथम यही कहना चाहिए कि बुद्धि की उपयोगिता से ही मनुष्यता की प्रतिष्ठा होती है। इस अध्याय के आरम्भ में हम मस्तिष्क-बल की प्रधानता के सम्बन्ध में जो कुछ लिख चुके है वह वस्तुतः बुद्धि-बल की श्रेष्ठता का वर्णन है। बुद्धि-प्रधान जीव होने के कारण मनुष्य सर्वप्रधान जीव है। हितोपदेश मे सत्य ही कहा है कि जिसके पास बुद्धि है, वही बलवान् है;, 'बुद्धिर्यस्य बल तस्य'। मानव-जगत् में हम प्रत्यक्ष ही देखते है कि जो बुद्धिमान् हैं, वे ही स्वतन्त्र, समृद्ध एव शक्तिमान् है। बौद्धिक स्वतन्त्रता से मनुष्य बन्दीगृह मे भी स्वतन्त्र रहता है। गाधीजी उस समय भी सर्वस्वतन्त्र थे, जब सारा देश पराधीन था, क्योकि वे बुद्धि से स्वतन्त्र थे। गांधीजी निःशस्त्र होते हुए भी अति-शक्तिमान् थे और कौन नही जानता कि उस क्षीणकाय मनुष्य ने केवल बुद्धि-साधना से अकेले खड़े होकर दिग्वजेता अग्रेजो को सात समुन्दर पार खदेड दिया। अपने साधारण जीवन में देखिए—किसी कर्म के सम्पादन मे एक बुद्धिमान् और एक मूर्ख की शारीरिक क्रियाओ मे कोई अन्तर नही होता, केवल बुद्धि का अन्तर होता है, जिसके कारण बुद्धिमान् का कार्य सफल होता है और मूर्ख का विफल :

प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्य्ययोगे समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धि॰। (भास)

बुद्धिमान् से कही अधिक कठोर परिश्रमी होकर भी मूर्ख केवल इसलिए नही सफल होता कि वह कार्य-कुशल नही होता। अपनी बुद्धि-हीनता और विचारो की दासता के कारण वह परतन्त्र तथा बुद्धिमानों का आश्रित बना रहता है। हितोपदेश मे लिखा है कि बुद्धिहीनो से बुद्धि-मानो की जीविका चलती है : 'विदुषा जीवन मूर्ख.'।

बुद्धि की उपयोगिता पर एक दृष्टि से और विचार कीजिए—समय सबके लिए एक-सा रहता है, परन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति उसी को कामधेनु

बनाकर दुहता है और बुद्धि-रंक उसको व्यर्थ गवा देता है। ऐसे व्यक्ति के हाथ से समय जब तीर की तरह निकल जाता है, तब वह सचेत होकर खोए हुए अवसर के पीछे किंकर्तव्यविमूढ होकर दौडता है। वही अवस्था नरक है। एक अंग्रेजी विचारक ने लिखा है कि अवसर का हाथ से निकल जाना और समय बीतने के बाद यथार्थता का ज्ञान होना ही नरक है।[1]

इस नरक से बचने के लिए बुद्धि का समयानुकूल उपयोग आवश्यक होता है। विदुर की जिह्वा पर बैठकर व्यास की सरस्वती ने ठीक कहा है कि सद्बुद्धि द्वारा ही देवताओं का अनुग्रह प्रकट होता है। देवता लोग चरवाहे की तरह डण्डा लेकर किसी की रक्षा नही करते, वे जिसकी रक्षा करना चाहते है, उसको बुद्धिबल से सयुक्त कर देते हैं।[2]

इसके विपरीत, बुद्धि का दुरुपयोग होने से मनुष्य की मनुष्यता का नाश हो जाता है: 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः'—इसका प्रत्यक्ष प्राकृतिक प्रमाण यह है कि मृत्यु-काल के निकट होने पर मनुष्य की बुद्धि एकाएक परिवर्तित या विपरीत हो जाती है और वह अपने हित-अहित को पहचानने मे असमर्थ हो जाता है। तुलसी की यह उक्ति उल्लेखनीय है :

जा कहँ प्रभु दारुन दुख देही।
ताकर मति पहिलेहिं हर लेही॥ (मानस)

जिस दृष्टि से भी हम देखें, यही सत्य प्रतीत होता है कि मनुष्य के उत्थान-पतन का कारण उसकी बुद्धि होती है। बौद्धिक विकास से मानव-शक्ति का विकास होता है और उसके ह्रास से शक्ति-विनाश। यही नही, बुद्धि के दुरुपयोग से मनुष्यता का दुरुपयोग होता है। बुद्धि इतनी प्रभावशालिनी शक्ति है कि वह कुटिल होकर अपना ही नहीं, बहुतो का

---

1. Hell is opportunity missed and truth seen too late.

१. न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यन्तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्॥ (महाभारत)

सर्वनाश कर देती है। अतएव उसके उपयोग मे उतनी ही सावधानी की आवश्यकता होती है जितनी बन्दूक या पिस्तौल के उपयोग में।

बुद्धि का सदुपयोग क्या है ?—वाल्मीकि के अनुसार उसके ये गुण हैं, जिनसे उसके उपयोग का पता लग सकता है : सुनने की इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, धारण करना, तर्क द्वारा सिद्धान्त का निश्चय करना, विज्ञान और तत्त्व-ज्ञान।[1]

सार रूप में इसमें सभी कुछ आ गया, परन्तु इसपर विस्तारपूर्वक भी विचार करना चाहिए। बुद्धि का प्रधान कार्य है—सत्य को खोजना, उसको प्रकाशित करना। जीवन के रहस्यो और प्रकृति के रहस्यो को जानना उसका विशेष धर्म है। वह एक दीपक है, जिसको लेकर मन घोर अंधकार में अपना मार्ग देखता है। बुद्धि जीवन का नेतृत्व करती है, अतएव जब वह सत्य को देखने मे प्रवीण होती है, तभी नेतृत्व कर सकती है।

बुद्धि-चक्षु से बुद्धिमान् प्राणी पहले जीवन-सत्य को देखता है, जिसको आत्मज्ञान कहते है। वह अपने को पहचानता है, अपनी आत्म-शक्तियो को देखता है, वह अपनी स्वभावज प्रवृत्तियों को समझता है और अपनी सर्वप्रधान मूल प्रवृत्तियो को पकड़ता है। वह देखता है कि उसके मस्तिष्क का स्वाभाविक झुकाव किधर है। वह यह देखता है कि उसकी पशु-प्रवृत्तिया कितनी प्रबल है और आत्मसयम द्वारा इनके सस्कार का उपाय सोचता है। बुद्धि द्वारा ही वह आत्मज्ञान प्राप्त करता है और आत्मज्ञान ही परम ज्ञान है, ऐसा प्राचीन पण्डितों का मत है : 'आत्मज्ञानं परं ज्ञानम्'। पाश्चात्य दार्शनिक भी आत्मज्ञान को दर्शनशास्त्र का मूल सिद्धान्त मानते है और कहते हैं कि अपने को पहचानो।[2] यह ज्ञान बुद्धि के उपयोग से ही सुलभ होता है। आत्मज्ञान के अतिरिक्त दूसरो को पहचानना बुद्धि का ही कर्तव्य है। अपने को तथा दूसरो को पहचानकर

---

१. शुश्रूषाश्रवणञ्चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहोऽपोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥ (रामायण)

2. Know thyself.

ही मनुष्य अपने कर्तव्य का निश्चय कर सकता है। इस प्रकार बुद्धि का कार्य कर्तव्य-अकर्तव्य, उचित-अनुचित को जानना और जीवन के सत्य को, प्रयोजन को समझकर उसका विकास करना है।

बुद्धि का दूसरा प्रधान उपयोग है—सृष्टि के सत्य को समझकर, मानव-जीवन को उसके अनुरूप बनाना। सृष्टि का सत्य क्या है ? 'शतपथ ब्राह्मण' मे लिखा है कि यह सभी विश्व एक छन्द है : 'छन्दासि वै विश्वरूपाणि'। छन्द उस गति को कहते है जो ताल-ताल मे नृत्य करती है। किसी छन्दोबद्ध रचना में जिस प्रकार बहुत-से शब्द यथास्थान संयुक्त होकर एक भाव को अभिव्यक्त करते है, उसी प्रकार इस विश्व-रचना के सभी साधन अलग-अलग रहते हुए और परस्पर संघर्ष करते हुए भी एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील प्रतीत होते है। जिस प्रकार शब्दो को यथास्थान सयुक्त करके कोई कवि उनको काव्य का रूप दे देता है, उसी प्रकार समस्त प्राकृतिक शक्तियो को किसी 'कविर्मनीषी' ने क्रम से सयोजित किया है, तभी सृष्टि का कार्यक्रम नियमपूर्वक चलता है। काव्य के पीछे कवि की प्रतिमा और किसी चित्र के पीछे चित्रकार की कला की तरह सृष्टि-रचना के पीछे किसी कुशल रचनाकार की रचनात्मक बुद्धि और उसके अस्तित्व का आभास मिलता है। उसकी भावना अथवा योजना के अनुसार सब सत्त्व सप्रयोजन अपनी-अपनी मर्यादा में सीमित होकर, अपने-अपने निश्चित धर्म के अनुसार ही चलते है और इस व्यवस्था से सम्पूर्ण सृष्टि नियमित गति से चलती रहती है। उसके भावुक कलाकार या नियामक को ईश्वर, परमात्मा आदि नामो से पुकारते है। यही सासारिक जीवन का सबसे बड़ा सत्य है, जिसको बुद्धि से ही समझा जा सकता है। इस सत्य के आधार पर ही मानव-जीवन की समस्त रूप-रेखा बनती है, मनुष्य के चरित्र का निर्माण होता है और मनुष्यता की एक मर्यादा बनती है। मनुष्य समझता है कि वह ससार मे अकेला नही है, उसका एक साथी भी है जो उसको प्रेरित करता है। वह उसको जीवन

का पथ-प्रदर्शक और जीवन-संध्या का अन्तिम दीपक मानकर धैर्यपूर्वक आगे बढता है। और सबसे प्रमुख बात यह है कि इसी सत्य-विश्वास के आधार पर मानव-जीवन की नैतिकता की प्रतिष्ठा होती है, जिसके द्वारा जीवन मे सफलता मिलती है। समाज मे जो अनेकता मे एकता दिखलाई पडती है, वह जीवन के इसी नैतिक पक्ष की प्रबलता के कारण है।

लोक-जीवन का एक और प्रधान सत्य है, जिसको समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है। उपनिषद् के शब्दो मे वह यह है . आनन्द ही ब्रह्म है, यह जान; आनन्द से ही सब प्राणी उत्पन्न होते है; उत्पन्न होने पर आनन्द से ही जीवित रहते है और मृत्यु से आनन्द ही में समा जाते हैं।[1]

इसको जानने की आवश्यकता इसलिए है कि जीव-मात्र सुख का इच्छुक होता है, या दूसरे शब्दो मे, आनन्द-कुमार होता है। ससार आनन्दमय तभी हो सकता है जब सभी सृष्टि के नियमानुसार आचरण करें। यह तथ्य बुद्धि ही से जाना जा सकता है।

सक्षेप मे यह समझना चाहिए कि बुद्धि द्वारा चित्त की भ्रमणशील वृत्तियो को रोका जाता है अर्थात् चित्त को एकाग्र किया जाता है, उसी को योग कहते है। उससे कुप्रवृत्तियो का दमन करके मानसिक विभूतियो को उद्दीप्त किया जाता है, जीवन के मर्म को समझा जाता है और आवश्यकतानुसार बाहर से ज्ञान का सचय करके चारो का निर्माण किया जाता है। सुकरात के मत से ज्ञान ही धर्म है।[2] और पाश्चात्य दर्शन के अनुसार ज्ञान ही शक्ति है।[3] भारतीय दर्शन के मत से ज्ञान द्वारा किया हुआ कर्म ही प्रधान बल है। क्रियात्मक ज्ञान ही बुद्धि का असली धन है। महाकवि गेटे के शब्दो मे विचारो का कार्यरूप में परिणत करना ससार

---

१ आनन्दो ब्रह्मे ति व्यजानात्'' आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते''' आनन्देन जातानि जीवन्ति'' आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।

2. Knowledge is virtue.

3. Knowledge is power.

में सबसे कठिन कार्य है।[1] अतएव बुद्धि का काम किसी ज्ञान को प्राप्त करना ही नही, बल्कि उसका उपयोग करना है; और उपयोग भी इस तरह करना कि उससे मानव-चरित्र की मर्यादा बनी रहे। गाधीजी ने लिखा है कि चरित्र के बिना ज्ञान एक नाशकारी बल है, जैसा कि ससार के बहुसंख्यक सिद्धहस्त चोरो और धूर्त भलेमानसो के उदाहरण से प्रकट होता है। चरित्र के लिए बाहर की अपेक्षा बुद्धि को अपनी आत्मा का आश्रय लेना पड़ता है।

आत्मा

मानम तत्त्वो के इस विवरण को समाप्त करने से पूर्व आत्मा के विषयो मे भी कुछ लिख देना आवश्यक है क्योकि वही प्राण-प्रदायक तत्त्व है और तत्त्वज्ञो के मत से, उसी से उसके स्वभाव का 'महत्' (बुद्धि) उत्पन्न होता है, जिससे मनुष्यता का विकास होता है। बहुत-से लोग आत्मा के अस्तित्व मे विश्वास नही करते और जीवन के भौतिक पक्ष को ही सर्वस्व समझते है। वे लोग आत्मिक शक्ति को इतना महत्त्व नही देते, जितना ऐटम की शक्ति[2] को। यद्यपि इसी युग मे गाधीजी सिद्ध कर चुके है कि आत्मिक शक्ति ही ससार में प्रधान शक्ति है। जो लोग आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नही करते, वे अपनी चेतना की अपेक्षा अपनी जडता में अधिक विश्वास करते हैं।

आत्मा के होने मे इससे बढकर कोई क्या प्रमाण होगा कि वही एक तत्त्व है जिसके सयोग से पार्थिव शरीर मे चेतनता आ जाती है और उसी के वियोग से मिट्टी का शरीर फिर मिट्टी मे मिल जाता है। मरने पर भी शरीर ज्यो का त्यो बना रहता है, पर उसमे कोई एक अज्ञात वस्तु नही रही, जिसके कारण वह निर्जीव हो जाता है। दूसरा प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह सकटग्रस्त, महारोगी या अबोध बालक

---

1. To put one's thought into action is the most difficult thing in the world

2. Atomic energy.

ही क्यो न हो, मृत्यु से डरता है, अपने को बचाने की चेष्टा करता है। जीवन के अन्तिम क्षण तक जर्जरकाय वृद्ध भी मृत्यु-यंत्रणा से बचना चाहते हैं, यद्यपि सभी मानते है कि मृत्यु से शारीरिक व्यथा का अन्त हो जाता है। इस स्वाभाविक भय का कारण यह है कि यद्यपि कोई मनुष्य मृत्युकालीन वेदना का अनुभवी नही होता, परन्तु कोई ऐसी वस्तु शरीर मे रहती है, जो उस घोर वेदना से परिचित रहती है और पुनः उसको भोगने से घबराती है। वह वस्तु या तत्त्व आत्मा ही है। वह वस्तु बुद्धि नहीं हो सकती क्योकि जीवात्मा से बुद्धि की भिन्नता अनुभूति ही नही, प्रत्यक्ष प्रमाणित भी होती है। पागलपन में पूर्णतया बुद्धि नष्ट हो जाती है, फिर भी शरीर जीवित रहता है। योग की मनोलया अवस्था में अथवा मूर्च्छितावस्था मे सम्पूर्ण मानसिक क्रियाए स्थगित हो जाती है, परन्तु प्राणी जीवित रहता है। इससे उस अतिरिक्त शक्ति का आभास मिलता है।

कभी-कभी कोई अनैतिक आचरण करने पर मनुष्य को आत्म-ग्लानि होती है और कभी-कभी अकेले मे भी कोई अपकर्म करते समय उसको अपने से ही भय लगता है। ये बातें आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करती हैं। ये बौद्धिक क्रियाए नहीं हो सकती क्योकि बुद्धि के सहयोग से ही कर्म होता है और अपराधी स्वय न्यायाधीश नहीं बन सकता। कोई और है जिससे मन, बुद्धि दोनो डरते हैं। और मन जब उच्छृंखल होने लगता है, तो सावधान बुद्धि उसको सचेत कर देती है कि भीतर कोई बाहरी देखनेवाला झाक रहा है। मनुष्य को अनुभूति होती है कि भीतर एक द्रष्टा है, साक्षी है। सबके साथ ईश्वर का एक गुप्तचर लगा है। बड़े से बड़ा आततायी भी निरपराध व्यक्ति को सताते समय भीतर से निर्बल हो जाता है, क्योकि ईश्वर का वह राजदूत अनैतिक कार्यों में सहयोग नही देता। नैतिक कार्यों में आत्मशक्ति स्वभावतः बढ़ जाती है क्योकि समस्त शरीर को जीवन-पर्यन्त सते ज रखनेवाली महाशक्ति का तेज स्फुटित होता है। यह वही प्रकाश है

जिसको नोआखाली में महात्मा गांधी अपने भीतर ढूंढते थे। स्वानुभूति से उस तेजोमय तत्त्व का आभास मिलता है। बीज के बिना वृक्ष की तरह, आत्महीन जीवन की कल्पना नही हो सकती।

आत्मा का स्वरूप

जीवात्मा के अस्तित्व को मान लेने पर भी उसके स्वरूप का ठीक-ठीक निर्णय करना कठिन है। उसका स्वरूप जैसा भी हो, इतना निश्चित है कि वह परम चैतन्य, आनन्दमय, तेजस्वी, ज्ञानमय, निर्विकार और अक्षय है। आत्मशक्ति की दृढता से उसकी इन विषमताओ की अनुभूति होती है। मानव-जीवन के आदर्श और ध्येय इन्ही गुणो के आधार पर बने हुए प्रतीत होते है। यदि आत्मतत्त्व मे ये बातें न होती, तो स्वभाव और विचारो मे ये बातें कैसे आती ! प्रकृति मे ईश्वरीय कार्यों को देखकर मनुष्य ईश्वर में भी इन्ही गुणो की कल्पना करता है। आत्मसंयम से वह स्वयं अपने भीतर विशेष चेतनता, आनन्द, स्फूर्ति, ज्ञान-प्रकाश, शुद्धता और अमरता का अनुभव करता है। निश्चय ही आत्मा का वही स्वरूप है जो सर्वभूतान्तरात्मा ब्रह्म का है। तभी तो शास्त्रकारो ने निर्णय किया कि आत्मा ही ब्रह्म है या आत्मा परमात्मा का अश है, अथवा महाकवि तुलसीदास के शब्दो में : 'ईश्वर अश जीव अविनाशी' वही कर्ता है, जो चरित्र, स्वभाव कर्त्तव्य और जिज्ञासा की उत्पत्ति करता है। वह क्षेत्रज्ञ है, जो भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के क्षेत्र मे भावो का आरोपण करता है।

आत्मा ब्रह्ममयी, है इसको दो-एक अन्य प्रमाणो से भी समझना चाहिए। वेद मे लिखा है कि आदि मे केवल ब्रह्म था, उसने सकल्प किया कि मैं एक से अनेक हो जाऊ। सकल्प के वाद उसने सृष्टि-रचना आरम्भ की और स्वय उसी मे समा गया। ईश्वर ने सचमुच ऐसा संकल्प किया या नही, इसपर तर्क करने की अपेक्षा इसके सत्य को इस रूप में देखना चाहिए कि एक ही प्राण सर्वभूतो में समाया है, तभी सब शक्तिया एक धुन मे काम कर रही है। बिना संकल्प या योजना के ईश्वर यो ही गिर-

कर चकनाचूर हो गया होगा। 'एकोऽहं बहु स्याम्' की भावना को दृढ करके उसने आत्मविकास किया होगा। ध्यान से देखने पर एक से अनेक होने की यह भावना मानव-स्वभाव में भी दिखलाई पड़ती है। कर्म से, सहानुभूति से, प्रतिष्ठा-प्राप्ति से मनुष्य अपने को व्यापक बना देना चाहता है और हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि जो व्यक्ति अपने को जितना व्यापक बना लेता है, वह उतना ही ऐश्वर्यवान् बन जाता है। विश्व-कवि रवीन्द्र ने सत्य लिखा है कि 'देश और काल में' जो मनुष्य जितने अधिक मनुष्यो के अन्दर अपने को मिलाकर देख सका है और प्रकाशित कर सका है, वह उतना ही महान् पुरुष है।' आत्मविकास की ईश्वरीय भावना प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे रहती है।

दूसरी बात यह है कि साधारण से साधारण प्राणी स्वभाव से महत्वाकाक्षी होता है। वह प्रभु होना चाहता है, अधिकारी एव ऐश्वर्यवान् होना चाहता है। धनोपार्जन तथा यशोपार्जन से मनुष्य दूसरो पर ईश्वरता प्राप्त करना चाहता है; जो बाहर सफल नही होता, वह घर मे स्त्री-बच्चो का ही प्रभु बनकर रहना चाहता है। जो किसी पर अधिकार प्राप्त नही कर पाता, वह घर के पशुओ पर ही अपना प्रभुत्व दिखाकर आत्मसतोष करता है। प्रभु होने की यह सार्वजनिक आकाक्षा मनुष्य के हृदय में किसी प्रभु के अश से ही आती है। इसी के साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि सभी स्वभावत. स्वाधिकार-प्रेमी है, इसीलिए कोई किसी के अधिकार को छीनकर उसकी सहानुभूति नही प्राप्त कर सकता। ईश्वर का एक और विचित्र गुण मानव-मनोवृत्ति मे समाया हुआ है। वह यह कि शक्ति या धन को बटोरने से नही बल्कि उनका वितरण करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। ईश्वर ने प्रकृति मे अपनी विभूतियो को फैला दिया है, इसी से उसकी ईश्वरता का भान होता है। मानव-समाज में भी देखिए तो यही बात मिलेगी, जो दूसरो को दे सकता है—चाहे अधिकार या धन या पद—और जो दूसरो के लिए त्याग कर सकता है, उसी को लोग स्वभाववश (बुद्धिवश नही) सामर्थ्य-

वान् या महान् मानते है। सेवा, त्याग और परोपकार से ही ऐश्वर्य या अधिकार की प्राप्ति होती देखी जाती है। इसको देखते हुए स्कदपुराण की ईश्वर द्वारा कथित यह उक्ति ठीक समझ मे आ सकती है: 'ददामि च सदैश्वर्यमीश्वरस्तेन कीर्तित:'। अर्थात् मैं सदैव ऐश्वर्य प्रदान करता हूं, इसलिए ईश्वर माना जाता हू। कुबेर धनाधीश कहे जाते है, परन्तु लोक मे उनको कोई नही पूजता। लक्ष्मी की पूजा सर्वत्र होती है; उनकी पूजा के लिए त्योहार हैं, उनकी मूर्तिया हैं और उपासको मे उनके प्रति श्रद्धा मिलती है। कारण यह है कि लक्ष्मी दूसरो को समृद्ध बनाने में प्रसिद्ध हैं, कुबेर की तरह बटोरती नही। इस प्रवृत्ति को धारण करने वाली शक्ति आत्मा ही है, जो ब्रह्मस्वरूपिणी है। जो ऐश्वर्य नही प्रदान करता, उसके प्रति मानव-आत्मा विद्रोह करती है। जनता की इसी प्रवृत्ति ने उन देशी नरेशो को नीचे गिरा दिया जो दूसरो को ऐश्वर्य न देकर, उनका ऐश्वर्य छीनकर स्वय ऐश्वर्यशाली बने रहना चाहते थे। उनकी ईशता कृत्रिम थी, अतएव असह्य थी। उन्होने ईश्वर की पदवी तो ले ली थी, पर कभी यह चेष्टा नही की कि वे एक से अनेक हो जाए अर्थात् प्रजातन्त्र स्थापित करके अपने को प्रजा मे व्यापक बना दें।

ब्रह्म और आत्मा समानधर्मी हैं। इसका एक प्रबल प्रमाण और भी है। लौकिक दृष्टि से मनुष्य अपने से अधिक अन्य किसी को नही चाहता; वह स्वार्थी होता है और उसके अधिकाश काम स्वार्थ की प्रेरणा से होते हैं परन्तु स्वार्थ पर ही उसका सारा ससार नही बनता। मनुष्य के भीतर एक और प्रबल भावना रहती है, जो स्वार्थ को दबा लेती है। यह भावना प्रबल होती है तो मनुष्य उस जीवन तक सहर्ष बलिदान कर देता है जिसके लिए वह स्वार्थ-सचय करता है और जिसकी रक्षा के लिए वह अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार रहता है; वह नैतिक भावना है। मनुष्य अपने आदर्शो की रक्षा के लिए जीवन का मोह नही करता। देश-प्रेम, जाति-प्रेम, धर्म-प्रेम, के लिए वह सहर्ष आत्म-त्याग करता देखा जाता है और उसकी आत्मा तभी उद्दीप्त होती है जब

नैतिक जीवन की रक्षा मानवता की मान-रक्षा का प्रश्न उपस्थित होता है। उस दशा में लोक-सेवा के लिए वह अपने को भूल जाता है। तभी प्रकट होता है कि मनुष्य अपने लिए ही नही, दूसरों के लिए भी जीता है। वह समाज में अपना नाम, अपनी कीर्ति छोड़ जाना चाहता है—शरीर चाहे रहे या न रहे, आदर्शों के पालन की यह भावना और अमरता की आकाक्षा ही प्रकट करती है कि आत्मा मे ईश्वररूपी अग्नि की चिनगारी है। और यह बात सत्य मालूम होती है कि मनुष्य को ईश्वर ने अपने जैसा ही बनाया है, उसको अपनी जैसी रचनात्मक एवं महत्त्वाकाक्षी बुद्धि दी है। आत्मा द्वारा ही ये ईश्वरीय तत्त्व शरीर में आते है।

आत्मा की कुछ विशेषताएं

आत्मा के रूप में मनुष्य को दैवी तत्त्व सुलभ होता है इसमें सन्देह नही। भौतिक शरीर में ज्ञान, चेतना और समस्त मूल वृत्तियो का बीजारोपण वही करती है, इसमे भी सशय नही हो सकता। वह शक्ति-शालिनी है, इसको कौन न मानेगा ! जिसमें जीवन देने की और जीवन लेने की क्षमता है, उसकी शक्ति-सत्ता को न मानना मूर्खता है। उसका स्वरूप जैसा भी हो, इतना निश्चित है कि वह ब्रह्ममयी है। इन बातो को ध्यान मे रखते हुए हमें आत्मा-सम्बन्धी कुछ अन्य बातो को भी समझ लेना चाहिए।

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म भारतीय तत्त्व-ज्ञान का मौलिक सिद्धान्त है। इससे आत्मा का अस्तित्व ही नही सिद्ध होता, बल्कि जीवन की बहुत-सी पहेलियां भी सुलझ जाती हैं। जीवन की बहुत-सी विचित्रताओ को आजकल के बडे-बड़े पाश्चात्त्य मनोवैज्ञानिक नही समझ पाते; जहां बुद्धि से कार्य-कारण समझ मे नही आता, वहा वे प्रकृति या स्वभाव का आश्रय लेकर छुट्टी पा जाते हैं। पुनर्जन्म के सिद्धान्त से सब प्रश्नो का उत्तर मिल जाता है।

सक्षेप मे पुनर्जन्म की व्याख्या यह है। शरीर के विनाश के साथ उसमे धारित आत्मा का विनाश नही होता। एक शरीर से निकलकर वह दूसरे शरीर मे धारित होती है। एक शरीर में रहते हुए वह निर्लिप्त रहती है। शरीर-नाश के बाद वह उस जीवन के अर्जित कर्मो को लेकर दूसरे शरीर मे प्रवेश करती है। उन कर्मो को ही सस्कार कहते हैं। यह क्रिया वैसी ही है, जैसे वायु का एक कुज की गन्ध लेकर दूसरे कुज या स्थान में जाना।

इस रहस्य को समझने के लिए मनुष्य के जन्म-मरण पर ध्यान दीजिए। पुरुष के मस्तिष्क-संस्थान[1] की उत्तेजना से कामोत्तेजना होती है, कामाग्नि प्रदीप्त होती है। कामाग्नि से प्रेरित प्राण-वायु के वेग से शरीर का तेज शुक्राणु रूप मे उग्र एव गतिमान् होकर स्त्री-रज से सयुक्त होता है। उस प्राण-वायु मे, जिसकी प्रेरणा से शरीर का तेज गमन करता है, बाहर से जीवात्मा धारित होकर शुक्र के साथ जाती है। वह उसी प्रकार धारित होती है, जैसे वायु मे गन्ध। इस प्रकार रज-वीर्य के साथ आत्मा के सयोग से नये शरीर की नीव पड़ती है।

शिशु की आत्मा उसके पिता की आत्मा नही होती, इसके प्रमाण हैं। यदि एक ही आत्मा होती, तो दोनो के आचार-विचार, रूप-रंग में भी समानता होती। पर ऐसा नही होता। एक ही माता-पिता के दो पुत्र भिन्न-भिन्न स्वभाव के होते हैं—कोई बुद्धिमान् एवं आनन्दप्रिय स्वभाव का होता है, कोई घोघावसन्त या मूर्खराज। बहुतो मे ऐसी रुचिया दिखाई पड़ती है, जिनका लेश-मात्र भी उनके पूर्वजो में नही होता। कोई जन्म से ही साहित्य की रुचि लेकर आता है और कोई प्रपच-रचना की। इन सबसे पिता की आत्मा से सन्तान की आत्मा की भिन्नता प्रकट होती है और यह भी पता चलता है कि प्रत्येक आत्मा अपने साथ भिन्न-भिन्न जन्मगत सस्कार लेकर आती है। तभी तो लोगो मे रुचि-विभिन्नता और बुद्धि-विभिन्नता होती है। इसके अनेक उदाहरण

---

1. Nervous system.

है कि बहुत-सी सन्तानें कुछ वयस्क होने पर अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त बता देती हैं और खोज से उनकी बताई बातें सत्य निकलती है। अतः यही मानना पडता है कि पुत्र की आत्मा एक सर्वथा स्वतन्त्र आत्मा होती हैं, उधार ली हुई नही।

हा, इतना अवश्य मानना पडेगा कि आत्मा अपने पूर्व-जीवन के सस्कार ही नही, बल्कि माता-पिता के सस्कार भी लेकर नवजीवन मे पदार्पण करती है। पिता के प्राण-मार्ग से जाने के कारण वह उसके वातावरण से अवश्य ही प्रभावित होती होगी। इसके अतिरिक्त शुक्राणु भी कुलज प्रवृत्ति-वाहक होते है, जिनका प्रभाव आत्मा पर पड़ता है। माता के गर्भ में शरीर के नौ महीने निवास के कारण आत्मा मुख्यतः माता के सस्कारो-विचारो से प्रभावित होती है। उन सस्कारो का प्रभाव इतना रहता है कि पुत्र के कष्ट से माता-पिता को स्वाभाविक कष्ट होता है। वह कष्ट शरीर द्वारा नही, आत्मा द्वारा अनुभूत होता है। एक के शारीरिक कष्ट से दूसरे को शारीरिक कष्ट नही होता। इस आत्मीयता को देखकर ही 'आत्मा वै जायते पुत्रः' कहा जाता है। यह आत्मीयता सस्कारो के कारण या आत्मा के समान-धर्मी होने के कारण ही नही उत्पन्न होती। आत्मा जिस शरीर मे जाती है, उसकी प्रकृति के अनुसार आचरण करने को बाध्य होती है। शरीर की प्रकृति माता-पिता द्वारा प्राप्त होती है। शरीर की बनावट पर उनके अगों का प्रभाव पडता है। सुश्रुत के मत से शरीर के स्थिर तत्त्व अर्थात् केश, श्मश्रु, रोम, अस्थि, नख, दांत, सिर, धमनी, स्नायु तथा रेत पितृज होते है और मृदु तत्त्व अर्थात् मास, रक्त, मेद-मज्जा, हृदय, नाभि, यकृत्, प्लीहा तथा आन्त्र मातृज होते है। (पुष्टि, बल, वर्ण, स्वास्थ्य, अस्वास्थ्य को उन्होने रज जन्य और इन्द्रिय, ज्ञान, विज्ञान, आयुर्मान, सुख-दुःख को आत्मज माना है।) इस बनावट का प्रभाव आत्मा पर पडता है और मुख्यतः रक्त का प्रबल आकर्षण होता है। रज-वीर्य के रक्तसार से ही शरीर बनता है; अतएव समान गुणधारी रक्त मे स्वाभाविक एकता होती है। अनेक परम्परागत

वीमारियां रक्त-सम्बन्ध की सत्यता को प्रमाणित करती है। आत्मा पर रक्त-सम्बन्ध की दृढता का प्रभाव प्राय. अन्य जन्मो में भी दिखलाई पडता है। यही कारण है कि कुछ लोग किसी के प्रति स्वाभाविक प्रीति रखते हैं : 'प्रीति पुरातन लखै न कोई' (तुलसी)।

आत्मा पर जीवनगत सस्कारो का प्रभाव कैसे पडता है ? इसका उत्तर यह है—किसी विचार या कर्म का लक्षण हमारे अगो पर तत्काल प्रकट होता है। दैनिक चरित्र का वैसा ही प्रभाव आत्मा पर पडता है। सद्गुणो-दुर्गुणो का प्रभाव जैसे शरीर पर पड़ता है वैसे ही आत्मा पर भी। जिस प्रकार आज के कर्मों का परिणाम कल या दस साल बाद मिलता है, अथवा युवावस्था की भूलो का फल वृद्धावस्था मे भोगना पडता है, उसी प्रकार आत्मा के साथ लगे हुए गुणो या कर्मो का परिणाम एक जीवन मे या उसके बाद भोगना पडता है। यह गुण-परम्परा शरीर-नाश के बाद भी चलती रहती है। पूर्व-जन्म या इसी जन्म का सुकृतफल हमे जब आगे प्राप्त होता है, तो हम उसी को पुण्य या भाग्य का उदय कहते है। बुद्धिमान् व्यक्ति उन गुणो का आभास पाकर उनको और विकसित करता है। पूर्ववत् या इसी जीवन के विकार आत्मा की आग को धूमाच्छादित रखते है। तब आत्मा का प्रकाश नही फैलता और वे विकार समय पाकर फोडे की तरह फूट निकलते हैं। उसी अवस्था को हम पाप या दुर्भाग्य कहते हैं। मूर्ख व्यक्ति उसी धुए मे सास लेता रहता है। चतुर व्यक्ति उन कुसस्कारो को पहचानकर उनसे आत्मा को मुक्त करता है और तप-सयम से शुद्धात्मा बन जाता है। आकस्मिक घटनाओ और पाप-पुण्य का बहुत कुछ भेद आत्मा के पुनर्जन्म के सिद्धान्तो से खुल जाता है। और यह भी पता चल जाता है कि बहुत-से लोग स्वभाव से ही क्यो प्रतिभाशाली, विलक्षण, भाग्यवान् या सरल लगते है और दूसरे लोग क्यो मन्द, चिड़चिडे या चोर होते हैं। यह सस्कारो का प्रभाव है। जिस प्रकार कुज की वायु पुष्पो का सौरभ लुटाती हुई आती है और श्मशान की वायु शव-गन्ध, वैसे ही आत्मा पूर्व-जीवन के गुणो का विस्तार

करती आती है। सस्कारो का प्रभाव न होता तो सब बालक एक-से बुद्धि-मान् होते। एक ही गुरु पचास शिष्यों को पढाता है, परन्तु सबका विकास एक-सा नही होता, क्योकि सस्कारो का प्रभाव अलग-अलग होता है।

सस्कारो का यह परिचय हमने इस प्रयोजन से दिया है कि पाठक यह जान जाएं कि भाग्य-दुर्भाग्य कोई दैवी घटना नही है। सस्कार आत्मा के स्थायी गुण नही हैं, वे बदले जा सकते हैं, या प्रबल न हो तो और प्रबल बनाए जा सकते है। आत्मा को आप पारे की तरह एक वस्तु मान लीजिए। पारा भी निर्लिप्त रहता है, परन्तु उसके साथ अनेक दोष लगे रहते हैं। योग्य वैद्य उस पारद को सस्कारित, सशोधित करके शुद्ध एव कल्याणकारी बना लेता है। योग्य व्यक्ति भी ठीक उसी तरह आत्मा को शुद्ध करके उसको उपयोगी बना सकता है और इच्छानुसार उससे लाभ ले सकता है।

आत्मा का धर्म

आत्मा शरीर में रहकर स्वयं इन्द्रिय-सचालन नही करती। उसकी बहुसख्यक वृत्तियां मूच्छितावस्था मे रहती है। बुद्धि द्वारा वे जगती हैं। जब बुद्धि आत्मा से सयुक्त होती है, तभी उसको आत्मा की स्फूर्ति या प्रेरणा मिलती है। घोर विपत्ति में या साधना से जब आत्मा उद्दीप्त होती है, तो वह अपने महातत्त्व से अतिरिक्त शक्ति लेकर अधिक सबल हो जाती है। वह सहानुभूति के लिए अपने सजातीय तत्त्व की ओर सहज रीति से दौडती है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि पुत्रोत्पत्ति के समय जब स्त्री को असह्य वेदना होती है और बुद्धि तथा मन व्याकुल हो जाते हैं, तो स्त्री की आत्मा मा-बाप या राम को पुकारती है। वह प्राणपति या प्राणाचार्य (वैद्य) को सकट-निवारण के लिए नही भजती। पाप और कष्ट मे इसीलिए शुद्ध आत्मा की पुकार सुनाई पड़ती है।

आत्मा का दूसरा मुख्य धर्म यह है कि वह प्राणि-वर्ग मे बधुत्व-भावना, सत्य-अहिंसा की भावना जगाती है। वही प्रेरित करती है कि सब एक

ही वृक्ष के फल है। एकात्मता वही जगाती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना वही पैदा करती है। इस मर्म को समझ-कर लोग पराये को भी अपना बना लेते हैं, हिंसक पशुओ तक को वश मे कर लेते हैं। जो इस मर्म को नही पहचानते, वे मिथ्या व्यवहार और क्रूरता से कुटुम्बियो तक को पराया बना लेते है।

आचरण-शुद्धता से आत्मा पुष्ट होती है

आत्मा की तीसरी विशेषता यह है कि वह ब्रह्मचर्य, शारीरिक शुद्धता, सद्विचार से निश्चय ही अधिक कान्तिमयी होती है। बच्चो मे जो स्वाभाविक सरलता, शुद्धता, निष्कपटता मिलती है, उसका रहस्य यह है कि उस अवस्था तक उनका आचरण शुद्ध रहता है, आत्मा जग-मगाती है और मन-बुद्धि इतने बलवान् नही रहते कि वे उसकी स्वाभा-विक आभा को रोककर खडे हो सकें। बालको के भोलेपन मे उनकी शुद्ध आत्मा प्रतिबिम्बित होती है।

आत्मा के सम्बन्ध मे यही कुछ मुख्य बातें हैं। उसमें महाशक्ति है, इसमें सन्देह नहीं परन्तु वह लारी की तरह वरदानो की धूलि उडाती हुई नही चलती। वह मागने से ही वरदान देती है और मांगनेवाली भी जब उसकी आत्मजा (कन्या) बुद्धि हो। रत्न जिस प्रकार पहाडो पर नही, बल्कि समुद्र के अन्तराल मे मिलता है, उसी प्रकार जीवन का रत्न अन्त-स्तल में मिलता है।

सारांश

१. मनुष्य भ्रमवश अपने को जितना साधारण समझता है, वह उतना साधारण नही होता। असंख्य अलौकिक शक्तिया उसको प्रत्येक क्षण घेरे रहती हैं। उन शक्तियो को संयोजित करके मनुष्य महाशक्तिशाली बन सकता है, यह अनेक महापुरुषो के अलौकिक चरित्रो से प्रमाणित होता है। अंग्रेजी मे एक बहुप्रसिद्ध लोकोक्ति है, जिसका अर्थ यह है कि

मनुष्य अपने अनुमान से अधिक शक्तिसम्पन्न होता है।[1] मानस-वल की असीमता इसकी सत्यता को सार्थक करती है।

२ जहा इतनी शक्तियो का मेला लगा होता है, वहा यदि ठीक शासन-व्यवस्था न हो, एकता और क्रमबद्धता न हो तो 'हिन्दू-मुसलमान दगा' हो ही सकता है। उसी के लिए आत्म-सयम की आवश्यकता होती है। यह तभी सभव है जब बुद्धि आत्मा के प्रकाश मे विवेक करे, उपाय या चतुराई से कार्य-सचालन करे। आत्मायुक्त बुद्धि-वल को देव-वल कहते हैं और सफलता तभी मिल सकती है जब कि देव-वल और पुरुष-कार (पुरुषार्थ) साथ-साथ रहते हैं। पुरुपार्थ के न होने से देव-वल व्यर्थ जाता है और वेकारी से मन भयाक्रान्त हो जाता है। उसी तरह देव-वल के विना पुरुषार्थ निष्फल होता है।

३ बुद्धि-प्रधान प्राणी होने के कारण मस्तिष्क का विकास करना मनुष्य का पहला कर्तव्य है। वह विकास ज्ञानोपार्जन से होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि ज्ञान की कोई सीमा और आयु नही होती। किसी की आयु से उसकी मानसिक वृद्धता की नाप नही होती। कभी-कभी शरीर से मनुष्य तीस-चालीस वर्ष का हो जाता है, किन्तु उसका मस्तिष्क उसी अवस्था में रहता है, जैसा वह दस-बारह वर्ष की आयु में रहा होगा। उसको अपरिपक्व मस्तिष्क[2] कहते हैं। प्राय थोडी आयु में ही कुछ लोगो का मस्तिष्क शरीर की आयु के अनुपात से अधिक बढ जाता है। मस्तिष्क के घटने-बढने से लोग वैसा ही आचरण करते हैं। खैर, ये तो प्राकृतिक विषमताए है। यहा हमारा कहने का अभिप्राय यह है कि अल्पायु मे भी मनुष्य ज्ञानी हो सकता है जैसा कि राम के अनुसार भरत थे : 'ज्ञानवृद्धवयो बालः।' कालीदास ने भी लिखा है कि तेजस्वियों की आयु नही देखी जाती . 'तेजसा हि न वय· समीक्ष्यते' (रघुवश)

बौद्ध ग्रन्थों में इस सम्बन्ध मे एक छोटी-सी कथा है : जीवक नाम

---

1. Man is stronger than he knows.
2. Undeveloped mind.

का एक दरिद्र बालक था, जिसको धनाभाव के कारण बचपन में बड़े कष्ट भोगने पड़े थे। एक बार बीमार पड़ने पर वह पैसे की कमी से अपनी चिकित्सा भी न करा सका। उसने सोचा, ऐसे ही निर्धन कष्टभोगी लाखो होगे। अतएव लोगो को मुक्त करने का सकल्प करके उसने तक्ष-शिला मे जाकर चार वर्ष तक चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया और वहा से उत्तीर्ण होकर वह लोक-यात्रा को चला। अयोध्या में उसको एक विधवा मिली, जिसको वर्षों से भयकर शिरोरोग था। जीवक जब उसकी चिकित्सा करने चला, तो बुढ़िया ने कहा कि तुम अभी बालक हो, क्या करोगे, बड़े-बड़े वृद्ध और अनुभवी वैद्य भी मेरे रोग का इलाज नही कर सके हैं। इसपर युवक ने उत्तर दिया कि 'विज्ञान बालक भी नही और न वृद्ध ही है।' उसने उसके रोग पर विजय प्राप्त की। एक बार जब बुद्ध बीमार पडे और अन्य चिकित्सक कोई उपचार न कर सके, तो उनके सर्वप्रिय शिष्य आनन्द ने इस नवयुवक की प्रसिद्धि सुनकर इसको बुलाया। निर्धनपुत्र जीवक ने भव-व्याधिहर्ता के व्याधि-हर्ता होने का गौरव प्राप्त किया। इस कथा से और अपने ही समय के सैकड़ो उदाहरणो से जाना जा सकता है कि ज्ञान की कोई आयु नही है। संकल्प के साथ अभ्यास करने से थोडे समय में भी मस्तिष्क को प्रखर एवं ज्ञान-वृद्ध बनाया जा सकता है।

करत-करत अभ्यास के जड़मत होत सुजान

सबका सार यह है—गागर मे सागर की तरह मस्तिष्क एक छोटी-सी खोपडी मे भरा हुआ ब्रह्माण्ड है। एक प्रकार से हमारे शरीर-शैल पर महावरदानी शिव का मन्दिर जन्म से ही बना रहता है। वरदान के लिए केवल साधन की आवश्यकता होती है।

३. स्वास्थ्य, व्यायाम, विश्राम

स्वास्थ्य

अन्न ही प्रजापति है

शास्त्रो ने अन्न अर्थात् आहार को ही विधाता कहा है। 'अन्न वै प्रजापति.' (प्रश्नोपनिषद्)। अन्न से ही रस बनता है, रस से रक्त, रक्त से वीर्य और वीर्य से जीवन। इस प्रकार आहार से ही शरीर का धारण, पोषण और नवनिर्माण होता है। चरक ने भी लिखा है कि देह अन्न से ही बनती है : 'देहो ह्याहारसंभव:।' यह तो एक साधारण समझ की बात है कि शरीर की उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि मनुष्य के भोजन पर अवलम्बित रहती है। शरीर के जीवन और स्वास्थ्य का सर्वप्रमुख साधन आहार ही होता है। स्थूल शरीर को दार्शनिक भाषा मे अन्नमय कोष कहते ही है। कोई इस तथ्य को अस्वीकार नही करेगा कि शरीर में जो बल, तेज और वर्ण का विकास होता है, उसका उत्पादक आहार ही होता है। आहार ही आरोग्य और आयुर्बल देता है, जिसको स्वास्थ्य कहते है। वैद्यक के मत से अन्न तत्काल चैतन्य देनेवाला, इन्द्रियो का पोषक, बुद्धि, स्मृति एव ओज-तेजवर्द्धक होता है।

आहार के महत्त्व को मानकर हमें सक्षेप में इस बात पर विचार करना चाहिए कि किस प्रकार के आहार से शारीरिक स्वास्थ्य का विकास होता है। यह सर्वज्ञात है कि भोजन का उद्देश्य पेट भरना ही नही, मुख्यत. शरीर का पोषण करना है। पेट भरने से ही आहार का प्रयोजन सफल नही होता है। वही भोजन स्वास्थ्यवर्द्धक होता है, जो शरीर के अनुकूल होता है। प्रतिकूल होने पर वह प्रजापति नही बल्कि शरीर के

लिए प्राणपति (यमराज) अर्थात् भारस्वरूप एवं नाशक होता है। कौन-सा आहार शरीर के अनुकूल पड़ता है, इसको समझने के लिए हमे सर्वप्रथम शरीर की रचना-सम्बन्धी निम्नलिखित बातो को ध्यानपूर्वक समझ लेना चाहिए :

१. एक-एक ईंट से बने हुए मकान की तरह शरीर असंख्य सूक्ष्म परमाणुओं[1] से निर्मित होता है। ये भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के होते है और भिन्न-भिन्न समूहो में संगठित होकर धातु[2] के नाम से पुकारे जाते हैं। भिन्न-भिन्न जाति की इन्ही धातुओं से मास, रक्त, अस्थि और नाडियो आदि का निर्माण और संचालन होता है।

२. धातुओं-सहित सम्पूर्ण शरीर का संगठन पाच मूल तत्त्वो से होता है अर्थात् पाच मुख्य तत्त्व हैं, जिनके आधार पर शरीर की रचना होती है। वही परमाणुओं या धातुओ अथवा उनके द्वारा सयोजित शरीर के मूलाधार माने जाते है। आयुर्वेद के मत से ये पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु हैं। आधुनिक रसायनशास्त्रियो की वैज्ञानिक भाषा में वे पाच मूल पदार्थ ये हैं : (क) प्रोटीन अर्थात् मास जातीय (पौष्टिक) पदार्थ, (ख) चरबी, (ग) खनिज या पार्थिव पदार्थ, (घ) कार्बोहाइड्रेट अर्थात् शर्कराजातीय पदार्थ, (ङ) जल। इन्हीं के अन्तर्गत सम्पूर्ण शरीर में कुल तेईस तत्त्व मिलते है, जिनमे से ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन, फासफोरस, चूना, गंधक, क्लोरीन, सोडियम, लोहा और पोटेशियम मुख्य हैं। ऑक्सीजन के अतिरिक्त अन्य सभी यौगिक[3] रूप मे मिलते हैं और सबको उक्त पांच श्रेणियो में विभाजित किया जाता है। वैज्ञानिक परीक्षा से ज्ञात होता है कि शरीर मे जल का अश सत्तावन प्रतिशत, खनिज पदार्थों का अंश बीस प्रतिशत, चरबी, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट का अंश तेईस प्रतिशत होता है। इसका अर्थ यह है, जब ये

---

1. Cells
2 Tissues
3. Compounds.

मूल तत्त्व इन्ही परिमाणो मे शरीर मे रहते है तभी धातुएं सक्रिय होती हैं और शरीर अपनी प्राकृतिक अवस्था मे अर्थात् स्वस्थ रहता है। आयुर्वेदोक्त पच महातत्त्वो का सम्मिश्रण भी जब उनकी उचित मात्रा में रहता है, तभी शारीरिक क्रियाए ठीक चलती है। दोनो मे से जिस मत को भी मानिए, इतना निश्चित है कि शरीर पचतत्त्वात्मक है। इस विषय को सामयिक दृष्टि से समझाने के लिए हम इस स्थान पर आधुनिक मत के अनुसार विचार करेंगे।

३ ये रासायनिक द्रव्य सदैव उपर्युक्त परिणामो में नही रहते क्योकि शारीरिक क्रियाओ से प्रत्येक क्षण लाखो परमाणु नष्ट होते रहते हैं। रक्त ही के स्वास्थ्यधारक लाल परमाणु प्रतिदिन १०,००,००,००,००,००० की सख्या मे नष्ट होते है। शरीर स्वत. इस क्षति की पूर्ति नही कर सकता, और जब नही कर सकता तो धातुओ का स्वय परिमाण मे रहना सभव नही है। इसके लिए यह आवश्यक है कि बाहर से कुछ ऐसे पदार्थ लिए जाए, जो नष्ट हुए परमाणुओ के स्थान मे नये परमाणुओ का उत्पादन कर सकें और इस प्रकार धातुओ को सतुलित रखकर शारीरिक क्रिया को स्थिर एव सचालित रखें। ये पदार्थ आहार के रूप मे ही लिए जा सकते है।

ऊपर के विवरण से एक बात स्पष्ट होती है; वह यह कि आहार का सगठन वैसा ही होना चाहिए जैसा कि स्वय शरीर का सगठन है। दूसरे शब्दो में—भक्ष्य पदार्थो के चुनाव मे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनसे शरीर के मूल तत्त्वो के लिए उचित मात्रा में आवश्यक सार-सामग्री मिलती रहे। पचतत्त्वात्मक शरीर के लिए पचतत्त्वात्मक आहार ही उपयुक्त हो सकता है। उनकी प्रचुरता अथवा न्यूनता से धातुओ का सगठन नष्ट हो जाता है। शरीर में वे क्या कार्य करते हैं और किन पदार्थों से उपलब्ध होते है, इनपर भी हम सक्षेप में विचार करेंगे।

प्रोटीन

प्रोटीन शरीर के परमाणुओ के जीवन का मुख्य तत्त्व होता है। धातु-वृद्धि और धातु की स्वाभाविक क्षति की पूर्ति इसी से होती है। प्रोटीन के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ से धातु-तन्तुओ का उत्पादन नही हो सकता। यह नाइट्रोजन-प्रधान द्रव्य—मास, दाल, अडा और फल तथा वनस्पतियो के यौगिक पदार्थों से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। यदि ये पदार्थ आवश्यकता से अधिक मात्रा मे लिए जाते है, तो सार रूप मे जो अधिक प्रोटीन निकलता है, वह चरवी के रूप मे शरीर में सचित हो जाता है।

चरवी

चरवी के रूप मे शरीर के लिए स्थायी शक्ति अधिक मात्रा में सचित होती है, उससे उष्णता और शक्ति उत्पन्न होती है। जीवों की चरवी, वनस्पतियो के तेल, मक्खन, घी और पिस्ता, बादाम आदि मेवो की गिरी से यह प्रचुर मात्रा में मिलती है। चरवी की शक्ति कार्वोहाइड्रेट की शक्ति से डेढ गुनी अधिक होती है।

खनिज द्रव्य

खनिज द्रव्यो से धातु-निर्माण मे सहायता मिलती है। हड्डिया इन्ही से बनती है। इनका प्रभाव शारीरिक शक्ति पर कम या बिल्कुल नही पडता किन्तु शरीर के पोषण, पाचन-क्रिया और धारक धातुओ पर इनका विशेष प्रभाव रहता है। हड्डी मे ⅔ भाग खनिज द्रव्यो का ही रहता है। रक्त के लाल कणो मे, दात, केश, पाचन-रस और मस्तिष्क मे खनिज द्रव्य प्रचुर मात्रा मे पाए जाते है और उक्त अगो का पोषण इनसे विशेष रूप से होता है। दूध, अडा, हरे साग और अनाज आदि द्वारा ये पर्याप्त मात्रा मे सुलभ होते है।

कार्वोहाइड्रेट

शारीरिक शक्ति, स्फूर्ति और उष्णता का उत्पादक और सामर्थ्य-दाता द्रव्य कार्वोहाइड्रेट ही होता है। शारीरिक परिश्रम की क्षमता इसी

से प्राप्त होती है। उचित मात्रा में रहने पर यह शरीर की क्रियात्मक शक्ति को चैतन्य रखता है; आवश्यकता से अधिक होने पर चरबी के रूप में सचित हो जाता है। चावल मे कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में होता है। फल, शहद, गुड, शक्कर, गेहू, आलू आदि का मुख्य पोषक पदार्थ कार्बोहाइड्रेट ही है। यह स्मरण रखना चाहिए कि वनस्पतियो द्वारा ही इस महातत्त्व की प्राप्ति होती है। मास आहार से प्रोटीन और चरबी के तत्त्व अवश्य अधिक मिलते है, परन्तु कार्बोहाइड्रेट अन्नाहार और फलाहार से ही मिलता है।

जल

जल शरीर का एक मुख्य तत्त्व है। सारे तत्त्व उसी की सहायता से शरीर में प्रवाहित होते है और उनका साम्यीकरण भी उसीके आधार पर होता है। आहार को शरीर में ग्रहण करने और निस्सार पदार्थो को शरीर से बाहर निकालने मे वही सहायक होता है। उससे शरीर मे कोई शक्ति नही उत्पन्न होती, परन्तु उसके विना परमाणु न तो जी सकते हैं और न शरीर में फैलकर अपना कार्य ही कर सकते है।

भोजन के रूप मे जो पदार्थ पेट मे जाते है, वे पाचन-रस के सयोग से पाक-स्थान में पचते हैं। पाचन-यन्त्र स्वाभाविक रीति से आहार-परिवर्तन करते हैं। वे भक्षित पदार्थों मे से उनके प्रोटीन, मेद, खनिज, जल और पिष्टमय (कार्बोहाइड्रेट) अंशो को साररूप मे ग्रहण करके रस-रक्तादि धातुओ में परिवर्तित करते है। उनके द्वारा नष्ट हुई धातुए पुनः शरीर को प्राप्त होती है और शरीर की स्थायी शक्ति मे क्षति नहीं होने पाती। आहार-परिवर्तन से ही शरीर की स्वाभाविक उष्णता उत्पन्न होती है। भोजन के आवश्यक तत्त्वो को अर्थात् आहार-सार को ग्रहण करने के अतिरिक्त भीतरी यत्र एक दूसरा कार्य भी करते हैं। वे आहार-मल को अलग करते है। शरीर के अनुपयुक्त पदार्थों के जो अनावश्यक अश होते हैं और जो आहार-परिवर्तन की प्रक्रिया से भीतर ही भीतर उत्पन्न होते है, उनको वे मल, मूत्र और प्रश्वास से बाहर

निकालते है। आहार-परिवर्तन के समय आहार के रचनात्मक और विनाशात्मक कार्य साथ ही साथ होते हैं। इसको जान लेना आवश्यक है कि जब शरीर-यन्त्रों को सारयुक्त पदार्थ पर्याप्त मात्र में मिलते हैं तो उनकी शक्ति का अपव्यय नही होता। वे अधिक से अधिक आवश्यक तत्त्व उनमे से निकाल लेते हैं। जब निस्सार पदार्थ मिलते हैं तो उनका परिश्रम त्याज्य पदार्थों को अलग करने में ही व्यय होता है।

सामने के पृष्ठ पर एक तालिका दी है, जिससे कुछ आवश्यक खाद्य-पदार्थों के आवश्यक-अनावश्यक अशो की साधारण जानकारी प्राप्त होगी।

इस प्रसग में अन्य जाति के पदार्थों का उल्लेख कर देना आवश्यक है। आधुनिक वैज्ञानिको ने यह सिद्ध किया है कि यद्यपि ये पाचो तत्त्व शरीर के लिए परमावश्यक हैं, फिर भी इनके द्वारा सम्पूर्ण स्वास्थ्य की रक्षा और वृद्धि नही होती। ये पचतत्त्व शरीर को भले ही स्थिर रख ले किन्तु रोग के आक्रमण से उसको नही बचा सकते। शारीरिक विकास और स्वास्थ्य-रक्षा के लिए एक अन्य द्रव्य की आवश्यकता भी होती है, जिसको विलायती वैज्ञानिक भाषा मे 'विटैमिन' और अनुवादित भाषा मे जीव-द्रव्य कहते हैं।

विटैमिन

जीव-द्रव्य के सम्बन्ध मे इतना जान लेना आवश्यक है कि वे भोजन के सजीव अश होते हैं और पचतत्त्वो को अधिक क्रियात्मक बनाते हैं। वे मुख्यत. वनस्पतियो से उपलब्ध होते हैं। विटैमिनो की पाच मुख्य जातिया अभी तक निर्धारित हो पाई हैं। वे शरीर की जीवनी शक्ति के लिए नितान्त उपयोगी हैं, इसलिए सक्षेप मे उनका परिचय दिया जाता है।

विटैमिन ए—शारीरिक वृद्धि और सक्रामक रोगो से बचाव के लिए शरीर मे इस जीव-द्रव्य का होना आवश्यक है। इसकी कमी से शरीर रोगाक्रान्त, दुर्बल एव क्षीण होता है और फेफड़े, पाचन-यन्त्र आदि

पदार्थ	निस्सार अंश%	जल अंश%	प्रोटीन%	चरबी%	शर्करा अंश%	खनिज अंश%
अण्डा	११२	६५·५	१३·१	९·३	—	०·९
मक्खन	—	११	१	८५	—	३
चावल	—	१२·३	८	०·३	७९	०·४
शक्कर	—	—	—	—	१००	—
टोमैटो	—	९४·३	०·९	०·४	३·९	०·५
सेव	२५	६३.३	०·३	०·३	१०·८	०·३
केला	३५	४८·६	०·८	०·४	१४·३	०·६
अंगूर	२५	५८·०	१	१·२	१४·४	०·४
नारंगी	२७·०	६३·४	०·६	०·१	८·५	०·८
बादाम	४५·०	२·७	११·५	३०·२	९·५	१·१
अखरोट	५८·१	१	६·९	२९·६	६·८	०·६
दूध	--	८७	३·३	४	५	०·७
गोभी	१५	७७·७	१·४	०·२	४·८	०·९

निर्बल होते हैं। बच्चो की वृद्धि इसके अभाव मे रुक जाती है। रात्रि-अधता (रतौंधी) इसी की कमी से होती है। विटैमिन 'ए' हरे शाको मे प्रचुर मात्रा मे मिलता है। दूध, दही, मक्खन के अतिरिक्त अडो, जानवरों के यकृत्, मछली के तेल (कॉड लिवर ऑयल) मे भी यह विशेष रूप से रहता है।

विटैमिन बी —विटैमिन 'बी' के कई उपभेद है। सबकी उपयोगिता में अन्तर है। यह जीव-द्रव्य त्वचा और नाडी-सस्थान के पोषण के लिए आवश्यक होता है। इसकी प्राप्ति उड़द, मटर, गेहू, चावल के भीतरी अश, मूगफली और अडे आदि से होती है। गेहू, जौ के चोकर और अनाजो के ऊपरी पर्त मे यह अधिक मिलता है।

विटैमिन सी— शरीर की जीवन-शक्ति बढाने के लिए, दातो के पोपण और रक्षण तथा शरीर की वर्ण-वृद्धि के लिए विटैमिन 'सी' आवश्यक होता है। दूध, आम, नींबू, सतरा, हरे शाक, गोभी, आलू, गाजर, प्याज, टोमैटो, शलजम और अंकुरित अनाज इसके उत्पादक होते है।

विटैमिन डी—विटैमिन 'डी' से अस्थियो का पोषण होता है और रक्त मे गाढापन आता है। दातो में इसके कारण शक्ति आती है। इसके अभाव मे बच्चो को सूखा रोग होता है, क्योकि उनकी हड्डिया दृढ नही होती। यह द्रव्य मुख्यतः सूर्य की किरणो से मिलता है। गाय की अपेक्षा भैस के दूध मे इस जीव-द्रव्य की मात्रा अधिक रहती है। मक्खन, अडा और मछली के तेल द्वारा भी यह प्राप्त होता है।

विटैमिन ई—यह द्रव्य पुरुषार्थ-शक्ति का धारक माना जाता है। इसके सेवन से जननशक्ति प्रबल होती है। जिन माता-पिताओ के शरीर में यह जीव-द्रव्य नही होता, उनकी सन्तानोत्पादक शक्ति क्षीण हो जाती है और उनके बच्चे या तो होते ही नही या बहुत दुर्बल होते है। यह दूध, मक्खन, बीजो या उनके तेल, गेहू तथा हरे शाको में पाया जाता है। जीवनीय द्रव्यो के सम्बन्ध मे जो सबसे आवश्यक बात ध्यान में रखनी चाहिए, वह यह कि वे प्राय. कच्चे पदार्थो मे और ताजे फलो और हरी

तरकारियो ही में सुरक्षित रहते है। उबालने अथवा बासी हो जाने से उनकी शक्ति कम हो जाती है या बिल्कुल नष्ट हो जाती है। फल, अनाज और शाको से जो स्वास्थ्य-सुधार होता है, उसका रहस्य यही है। फल, अनाज और शाक आदि अपनी जीवनीय शक्ति सूर्य-प्रकाश से पाते है। इसलिए ऐसे पदार्थों में जो सूर्य की किरणो के सम्पर्क मे रहते हैं, कन्दो की अपेक्षा अधिक विटैमिन होते है। ये तत्त्व अनाजो के ऊपरी पत्तो में विशेषरूप मे मिलते हैं। इसलिए पालिश किए हुए चावल निस्सार होते है। अनाजो के सम्बन्ध मे यह स्मरण रखना चाहिए कि उनके अकुरित होने पर उनके पौष्टिक तत्त्वो के अतिरिक्त उनमे विटैमिन बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाते है।

विटैमिनो के आविष्कार के बाद से शरीर-शास्त्र और कम से कम रोग-विज्ञान के सम्बन्ध मे वैज्ञानिको का दृष्टिकोण ही बदल गया है। अभी तक लोग एक-एक पदार्थ को कीटाणुओ से मुक्त करने के लिए उन्हे नाना प्रकार के साधनो से उबालकर, रासायनिक द्रव्यो से धोकर—स्वच्छ बनाकर खाने के पक्षपाती थे। वे यह समझते थे कि शरीर को रोग से बचाने का यही उपाय है। परन्तु अब वैज्ञानिको ने सिद्ध किया है कि इन अप्राकृतिक उपायो से पदार्थों के प्राकृतिक तत्त्व ही नष्ट हो जाते हैं। और यही कारण है कि जो बच्चे गरीबी के कारण प्राकृतिक आहार लेते है, वे उन बच्चो से अधिक स्वस्थ एव दीर्घजीवी होते हैं जो बडे यत्न से शोधित आहार पर पाले जाते हैं। पहले की अपेक्षा अब लोगो को पाचन-विकार अधिक होते हैं, दातो की शिकायत अधिक होती है और गठिया आदि रोग भी बहुत होते हैं, यद्यपि अब खान-पान में पहले की अपेक्षा लोग अपने को अधिक सभ्य मानते है। इसका कारण यह है कि अब प्राकृतिक आहार को प्राकृतिक ढग से नही लिया जाता। और हम यह भी देखते है कि पुरानी कोष्ठबद्धता में जब हरे शाक और फल आदि प्राकृतिक ढंग से लिए जाते है, तो वे रोग निर्मूल भी हो जाते हैं क्योकि तब विटैमिन जीवित रूप में शरीर मे पहुंचते हैं। इन बातो

पर विचार करके हम एक निर्णय पर पहुंचते है, वह यह है कि दुनिया कम से कम आहार के विषय मे घूम-फिरकर फिर वही पहुच रही है जहा प्राचीन आयुर्वेदज्ञ लोग पहुच चुके हैं। प्राचीन शास्त्रज्ञो ने धारोष्ण दूध पीने का जो विधान बताया था उसको अब तक लोग अस्वास्थ्यकर मानते थे और तीन बार उसको उबालने का विधान बताते थे, जिससे कि उसके जन्तु मर जाए। अब विटैमिनशास्त्री लोग प्रमाणित करते हैं कि दूध को उबालने से उसका जीवन-तत्त्व ही नष्ट हो जाता है।

साराश यह है कि कल्पित जन्तुओ के भय से लोग खाद्य वस्तुओ के उस सार-अश को नष्ट कर देते हैं जो शरीर में रहने पर उनसे भी प्रबल जन्तुओ के आक्रमण से शरीर को बचा सकते है। एक प्रकार से वे उस बन्दर के जैसा आचरण करते है जिसने अपने मालिक की नाक पर बैठी हुई मक्खी को उडाने के लिए उसपर पत्थर पटक दिया था।

कैसा आहार लेना चाहिए

आहार के पौष्टिक तत्त्वो और जीवनीय द्रव्यो की उपयोगिता को ध्यान में रखकर यह कहना ही उचित होगा कि हमे ऐसे पदार्थों का सेवन करना चाहिए जो पौष्टिक एव सात्त्विक हो। इस सम्बन्ध मे निम्न-लिखित बातो का ध्यान रखना चाहिए :

१. प्रकृति ने सब जीवो के लिए प्राकृतिक आहार बनाए है। अपने स्वभाव के अनुकूल आहार लेने से उस जीव के स्वाभाविक स्वास्थ्य का विकास होता है। मासाहारी लोग जो भी कहे, किन्तु हमे यह मानना पडेगा कि कम से कम इस देश के स्वाभाविक आहार अन्न, दूध, फल और शाक ही हैं। मास मे पौष्टिक अश पर्याप्त मात्रा मे होते है और उनसे पुष्टि के साथ उत्तेजना भी मिलती है, इसमे सन्देह नही, परन्तु उसमे जीवनीय शक्ति—आयुर्बल—बढाने की क्षमता नही होती। मनुष्य ही नही, बल्कि निरामिष पशु-पक्षी भी मासाहारी पशु-पक्षियो से अधिक दीर्घजीवी होते है। पशुओ मे हाथी और पक्षियो मे तोते सर्वाधिक दीर्घजीवी पाए जाते है और दोनो ही मासाहारी नही होते। अन्य जीवो

की अपेक्षा दोनो बुद्धिमान् भी अधिक होते है। मनुष्यो मे भी अन्नजीवी व्यक्ति बुद्धि-सामर्थ्य और शरीर-सम्बल मे मासाहारियो से किसी प्रकार निर्बल नही होते, जैसा कि गाधीजी और बर्नार्ड शॉ के जीवन से प्रकट होता है। स्वच्छता की दृष्टि से भी निरामिष अधिक हितकर होता है।

२. ऐसा आहार लेना चाहिए जिसमे पौष्टिक तत्त्वो का सार पर्याप्त मात्रा मे हो और जिसको पाचन-यन्त्र सुगमता से ग्रहण कर सके। उदाहरण के लिए दूध को लीजिए। प्राचीन और आधुनिक दोनो मतो से दूध मनुष्य का सर्वोत्तम आहार माना जाता है। जीवनोपयोगी सभी पौष्टिक तत्त्व--प्रोटीन, चरबी, कार्बोहाइड्रेट (दुग्धशर्करा), जल, लोहा, गधक, फास्फोरस, चूना, पोटेशियम आदि खनिज पदार्थ तथा सभी आवश्यक विटैमिन इसमें मिल जाते है। इसलिए इसको पूर्णाहार माना जाता है। इन गुणो के अतिरिक्त दूध आसानी से पच जाता है। उसको पचाने मे इन्द्रियो को शक्ति का अपव्यय नही करना पडता। इन सब गुणो के साथ दूध अतडियो के विष और कीडों का प्रबल नाशक भी होता है। सब दृष्टियो से वह मनुष्य का स्वाभाविक आहार एव जीवन-रक्षक होता है। पौष्टिक, जीवन-रक्षक और साथ ही सुपच होने के कारण वह अनुकूल पडता है। गत वर्षो से सोयाबीन की बडी चर्चा थी और वैज्ञानिक परीक्षा से यह सिद्ध हुआ था कि उसमे दूध ही के समान गुण है, परन्तु अब पता चला है कि उसमे सर्वगुणसम्पन्नता होते हुए भी पाचन-यत्र उसके सार को ग्रहण नही करता; क्योकि यह उसके स्वभाव के अनुकूल नही पडता। इसलिए सोयाबीन की महिमा अब घट गई है। वास्तव् मे इन्द्रियो की ग्राहिका शक्ति के अनुसार ही पदार्थो के सार अश उपलब्ध होते हैं। कैसा भी पौष्टिक आहार खाइए, यदि वह भीतर की प्रकृति के अनुकूल न पडेगा, तो शरीर उसको स्वीकार न करेगा।

दूध के अतिरिक्त केले को लीजिए। विटैमिन 'बी', 'सी' के साथ-साथ इसमे चरबी, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, जल तथा लोहा, फासफोरस,

चूना आदि खनिज पदार्थ मिलते हैं और वह जन्तु नाशक भी होता है। इसको भी पूर्णाहार मानते है। आयुर्वेदाचार्य डॉक्टर भास्कर गोविन्द ताणेकर ने सुश्रुतसंहिता की टीका मे प्रसंगवश लिखा है कि 'तीन अच्छी तरह पके हुए केले और डेढ सेर दूध एक मनुष्य के लिए एक समय का उत्तम आहार होता है। दूध के साथ केले के मिलने पर सभी विटैमिन उपलब्ध हो सकते हैं क्योकि केले मे 'बी' और 'सी' विटैमिन तथा दूध मे 'ए', 'डी' और 'ई' विशेष रूप से मिलते हैं।

३. पौष्टिक तत्त्वो और विटैमिनो के चक्कर मे विशेष रूप से न पड़कर मोटे तौर पर यह मान लेना चाहिए कि जिस स्थान पर, जिस ऋतु मे जो स्वाभाविक खाद्यपदार्थ उत्पन्न होता है, वही वहा का, उस समय का और वहा के लोगो का सबसे अधिक पौष्टिक और जीवनीय द्रव्य-संयुक्त आहार होता है। यही प्रकृति की व्यवस्था है। उन आहारो को उचित मात्रा में संगठित करके और स्वाभाविक रूप से लेना चाहिए। स्वच्छता की दृष्टि से और स्वाद की दृष्टि से उनको पकाना चाहिए; पर इस बात का ध्यान रखकर कि उनके उपयोगी अश जलें नही या व्यर्थ न जाएं। उदाहरण के लिए चावल को लीजिए। बहुत-से लोग चावल के माड को फेंक देते हैं। उसके साथ चावल का सारा तत्त्व निकल जाता है। बहुत-से लोग पालिश किए चावल खाते हैं, जिनके ऊपर की पर्त छिली रहती है। उसी आवरण मे चावल के सारे पौष्टिक तत्त्व रहते हैं। उसके निकलने से वह निस्सार एव भारी और रोग पैदा करनेवाला हो जाता है। इसलिए आहार को यथासम्भव उसके प्राकृतिक रूप मे लेना चाहिए। साथ ही सामयिक शाक-भाजी और फल अवश्य लेने चाहिए। उनको ठीक से पकाने और न पकाने से भी उनके गुणो मे भेद पड़ जाता है, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। जब वे सुन्दर रीति से पके रहते हैं, तो स्वाद से खाने के साथ मुख का पाचन रस भी उनके साथ ठीक मात्रा में मिश्रित होता है और वे आसानी से पचते हैं।

४. व्यक्तिगत रुचि, अनुकूलता, आवश्यकता और पाचन-शक्ति के

अनुसार ही आहार लेना चाहिए। सबके लिए एक-सा आहार अनुकूल नही पड़ सकता, क्योकि सबकी प्रकृति और शारीरिक बनावट भिन्न होती है। अतएव रुचि को ध्यान मे रखकर ऐसा ही आहार ग्रहण करना चाहिए जो शरीर के अनुकूल पडे और जिसको अतडियां बिना उछल-कूद के पचाकर उसके सार को आवश्यकतानुसार ले सकें। वह भोजन ऐसा हो और इतनी मात्रा मे हो कि उसको हजम करने मे शारीरिक शक्ति का अपव्यय न हो।

रुचि आदि के साथ शरीर की आवश्यकता का भी ध्यान रखना चाहिए। जिस समय शरीर को जैसे पौष्टिक तत्त्वो की मांग हो, वैसा आहार लेना ठीक होता है। परिश्रमी को प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट की विशेष आवश्यकता पड़ती है। इसलिए ऐसे पदार्थ जिनसे ये तत्त्व मिल सकें, लेना उसके लिए हितकर होगा। बैठकर मानसिक कार्य करने वाले को इनकी अधिक मात्रा से हानि हो सकती है क्योकि उनसे चरबी बढेगी। इसलिए अग्रेजी मे एक कहावत है कि जो वस्तु एक व्यक्ति के लिए मास (अर्थात् विलायती अमृत) हो सकती है, वही दूसरे के लिए विष हो सकती है।[1]

५. बाजार-भाव के अनुसार किसी खाद्यपदार्थ की उत्तमता का अनुमान न करना चाहिए। पोषक तत्त्वो के कारण वस्तुओ का मूल्य नही निर्धारित होता। वे कितनी कठिनाई या आसानी से मिलती हैं, उनकी खपत कैसी है और उनका स्वाद कैसा होता है, इन्ही के आधार पर बाजार की सभी चीजों के दाम घटते हैं। अतएव इस भ्रम में न पडना चाहिए कि कोई महंगी वस्तु ही स्वास्थ्यकर होगी। साथ ही किसी स्वास्थ्यकर वस्तु को स्वास्थ्य से बढकर मूल्यवान् न मानना चाहिए जिस वस्तु से स्वास्थ्य को लाभ पहुचे, वह महंगी होकर भी बाद में सस्ती पड़ती है, क्योंकि औषधियो का खर्च बचता है। सस्ती किन्तु अस्वास्थ्यकर वस्तु बाद मे महगी पडती है। उन पदार्थों को लेना चाहिए, जो

1. What is one man's meat is another man's poison.

स्वास्थ्यप्रद होने के साथ सस्ते हों। भरण की अपेक्षा पोषण अधिक आवश्यक है, इसको भूलना न चाहिए।

६. खाद्यपदार्थों के चुनाव में इस बात का ध्यान विशेष रूप में रखना चाहिए कि उनके सेवन से किसी प्रकार का रक्त-विकार न हो। शरीर का सारा कार्य रक्त से ही चलता है और रक्त आहार से बनता है। जब वह शुद्ध होकर शरीर मे ठीक-ठीक प्रवाहित होता है तभी स्वास्थ्य ठीक चलता है। उसके दूषित या शिथिल होने से शरीर निर्बल हो जाता है। उत्तेजक पदार्थ लेने से उसमें रूक्षता आ जाती है। रक्त का प्रवाह मन्द होने से शरीर ढीला पड जाता है। मस्तिष्क का रक्त-प्रवाह कम होने से चक्कर आता है और नेत्रो की ज्योति मन्द पड़ जाती है; अधिक होने से सिर-दर्द और किसी स्थान पर अवरुद्ध होने से पक्षा-घात हो जाता है।

रक्त-शुद्धि के साथ स्नायुमंडल को भी ध्यान मे रखना चाहिए, क्यो कि स्नायुमडल की शक्तता पर शरीर अवलम्बित रहता है। उत्तेजक आहार से वह बाद में ढीला हो जाता है। मस्तिष्क सस्थान के रक्त में यदि विटैमिनो के साथ फासफोरस और कैलसियम आदि का उचित सगठन नही होता तो नाड़ियो मे नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते है और स्नायु-दुर्बलता से शरीर बेकार-सा हो जाता है। इसलिए रक्त-वर्द्धक और रक्त-शोधक पदार्थों को ही पथ्य मानना चाहिए।

भोजन कैसे करना चाहिए

क्या खाना चाहिए, इसकी अपेक्षा कैसे खाना चाहिए, यह जानना अधिक आवश्यक है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातो को ध्यान में रखना चाहिए।

१. स्वाद के साथ भोजन ग्रहण करना चाहिए। स्वाद के साथ साधारण आहार लेने पर भी शरीर के लिए रसायन बन जाता है। उसके साथ शरीर के पाचन-रस स्वाभाविक रीति से मिलकर उसको पचाते है। बिना स्वाद का खाया हुआ उत्तम भोजन भी ठीक से नही पचता

और शरीर के लिए भारस्वरूप या खाद बन जाता है, जिसमें व्याधियो के कीड़े या अकुर ही उत्पन्न होते है। यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वाभाविक स्वाद भूख से ही उत्पन्न होता है। औदरिक या घस्मर (जिसके मन मे खाने के अतिरिक्त कोई अन्य विषय न हो) व्यक्ति के मन में भोजन के प्रति जो अनुराग उत्पन्न होता है वह स्वाद नही, लोभ का परिचायक होता है। राजा धृतराष्ट्र को दिया हुआ विदुर का यह उपदेश इस प्रसग मे उल्लेखनीय है :

सम्पन्नतरमेवान्न दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत्स्वादुता जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा ॥ (महाभारत)

अर्थात् दरिद्र व्यक्ति जो भी खाए, सदा अच्छा ही भोजन करता है क्योंकि वह भूख से खाता है। स्वाद को उत्पन्न करनेवाली वह भूख धनिको को दुर्लभ है।

२. सदैव स्वस्थचित्त होकर ही खाना चाहिए। आहार और पाचन-क्रिया पर चित्त-दशा का प्रभाव पड़ता है। बिना मन का खाया हुआ अन्न शरीर मे नही लगता। मन से खाने पर साधारण पदार्थ भी तृप्ति-दायक होता है। चित्त प्रसन्न रहने से पाचन-ग्रथियो द्वारा नियमित रूप से पाचन-रस द्रवित होता है। चित्त की विकलता से भोजन मे अरुचि होती है; आहार बिना बुलाए हुए अतिथि की तरह पेट में पडा रहता है, कोई उसको पूछता नही।

चिंता, भय, मन की उद्विग्नता, ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध आदि विकारो का तात्कालिक प्रभाव पाचन-क्रिया पर पडता है। चिन्ता में आहार निष्फल जाता है, इसको तो आप किसी विरही की दशा देखकर समझ सकते हैं। आप स्वय अनुभव करके देख सकते हैं कि किसी विषय पर देर तक चिन्ता करने से बार-बार मूत्र-विसर्जन करना पडता है। मधु-मेह के प्रधान कारणों में अधिक मानसिक परिश्रम और चिन्ता ही हैं। अधिक चिन्ता और भय से सिर के बाल २४ घण्टों में सफेद होते सुने गए हैं। जब सम्पूर्ण शारीरिक स्वास्थ्य पर उसका इतना प्रभाव पडता है,

तो आहार और पाचन-क्रिया पर क्यो न पड़ेगा ? भय का प्रभाव तो और भी स्पष्ट होता है। आपने सुना होगा कि बहुत-से लोग भय-ग्रस्त होने पर मल-मूत्र त्याग देते है। भयाक्रान्त होने पर भीतर के यत्र अशक्त हो जाते हैं, इसलिए खाए हुए पदार्थ को रोकने की शक्ति उनमे नहीं रहती। पाठ याद न करने पर अथवा अध्यापक की क्रूरता के भय से विद्यार्थी प्राय: पेशाब करने के लिए छुट्टी मागते है। यह उनका बहाना ही नही कहा जा सकता; वास्तव मे उन्हें पेशाब की हाजत होती है। क्रोध आदि से पाचन-क्रिया निश्चय ही बिगड़ जाती है क्योकि क्रोध से रक्त उत्तेजित होता है, उसका दबाव बढता है और वह पाचन-यत्र से हटकर मस्तिष्क में सचित हो जाता है। इससे आहार का पाचन नही होता क्योकि इन्द्रिया निर्बल होती हैं और क्षुधा-शक्ति क्षीण हो जाती है। महर्षि सुश्रुत का यह वचन मानने योग्य है :

ईर्ष्याभयक्रोधपरीक्षितेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्न न सम्यक् परिणाममेति॥

(सुश्रुतसहिता)

ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, चिन्ता, दैन्य तथा द्वेष से पीडित मनुष्यो द्वारा खाया हुआ भोजन ठीक से नही पचता। स्नानादि करके और हाथ-पैर धोकर भोजनगृह मे खाने का जो प्राचीन नियम है, उसका उद्देश्य बाह्य शुद्धता ही नही आन्तरिक शान्ति भी है। मनुष्य जब शान्तचित्त होकर ऐसे वातावरण मे बैठकर भोजन करता है जहा अन्य आकर्षण नही होते, तो चित्त भोजन में लगा रहता है। अकेले भोजन करने की अपेक्षा कुछ साथियो और सहवर्गियो के साथ बैठकर भोजन करने मे अधिक तृप्ति होती है, क्योंकि तब चित्त चिन्ताओ से मुक्त रहता है और लोग आमोद-प्रमोद के साथ खाते है। आन्तरिक तृप्ति एव सन्तोष भोजन का विशेष प्रयोजन है। वह तृप्ति स्वादिष्ट भोजन से ही नही प्राप्त होती है। भोजन कैसा ही मधुर हो, किन्तु यदि गृहिणी कलहकारिणी हो तो उसका ठीक स्वाद न मिलेगा। भोजन देनेवाली सुशील और मृदु-

भाषिणी हो तो रूखा-सूखा भोजन भी तृप्तिदायक होता है। मानसिक शान्ति-अशान्ति का ऐसा ही प्रभाव पडता है। कर्कशा-नाथ तो घर में घुसते ही सशकित रहता है कि पता नही आहार खाने को मिले या गालिया। वह भोजन को कम पचाता है और अपनी व्यथा को अधिक। मृदुला-पति को विश्वास रहता है कि जो भी उसको मिलता है या मिलेगा वह सर्वोत्तम होगा, क्योकि वह प्रेम से दिया जाएगा। प्रेम से बढकर पाचन-रस कोई नही होता। मनुष्य खाद्य-पदार्थों का नही, मान-प्रतिष्ठा का भी भूखा रहनेवाला जीव होता है। किसी कजूस आदमी के यहा बिना आदर-सत्कार से अच्छा खाना भी मिल जाए तो उससे चित्त नही भरता। साधारण किन्तु उदार हृदय वाले व्यक्ति का रूखा-सूखा भोजन भी अतिथि को बडा सुस्वादु लगता है। कृष्ण ने विदुर का साग बडे स्वाद के साथ खाया था। मनुष्य का भोजन ऐसा होना चाहिए जिससे उसका पेट नही, बल्कि चित्त भी भर सके।

आत्म-संतोष के लिए यह भी आवश्यक होता है कि अपने परिश्रम की कमाई का खाना खाया जाए। वह साधारण होकर भी बल और तेज की वृद्धि करता है। चोरी का धन पचता नही है, क्योकि मानसिक ग्लानि उसको पचने के पहले ही गलाकर निस्सार कर देती है। लोभ से आत्म-संतोष नष्ट हो जाता है, इसलिए कभी तृप्ति नही होती और बिना तृप्ति का आहार व्यर्थ हो जाता है। इस सम्बन्ध में एक बात और याद रखने योग्य है। वह यह है कि भोजन की स्वच्छता, उसके रग, गध, रूप आदि का भी यथेष्ट प्रभाव चित्त-दशा पर पडता है। रुचि को जगाने के लिए आहार की इन विशेषताओ को ध्यान मे रखना चाहिए। गन्दगी आदि से मन भड़क जाता है।

३. आहार-भक्षण करते समय उसको धीरे-धीरे चबाकर और अच्छी तरह मर्दित करके तब अतडियों को सौंपना चाहिए। खाने में शीघ्रता कभी हितकर नही होती। यथासभव सादा और मृदु आहार ही

नियमित रूप से नियत समय पर खाना चाहिए। अधिक मिर्च-मसालों के उपयोग से जिह्वा को सुख अवश्य मिलता है, परन्तु अतडियो की दुर्दशा हो जाती है : उनसे रक्त की रूक्षता बढती है, पाचन-रस का अप-व्यय और पुरुषार्थ का नाश होता है। यह भी याद रखना चाहिए कि अधिक नमक वैज्ञानिक दृष्टि से पुरुषार्थ-नाशक होता है। मिर्च-मसालो और नमकीन वस्तुओ के विशेष उपयोग से जल अधिक पीना पडता है। भोजन के समय और उसके उपरान्त अधिक जल पीने से पाचन-सामग्री पतली हो जाती है और पाचन-रस स्वय इतना पतला हो जाता है कि भोजन ठीक से नही पचता। इसलिए थोडा-थोडा कर के पानी पीना चाहिए और ऐसा आहार लेना चाहिए जो अधिक पानी न मागे : 'मुहु-र्मुहुर्वारि पिवेदभूरि' (भावप्रकाश)। जल के विषय में हम विशेष रूप से आगे लिखेंगे।

४. भोजन के बाद शारीरिक और मानसिक परिश्रम से बचना चाहिए। जब खाना पचने लगता है तो शरीर का रक्त-प्रसार मुख्यतः अतड़ियो पर होता है। अन्य अगो में, मुख्यत. मस्तिष्क में रक्त की कमी हो जाती है जिसके कारण सुस्ती, ठंडक और ऊबाई आदि का अनुभव होता है। उस दशा मे शारीरिक या मानसिक परिश्रम करने से रक्त पाचन-यन्त्रो को सहयोग देना छोडकर अन्य पेशियो की ओर भागता है, जिसके कारण ठीक पाचन नही हो पाता। इसलिए सुश्रुत ने कहा है कि खाने के बाद जब तक अन्न का भारीपन रहे, तब तक राजा की तरह (निश्चिन्त होकर) विश्राम करे, उसके बाद सौ पद चलकर बाईं करवट लेटना चाहिए।

भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नक्लमो गत.।
तत. पादशत गत्वा वामपार्श्वेन सविशेत् ॥ (सुश्रुतसहिता)

आजकल स्वास्थ्य-नाश का एक मुख्य कारण यह है कि लोग खाने के बाद प्रायः काम मे लग जाते है। बाबू, विद्यार्थी, व्यापारी आदि खाने के बाद दौडते हैं और फिर मानसिक परिश्रम करते है। इससे

भोजन ठीक तरह से नही पचता और परिणाम होता है अजीर्णता, कोष्ठबद्धता तथा शक्ति-क्षय। सस्कृत की प्राचीन लोकोक्ति है कि जो भोजन के बाद दौड़ता है उसके पीछे मृत्यु दौडती है · 'मृत्युर्धावति धावतः।'

५. भोजन के बाद शरीर में कफ बढता है। इसीलिए सुश्रुत ने लिखा है कि उसको दबाने के लिए बुद्धिमान् को उचित है कि वह पान, धूम्रपान, कपूर, लौंग या कषाय, कटु, तिक्त पदार्थो का सेवन करे। सुश्रुत ने यह भी लिखा है कि भोजन के बाद चित्तवृत्ति को बिगाड़ने-वाले शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श से बचना चाहिए।

जल का महत्त्व

जल के सम्बन्ध मे कुछ विशेष बातो का उल्लेख कर देना आवश्यक है, क्योकि वह जीवन का एक मुख्य आधार है। उसका सस्कृत नाम भी जीवन तथा जीविका है। अन्न-जल ही शरीर को जीवित रखते है। आदिकाल से ही इसके महत्त्व को स्वीकार किया गया है। वेदो ने भी जल की स्तुति की है :

आपः इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्॥ (अथर्ववेद)

जल ही ओषधि है; वही रोग-नाश का कारण है; वही सकल व्याधियों की ओषधि है। जल ! तुम लोगो की ओषधि बनो।

जल में स्वय कोई पौष्टिक तत्त्व नही होता, फिर भी शरीर के पौष्टिक तत्त्वो का धारक और प्रवाहक वही होता है। उसके अशुद्ध होने से अन्य तत्त्व अशुद्ध हो जाते है। उसके अभाव से शरीर में शुष्कता एवं विकलता उत्पन्न होती है, क्योकि रासायनिक द्रव्य शुष्क होने लगते हैं और रक्त की गति शिथिल पड जाती है। जल का प्रभाव मस्तिष्क की क्रिया पर विशेष रूप से पडता है। इसका एक प्रमाण तो यही है कि गर्मी के दिनो में पानी न मिलने से बेचैनी होती है और बुद्धि ठिकाने नही रहती। परिश्रम के बाद पसीने से जब जल का अश शरीर से बाहर

आ जाता है तो थकावट का अनुभव होता है। पानी पीने से चित्त और शरीर दोनो स्वस्थ हो जाते है।

एक प्रसिद्ध रूसी डॉक्टर (डॉ० ई० पाँदोलस्की) ने इस सम्बन्ध मे कुछ उपयोगी बाते लिखी है। उसने लिखा है कि सुचारु रूप से मानसिक क्रिया के सचालन के लिए उचित मात्रा मे पानी की आवश्यकता पड़ती है। बहुत कम या आवश्यकता से अधिक होने पर वह मस्तिष्क के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। इससे मानसिक क्रिया-शक्ति का ह्रास होता है। जब जल का अश विशेष रूप से अधिक या कम हो जाता है तो प्राय चित्त-भ्रान्ति, तन्द्रा और सज्ञा-नाश होता है। जल आवश्यक तत्त्वो को सम्मिश्रित और सयुक्त रखता है। शरीर का जल-अश कम या अधिक होने से मनुष्य की विचारशक्ति अस्त-व्यस्त हो जाती है।[1]

जल को हमेशा शुद्ध रूप में और प्यास के अनुसार लेना चाहिए। प्यास से ही ज्ञात होता है कि शरीर और मस्तिष्क को कब उसकी आवश्यकता है। कभी-कभी कृत्रिम तृषा भी लगती है; जैसे उत्तेजक और चटपटी वस्तुए खाने पर। मास खाने पर भी अधिक पानी की आवश्यकता पडती है क्योकि उससे उत्पन्न 'यूरिक ऐसिड' नामक दूषित पदार्थ को बाहर निकालने के लिए अधिक जल की आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था मे आवश्यकता से अधिक जल पीना पड़ता है, अन्यथा रक्त-विकार उत्पन्न होता है। अधिक जल का कुपरिणाम हम ऊपर लिख चुके हैं। अतएव सर्वोत्तम यह है कि ऐसा आहार खाया ही न जाये जिससे अस्वाभाविक प्यास लगे।

---

1 The efficiently functioning brain also requires proper amount of water—too little or too much is disastrous, not only resulting in decreased mental efficiency, but when this balance is profoundly upset it leads to delirium, stupor and coma Water holds the essential chemicals in solution and in the required amount of concentration A shift in the either direction may result in distorted thinking —Medical Record.

प्रातःकाल दातुन आदि करके पेट-भर पानी अमृत जैसा लाभ करता है। उसको उषा-पान कहते है। वह पेट को शुद्ध करता है, रक्त को शुद्ध एव शान्त करता है और नेत्रो के लिए हितकारी होता है। अनुभवी लोगो का कहना है कि नियमित रूप से उषा-पान करने से शिरोरोग नही होता और केश वृद्धावस्था तक काले रहते है। घाघ ने भी लिखा है :

प्रातकाल खटिया तें उठिके, पियै तुरन्तै पानी।
ता घर कवहू वैद न आवै, बात घाघ कै जानी॥

मस्तिष्क पर आहार का प्रभाव

आहार का प्रभाव मस्तिष्क पर कैसा पडता है, इसको ठीक-ठीक जान लेना चाहिए क्योकि मस्तिष्क द्वारा ही शरीर की सारी क्रियाओ का सचालन होता है। भोजन का क्षणिक और स्थायी प्रभाव मस्तिष्क पर तत्काल पडता है जैसा कि मद्यसेवन के प्रभाव से समझा जा सकता है।

उक्त रूसी डॉक्टर (डॉ० ई० पॉदोलस्की) ने इस विषय में विशेष रूप से अध्ययन करके कुछ महत्त्वपूर्ण बातें प्रकाशित की हैं। उसका कहना है कि भक्षित पदार्थों मे से जो खनिज तत्त्व निकलते हैं, वे मस्तिष्क पर विशेप प्रभाव डालते हैं। स्वस्थ मस्तिष्क के रक्त मे उनका सम्मिश्रण ठीक परिमाण मे मिलता है। परन्तु अस्वस्थ मस्तिष्क में वे अधिक या न्यून मात्रा मे मिलते है। ज्यो-ज्यो वे रासायनिक तत्त्व अपनी स्वाभाविक मात्रा से अधिक या कम होते हैं त्यो-त्यो मनुष्य की चित्त-वृत्ति और बुद्धि-शक्ति मे अन्तर पडता है और प्राय. मनुष्य का सारा व्यक्तित्व ही परिवर्तित हो जाता है। वैज्ञानिक परीक्षा करने पर कई प्रकार के पागलो के मस्तिष्क मे शर्करा-अश आवश्यकता से अधिक पाया गया है। बहुत-से पागलो की परीक्षा से ज्ञात हुआ कि उनके मस्तिष्क मे कैलसियम और फासफोरस अत्यधिक मात्रा में थे। कई ऐसे रोगियो की परीक्षा की गई जिनकी विचार-शक्ति लुप्त हो गई थी और पता

चला कि उनके रक्त में चीनी का तत्त्वांश बहुत कम था। गंधक और लोह तत्त्वों की कमी से अनेक मानसिक क्रियाएं स्तब्ध होती देखी गई हैं। कई प्रकार के मानसिक रोग इनकी अधिकता के कारण उत्पन्न होते पाए गए हैं, क्योंकि गंधक और लोह तत्त्वों के आधिक्य से मस्तिष्क उत्तेजित एवं विक्षिप्त हो जाता है।

अधिक अम्ल अथवा क्षार-विशिष्ट पदार्थों से मस्तिष्क बहुत जल्दी प्रभावित होता है। मधुमेही के मस्तिष्क में अम्लरस[1] का प्राचुर्य मिलता है। अपस्मार, मानसिक व्याकुलता और संज्ञाहीनता के विकार प्राय: क्षार द्रव्यों की प्रचुरता से उत्पन्न होते हैं। कैलसियम और फास्फोरस दोनों उचित मात्रा में मज्जा-तंतुओं को बल, तेज और स्फूर्ति देते हैं। यह कम हो जाते हैं तो आलस्य और जड़ता के लक्षण प्रकट होते हैं। और उन्हीं के बढ़ने से विचारों में चंचलता, झुंझलाहट होती है तथा विकलता का अनुभव होता है। लोह तत्त्व से विचारों में दृढ़ता आती है और मस्तिष्क पुष्ट होता है। बच्चों के ज्ञान-तंतुओं में अवस्था के अनुसार लोह-अंश वयस्क की अपेक्षा कम होता है, इसलिए वे चंचल और विवेकहीन होते हैं। ज्यों-ज्यों आहार द्वारा वे लोह-अंश प्राप्त करते हैं, त्यों-त्यों उनका मस्तिष्क पोषित होता है।

हरी शाक-भाजी और फल खाने से मन क्यों साफ हो जाता है, यह ऊपर के विवरण से समझा जा सकता है। उनमें खनिज अंश प्रचुर मात्रा में होता है जो मस्तिष्क के अनुकूल पड़ता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि खनिज द्रव्य अन्य द्रव्यों की भांति पाचन-क्रिया से रस के रूप में परिवर्तित होकर तब रक्त में नहीं मिलते। वे सीधे रक्त में मिश्रित हो जाते हैं इसलिए उनका प्रभाव जल्दी दिखलाई पड़ता है।

इस प्रसंग में दो-एक अन्य जानने योग्य बातों का उल्लेख हम इसलिए करेंगे कि उनके विषय में लोगों में कुछ भ्रम है। पहली बात तो यह है कि ज्ञानोत्कर्ष के लिए कौन-सा यौगिक पदार्थ परमावश्यक है,

---

1. Acid

इसका अभी तक ठीक-ठीक पता नही चला है। लोगो मे यह विश्वास फैला है कि मछली में फासफोरस का अश बहुत होता है, इसलिए वह मस्तिष्क-शक्ति की वृद्धि के लिए उत्तम खाद्यपदार्थ है। परन्तु वैज्ञानिक परीक्षा से यह असिद्ध प्रमाणित हुआ है। अग्रेजी विश्वकोष मे इस सम्बन्ध मे ऐसा लिखा है।[1]

दूसरी बात चावल के सम्बन्ध मे है। चावल मस्तिष्क-पोषक होता है। विश्व-प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक डॉक्टर एन० आर० घर ने २ अगस्त, १९४८ को कलकत्ते में एक लेक्चर दिया था। उसमे उन्होने बताया कि प्रोटीन मे जो ऐमिनो एसिड[2] नामक पदार्थ होता है, उसके दो भेद होते हैं---एक विशिष्ट, दूसरा सामान्य[3]। विशिष्ट प्रकार का द्रव्य शरीर तथा मस्तिष्क के विकास और पोषण के लिए नितान्त आवश्यक होता है। दूध, मछली और अण्डे आदि के प्रोटीन में एमिनो एसिड का विशिष्ट अश ही अधिक होता है। गेहूँ में यद्यपि चावल की अपेक्षा प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है, परन्तु चावल के प्रोटीन में एमिनो एसिड का विशिष्ट भाग गेहू की अपेक्षा अधिक होता है। घर महोदय के मत से पूर्वीय देशो के बौद्धिक विकास का प्रधान कारण चावल में प्राप्त होने वाला उच्चकोटि का प्रोटीन ही है और इसलिए इधर चावल की खेती विशेष रूप से की जाती है। चावल से भड़कनेवाले लोग चावल खाकर देखे; सम्भव है, ज्ञान तीव्र होने पर उनको पता चले कि चावल के विषय में उनका जो भ्रम था वह चावल न खाने के कारण ही था।

आहार के प्रभाव के सम्बन्ध मे यह बात सर्वमान्य है कि उसके अनुसार शरीर बनता है। मस्तिष्क और साथ ही स्वभाव और चरित्र भी

---

1. What compounds are especially concenred in intellectual activity is not known. The belief that fish is especially rich in phosphorus and valuable as a brain food has no foundation in observed fact. —Encyclopaedia Britannica.

2. Amino acid

3. Essential, Non-Essential.

बनता है; क्योकि स्वभाव, चरित्र एव मस्तिष्क शरीर से ही सम्बन्ध रखते हैं। सात्त्विक आहार की महिमा प्राचीन विद्वानो ने इसीलिए गाई है। इसमे सन्देह नही कि जो जैसा खाता है, वैसा ही बन जाता है। किसी सस्कृत नीतिकार न कहा है कि जिस प्रकार दीपक अन्धकार की कालिमा का भक्षण करके कज्जल की कालिमा ही पैदा करता है, उसी प्रकार मनुष्य भी जैसा खाता है वैसा ही अपने ज्ञान को प्रकट करता है।

स्वास्थ्य के अन्य सहायक

अब आहार के अतिरिक्त स्वास्थ्य के अन्य प्रमुख सहायको को लीजिए। अकेला भोजन ही जीवन-सर्वस्व नही होता। आयु और आरोग्य के लिए आहार के समान अथवा कुछ अशो मे उससे भी अधिक उपयोगी कुछ अन्य वस्तुएं भी हैं। उनमें से वायु सर्वप्रमुख है। भोजन के बिना तो मनुष्य दो-एक महीने तक जीवित रह सकता है, परन्तु वायु के बिना कुछ मिनट भी नही जी सकता। समस्त प्राकृतिक जीवन वायु द्वारा ही चलता है। शास्त्र का यह वचन सर्वथा सत्य है :

वायुना वै गौतम सूत्रेणाऽयञ्च लोकः परश्च लोकः
सर्वाणि च भूतानि सम्बद्धानि भवन्ति।

हे गौतम! वायु धागे की तरह है, जैसे धागे मे मणिया पिरोई रहती है, वैसे ही समस्त भूत वायु-सूत्र मे गुंथे रहते हैं।

वायु का साधारण धर्म है प्रकृति को प्रगतिशीलता देना और सर्वगामी, सर्वात्मा होकर जीवन को स्पन्दित करना तथा वस्तुओ को परिवर्तित करना। उसका दूसरा मुख्य धर्म है जीवो मे जीवनाग्नि उद्दीप्त करना। शास्त्रो ने वायु को अग्नि का तेज और अग्नि की आत्मा कहा है। आधुनिक विज्ञान भी उसको दहनात्मक मानता है क्योकि उसके मुख्य तत्त्व ऑक्सीजन से ही दहन-क्रिया सम्पन्न होती है। वही प्राणवायु है। तीसरा वायु-धर्म है धातुवर्द्धन और पोषण। उसके नाइट्रोजन नामक अश से ही धातु-तन्तुओ का निर्माण एव सवर्द्धन होता है। ऑक्सीजन की

दहनात्मक क्रिया पर नाइट्रोजन ही नियन्त्रण रखता है।

शरीर के साथ वायु का सम्बन्ध

स्वस्थ दशा मे मानव शरीर को प्रतिघण्टे लगभग चार गैलन ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। उसका अधिकांश भाग श्वास द्वारा भीतर जाता है, शेष रोम-छिद्रो से। फेफड़े ऑक्सीजन को ग्रहण करके उसको रक्त में मिश्रित करते हैं। उसी से हृदय का कार्य चलता है। ज्यो-ज्यो शरीर की शक्ति व्यय होती है, त्यो-त्यो अधिक प्राणवायु की आवश्यकता होती है और वह फेफडो द्वारा सुलभ होती है। ऑक्सीजन से दैहिक-ताप उत्पन्न होता है और उसी से पाचन-क्रिया चलती है। उसके द्वारा रक्त को नवजीवन मिलता है, शरीर में शक्ति, स्फूर्ति और कान्ति की वृद्धि होती है तथा शरीर में उत्पन्न विषो का नाश होता है। वायु के ताप से भीतर पक्वाशय मे जब खाद्य पदार्थों का परिपाक होता है तो उसमे से कार्बन डाइग्राक्साइड नामक एक विषाक्त गैस निकलती है। शरीर में कार्बन (अंगार) प्रचुर मात्रा में रहता है। उसके साथ ऑक्सीजन का सयोग होने से वे जलते हैं और यह गैस पैदा होती है, प्रश्वास से वह बाहर निकलती है। श्वास से जब फेफडे मे ऑक्सीजन गृहीत होती है तभी भीतर से कार्बन डाइग्राक्साइड बाहर निकलती है।

कार्बन डाइग्राक्साइड

कार्बन डाइग्राक्साइड के विषय मे कुछ जानना आवश्यक है। यह वही गैस है जो प्राय. कोयले के जलाने पर निकलती है। इसमे इतना विष होता है कि कभी-कभी जो लोग बन्द कमरो मे अगीठी जलाकर सोते हैं, वे प्रात.काल मरे हुए या बेहोश पाए जाते है। प्रकृति में यह गैस गन्दी वस्तुओ की सड़न से, शहरो की गन्दी नालियो से, दलदल, पुराने कुओ और मिलो-फैक्ट्रियो के धुएं से उत्पन्न होती है। कोई भी वस्तु जब सड़ने लगती है तो यह उसमें से प्रचुर मात्रा में निकलती है। कभी-कभी बन्द कमरो मे पके फल रखकर सोने से रात मे उनकी सडन से लोग बेहोश हो जाते है या मर जाते है।

यह घातक गैस होती है। शरीर मे सचित होकर यह व्याधि ही नही, मृत्यु का भी कारण होती है। तीस वर्ष की आयु तक पुरुष के प्रश्वास से यह अधिक मात्रा में निकलती है। फिर क्रमश. घटने लगती है। स्त्रियो के प्रश्वास मे यह कम मात्रा में होती है। दिन मे यह अधिक निकलती है और वायुमण्डल में आकर मिलती है; सध्या मे कम होती है। सूर्य-किरणो का स्वाभाविक गुण होता है कि वे सब वस्तुओ में से कार्बन डाइआक्साइड को खीचकर बाहर करती है। रात्रि मे बाहर का ताप कम रहने से और शारीरिक क्रियाओ की शिथिलता के कारण यह प्रश्वास से भी कम निकलती है और आधी रात को तो बहुत ही कम हो जाती है। प्रात.काल वायुमण्डल मे यह गैस कम मात्रा मे रहती है क्योंकि एक तो मनुष्य के प्रश्वास से कम निकलती है, दूसरे सूर्य-ताप के प्रभाव के कारण वह अन्य वस्तुओ से निकलकर वायु मे व्याप्त नही नही होती। प्रभातकालीन वायु का महत्त्व इसलिए अधिक है कि उसमे ऑक्सीजन प्रचुर मात्रा मे मिल जाता है जिसके कारण विशेष स्फूर्ति और शक्ति मिलती है।

प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार वनस्पतिया इस विष को पीकर जीवो के लिए ऑक्सीजन रूपी अमृत दान करती हैं। उनका यह स्वाभाविक गुण ही है कि वे स्वय खाद खाकर फल उत्पन्न करती है। इसलिए जो लोग खुले स्थानो मे वनस्पतियो के सम्पर्क में रहते है वे विशेष चैतन्य रहते हैं क्योंकि उनको प्राण-वायु अधिक मिलती है। गाववालो की परिश्रम-शक्ति और जीवन-शक्ति इसी कारण से प्रबल होती है। शहरो मे वनस्पतियो का अभाव होता है, बहुत-से लोग सकुचित स्थानो मे रहते हैं और जनसख्या की अधिकता से एक सीमित क्षेत्र में कार्बन डाइआक्साइड प्रश्वास द्वारा अत्यधिक मात्रा मे निकलती है। दूसरे नालियो की गन्दगी, मिल के धुए आदि से यह और भी बढती है और उस हलाहल को पीने वाले शिव—पेड—वहा नहीं रहते, इससे यह विषाक्त गैस वहां निरन्तर व्याप्त रहती है। लोगो की श्वास-वायु मे इसी की मात्रा

अधिक होती है । परिणामतः फेफडे दुर्बल हो जाते है। इस रहस्य को आप इस रूप मे समझिए —बहुत-से आदमी जब किसी एक सकीर्ण कमरे मे साथ सोते हैं तो प्रात.काल सुस्त या अस्वस्थ हो जाते हैं क्योकि वे शुद्ध वायु नही बल्कि रात-भर एक-दूसरे का प्रश्वास पिए रहते हैं। मुह ढक-कर सोनेवालो की भी यही दशा होती है क्योकि वे अपनी ही निकाली हुई दूषित वायु को रात-भर पिए रहते है । जब बाहर से ऑक्सीजन नही मिलता तो स्वभावत. भीतर कार्बन डाइ आक्साइड सचित रहता है। प्राकृतिक नियम है कि जब फेफडे मे ऑक्सीजन पुलिस की तरह पहुंचता है तभी दूषित वायु चोर की तरह भागती है । प्राण-वायु के न पहुचने पर नाश-वायु ही रक्त मे मिश्रित होती है । यह स्मरण रखना चाहिए कि मासपेशियो के विशेष सचालन, ज्वर-ताप की अधिकता और मनोवेग की तीव्रता से शरीर के भीतर कार्बन डाइआक्साइड की उत्पत्ति अधिक होती है । इसलिए उसको निकालने के लिए परिश्रमी, रोगी और भावुक मनस्ताप से पीडितो को स्वच्छ वायु का सेवन नितान्त आवश्यक होता है।

वैज्ञानिक परीक्षा से ज्ञात होता है कि कार्बन डाइआक्साइड का कुप्रभाव मस्तिष्क पर विशेष रूप से पडता है। इसके आधिक्य से मस्तिष्क पर थकावट होती है, मन की एकाग्रता नष्ट होती है और चित्त अस्थिर तथा विकल हो जाता है। सज्ञाहीनता, स्नायवीय दुर्बलता, शिरोरोग इसके मुख्य परिणाम हैं। मुह ढककर सोने पर जो सास फूलती है और बेचैनी होती है, वह इसीलिए । दम घुटने पर सज्ञाहीनता के लक्षण ही पहले प्रकट होते है क्योकि बाहर से ऑक्सीजन न मिलने पर भीतर कार्बन डाइआक्साइड फैल जाता है ।

मस्तिष्क पर ऑक्सीजन का प्रभाव

ऑक्सीजन ही ज्ञान-ततुओ का प्राण है। एक अनुभवी डॉक्टर (डॉ० ई० पॉदोलस्की) ने लिखा है कि जहा तक बुद्धि के चैतन्य का

सम्बन्ध है, ऑक्सीजन एक परमावश्यक तत्त्व है।[1]

आधुनिक ढग से इसकी वैज्ञानिक परीक्षा की गई है। सन् १८६२ मे इसकी परीक्षा के लिए दो प्रसिद्ध वैज्ञानिक ग्लैशर और काक्सवेल बैलून द्वारा उड़कर ४८ मिनट में २८,००० फुट की ऊचाई पर गए थे। वहाँ हवा का दबाव कम होने के कारण ऑक्सीजन बहुत कम मात्रा में उपलब्ध था। परिणामत. ग्लैशर महोदय की ज्ञान-शक्ति तत्काल लुप्त हो गई। वे अपनी घडी देखकर उससे समय भी नही बता सके थे। उनकी जडता का अनुमान करके गुब्बारे को कुछ नीचे उतारा गया और ऑक्सीजन पाते ही उनकी बुद्धि फिर सचेत हो गई।

दो अन्य वैज्ञानिको ने इसकी परीक्षा दूसरे ढग से की। वे लोह-निर्मित एक छोटी-सी कोठरी मे घुसे जिसमे यन्त्र की सहायता से हवा का दबाव उतना रखा गया था जितना कि २४,५०० फुट की ऊचाई पर होता है। परिणाम यह हुआ कि एक तो शीघ्र ही किंकर्तव्यविमूढ हो गया। उसकी लिखने-पढने और वस्तुओ को पहचानने की क्षमता नष्ट हो गई। कोठरी की छोटी खिड़की से देखने पर उनकी विमूढता का पता चलता था। उनसे कोई भी बात पूछी जाती थी तो वे यही कहते थे कि बस, हमे ऐसा ही पडे रहने दो। उनका मानसिक विकास पूर्णतया रुक गया था। इसके बाद हवा का दबाव बढाया गया। वे कुछ चैतन्य हुए। उनमें से एक ने पास मे रखे हुए शीशे को उठाया पर उसको इतना ज्ञान नही था कि किस प्रकार उसमे अपना मुह देखा जा सकता है। वह उसके पीछे के भाग में अपनी मुखाकृति देखने की चेष्टा करने लगा। जब हवा का दबाव बढाकर १४,५०० फुट के बराबर लाया गया तो ऑक्सीजन की उचित मात्रा मिलने से उनकी चेतनाशक्ति पुन: सजग हो गई, परन्तु दोनो को यह याद नही था कि इस बीच मे उन्होने क्या-क्या सोचा था और कैसे बेसिर पैर के काम किए थे। ऑक्सीजन न मिलने से उनकी विचार-

---

1 Oxygen is the most important element in the brain as far as intelligence is concerned —Medical Record.

शक्ति और स्मृति दोनो लुप्त हो गई थी।

उपर्युक्त उदाहरणो से समझा जा सकता है कि प्रचीन ऋषियो ने उषाकाल को क्यो इतना महत्त्व दिया था। सवेरे ऑक्सीजन अधिक से अधिक मात्रा मे सर्वसुलभ रहता है, इसलिए उस समय चिन्तन करने से मस्तिष्क प्रौढ होता है और विचारशक्ति तीव्र होती है। पूर्वकाल मे प्रभात दिन का सुवर्णकाल था। उसका लोग, मुख्यतः विद्यार्थीगण और बुद्धि-व्यवसायी जन, पूर्ण उपयोग करते थे। परिणाम भी सुन्दर ही होता था। अब इसका उल्टा होता है। प्रात काल लोग व्यर्थ गवाते है और दस बजे जब वायुमण्डल विशेष दूषित हो जाता है तब वे बुद्धि का उपयोग करने निकलते हैं। फलतः उनकी बुद्धि थक जाती है।

शुद्ध वायु के ये गुण स्पष्ट है—इससे श्वास-प्रश्वास का क्रम ठीक चलता है, शरीर की कार्य करने की शक्ति सचालित होती है। मन में उत्साह तथा चेतना की वृद्धि होती है, चित्त-प्रवृत्ति ठीक रहती है, धातु और इन्द्रियो की पुष्टि होती है, शरीर के तत्त्वों को गति मिलती है, हृदय, रक्त और सम्पूर्ण जीवन का प्रवाह नियमित रूप से चलता है।

वायु-सेवन

शुद्ध वायु का सेवन श्वास से तथा रोम-कूपो से भी करना चाहिए। रोम-कूपो से वायु ग्रहण करने की उत्तम विधि है, उनको स्वच्छ और खुला रखना। स्नान से रोम-छिद्र खुल जाते है, तब उनके द्वारा शुद्ध वायु अन्दर जाती है और पसीने के रूप में अन्दर का दूषित द्रव्य भी बाहर आता है। इसलिए स्नान करना नितान्त आवश्यक है। यथासम्भव शरीर को खुला रखना चाहिए अथवा हल्के कपड़े पहनने चाहिए। इससे वायु का स्पर्श ठीक होता है। इस स्पर्श का महत्त्व इसी से समझा जा सकता है कि दिन-भर के परिश्रम के बाद खुले मैदान मे जाते ही भीतर प्रसन्नता, स्फूर्ति की एक लहर उमड़ पड़ती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यह लहर प्राकृतिक हवा से ही उमडती है, पखे की कृत्रिम हवा से नही। पखे की हवा वात-प्रकोपक होती है।

जब स्पर्श-मात्र से स्वाभाविक वायु शरीर को इतना चैतन्य देती है तो भीतर रक्त से मिश्रित होकर तो वह अवश्य ही विशेष गुण करती होगी। वास्तव में, जब शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर का सेवन किया जाता है तो सम्पूर्ण स्वास्थ्य उद्दीप्त होता है। सुवासित वायु ओषधियो के तत्त्व और पुष्पो का गन्ध-सार लेकर चलती है ; इसलिए वेद ने इसकी स्तुति करके कहा है कि हे वायु ! तुम्ही विश्व के लिए ओषधि हो, तुम देवताओ के दूत बनकर जाओ : 'त्व हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ।' बहुत-सी व्याधिया केवल वायु-परिवर्तन से ठीक हो जाती हैं और इसके लिए लोग स्वास्थ्यप्रद स्थानो मे जाते है। सर्वसाधारण के लिए यही सुसाध्य है कि वे प्रात काल खुली जगह मे अधिक से अधिक वायु-सेवन करें और दिन मे भी अशुद्ध वायु से बचें। अधिक से अधिक का अर्थ यह नही कि आधी मे खड़े वायु-पान करें। उसका अभिप्राय यह है कि शुद्ध वायु से फेफड़े को स्वच्छ करें। खड़े होकर वायु-सेवन ठीक-ठीक नही हो सकता, इसलिए टहलकर फेफड़ो को अधिक क्रियाशील बनाना चाहिए जिससे वे शुद्ध वायु ग्रहण करके भीतर की दूषित वायु बाहर फेंक सकें।

स्वरोदय-विज्ञान

इस प्रसग मे स्वरोदय-विज्ञान का परिचय देना अनुचित न होगा। श्वास द्वारा किस क्रम से वायु शरीर में धारित होती है तथा उसका क्या प्रभाव शारीरिक क्रिया पर पड़ता है, यही इस प्राचीन भारतीय विज्ञान का मुख्य विषय है। कई लोगो ने इसकी सत्यता की परीक्षा की है। इस शास्त्र के अनुसार सूर्योदय के समय अढ़ाई-अढ़ाई घड़ी के क्रम से एक-एक नासिका-छिद्र से सास बाहर आती-जाती है। दिन-रात में बारह बार एक छिद्र से कार्य होता है और बारह बार दूसरे से, और कभी-कभी कुछ देर दोनो से। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को सूर्योदय के समय स्वस्थ व्यक्ति का बाया नासिका-छिद्र श्वास-प्रश्वास का काम करता है। कृष्ण-पक्ष की इन्ही तिथियो मे और अमावस्या को दाहिना छिद्र कार्यारम्भ

करता है। यदि इसमे व्यतिक्रम हो तो समझना चाहिए कि शरीर में गुप्त या प्रकट रूप से कोई व्याधि है। बाईं नाक से श्वास चलते समय स्थिर कार्य करना चाहिए और दाहिनी नाक के समय कठिन कार्य तथा दोनो के चलते समय चिंतन-ध्यान आदि। कोई रोग होने पर उस समय जो नासा-छिद्र कार्य करता हो उसको कपडे से बन्द कर देना चाहिए। इससे शीघ्र ही दूसरा छिद्र खुल जाता है और उधर का फेफडा, जिसकी निष्क्रियता के कारण विकार हुआ रहता है, ठीक कार्य करने लगता है। सिरदर्द में जिधर की श्वास चलती हो, उसको बन्द कर देने से सचमुच लाभ होता है, इसको हम देख चुके है। खाते समय दाहिना श्वास चलने से भोजन ठीक-ठीक पचता है। भोजन के बाद भी दस-पन्द्रह मिनट दाहिनी नाक का चलना हितकर होता है। इसलिए खाने के बाद बाईं करवट लेटने का नियम बताया गया है, क्योकि बाईं करवट लेटने से दाहिनी नाक अपने-आप खुल जाती है, ऐसा प्राकृतिक नियम है। दाहिनी करवट लेटने से बाईं नाक काम करती है। उक्त शास्त्र के अनुसार जिधर की नासिका से श्वास चलती हो, उधर के अगो द्वारा किया हुआ तात्कालिक कार्य अधिक सुचारु रूप से सम्पन्न होता है। होठो को ढीला करके धीरे-धीरे वायु खीचकर उसको नाक से धीरे-धीरे छोडने से बडा लाभ होता है। दो-चार बार इसका अभ्यास करने से रक्त, अजीर्ण और कफ-विकार ठीक होते है।

प्राणायाम

श्वास-प्रश्वास के प्रसग मे प्राणायाम की चर्चा कर देना भी आवश्यक है। प्राणायाम फेफड़े का व्यायाम ही नही, यह आयुर्बलवर्धक, रक्त-शोधक, मस्तिष्क-पोषक एव शक्ति-स्फूर्तिदायक एक श्रेष्ठ क्रिया भी है। वह योगियो के उपयोग का ही नही प्रत्येक स्वास्थ्य-प्रेमी व्यक्ति के लिए एक उपयोगी साधना है।

प्राणायाम का महत्त्व समझने के लिए सर्वप्रथम यह जानना चाहिए कि आयु के साथ श्वास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आयु की नाप श्वास से

ही होती है। एक दिन में, २१,६०० बार श्वास-प्रश्वास की क्रिया होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि इतनी सासों मे एक दिन का जीवन गत होता है। एक वर्ष मे इसकी सख्या ७७,७६,००,००० होती है। यदि कुछ समय प्रतिदिन श्वास को रोका जाए तो उसका अर्थ यह होगा कि उतनी देर जीवन का व्यय न होगा और एक वर्ष से कुछ अधिक समय मे उतनी श्वास (और उससे सम्बद्ध आयु) का व्यय होगा, जितना स्वाभाविक दशा मे एक ही वर्ष में होता है। इस प्रकार प्राणायाम से आयु बचती है अथवा आयु का क्षय घटता है। दूसरी बात यह है कि इससे फेफड़े शुद्ध वायु से भर जाते हैं और उनके रोगाणु उसके द्वारा मर जाते हैं। फेफडों के शुद्ध होने से शरीर का रक्त शुद्ध होता है और रक्त की शुद्धता से ही स्वास्थ्य बनता है।

प्राणायाम का प्रत्यक्ष लाभ तो यह है कि उससे शरीर की शक्ति, विचारशक्ति और मानसिक स्थिति दृढ होती है। रोग मे, क्रोध में, अधीरता मे तथा भय आदि किसी भी शारीरिक या मानसिक अशक्तता मे सास की गति बढ जाती है। इसका अर्थ यह है कि सास का बढना भीतर की उत्तेजना या अशक्तता का द्योतक होता है। यदि इसका उलटा किया जाए, अर्थात् सास को रोककर उसको स्थिर करने का अभ्यास किया जाए तो निश्चय ही उत्तेजना और अशक्तता का हनन होगा। इसको तो निजी अनुभव से देखा जा सकता है कि चित्त जब उद्विग्न रहता है तो सास का वेग बढ़ जाता है और शान्त रहने पर श्वास मन्द-मन्द चलती है। इससे यह सहज मे समझा जा सकता है कि मानसिक स्वस्थता पर श्वास-सयम का प्रभाव अवश्य पड़ेगा। प्राणायाम मे एक और प्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि उसकी साधना से मन की एकाग्रता बढती है। क्योंकि श्वास रोकने से जब मन की उत्तेजना शमित होती है तो उसकी चचलता भी रुकती है। इससे व्यक्तित्व सचेत होता है और बुद्धि स्थिर एव विशुद्ध होती है।

एक जर्मन यहूदी डॉक्टर ने प्राणायाम से सम्बन्ध रखने वाली एक

अन्य क्रिया को महत्त्व दिया है। उसका कहना है कि श्वास को बाहर निकालकर फेफड़ो को वायु-शून्य कर देना चाहिए और अधिक से अधिक समय तक उनको इस अवस्था में रखना चाहिए। ऐसा करने से हवा न मिलने के कारण भीतर के हानिकर जीवाणु मर जाते है। उसका कहना है कि कफ के रोगो (दमा, खासी, सर्दी आदि) में इससे आश्चर्य-जनक लाभ होता है। यह बात युक्ति-सम्मत प्रतीत होती है।

ब्रह्मचर्य

स्वास्थ्य का एक प्रमुख सरक्षक शरीर का वीर्य भी है। अच्छा आहार खाकर और खूब ऑक्सीजन पाकर भी यदि वीर्य-रक्षा न की जाए तो स्वास्थ्य कभी ठीक नही रह सकता। शरीर के समस्त ओज[1] का धारक-विस्तारक वीर्य ही होता है। उसी से पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा और वृद्धि होती है और पुरुषार्थ ही जीवन का सच्चा सुख है। वीर्य की महत्ता का इससे प्रबल प्रमाण क्या होगा कि उसी से जीवन-उत्पत्ति होती है। वह मनुष्य को बनानेवाला ब्रह्म और प्राणदायक तत्त्व होता है। ऐसी ब्रह्मशक्ति शरीर मे रहकर निश्चय ही आत्मशक्ति की वृद्धि करती होगी। वीर्य उस वस्तु को कहते हैं जिसमे विशेष कार्य करने का गुण हो अर्थात् जो किसी वस्तु का प्रधान कार्यकारी गुण है : 'प्रभूत-कार्यकारिणी गुणो वीर्यम्' (सुश्रुत)। मानव-शरीर का प्रधान तत्त्व वीर्य ही होता है। वही शरीर को पुष्टि देता है ; रोगो के बाहरी आक्रमण से बचाता है, मन में धैर्य, शान्ति, उत्साह और विक्रम की भावना भरता है। हम प्रत्यक्ष देखते है कि दुराचारियो की अपेक्षा सयमी लोग स्वभावतः धैर्यवान्, उत्साही, मेधावी, मनस्वी और तेजस्वी होते है। क्लीबो या कामोत्कट व्यक्तियों को ऐसा होते नही देखा जाता। इससे वीर्य की ओजस्विता सिद्ध होती है।

स्वस्थ होने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। उसका यह अर्थ नही कि बालब्रह्मचारी बनकर बैठा जाए। यह असम्भव एव अस्वा-

---

1 Vitality

भाविक है। आवश्यकता से अधिक वीर्य-सचय से स्वास्थ्य को हानि पहुचती है। ससार की कोई भी शक्ति जब उपयोग में नही लाई जाती तो वह स्वय नष्ट होती है अथवा सलग्न वस्तु को नष्ट करती है। वीर्य का उपयोग अवश्य करना चाहिए पर आवश्यकतानुसार। उसको शरीर की मुख्य सम्पत्ति मानकर सम्पत्ति ही की तरह अच्छे काम मे लगाना चाहिए। इसी को व्यावहारिक जगत् में ब्रह्मचर्य कहते हैं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातो को ध्यान में रखना चाहिए :

१ 'अन्नाद्रेत सभवति' (सुश्रुत)—वीर्य अन्न से बनता है। इसलिए उसका एक नाम अन्न-विकार भी है। आहार की शुद्धता से ही शुद्ध वीर्य बनता है और आहार की शुद्धता से ही वह स्वाभाविक अवस्था में रहता है। उत्तेजक पदार्थ लेने से वह विकृत हो जाता है और परिणामस्वरूप चित्त में चंचलता और शरीर मे विकार की उत्पत्ति होती है। इसलिए यथासम्भव शुद्ध और सरल आहार लेना चाहिए।

२. मन की वासनाओ से वीर्य-दशा प्रभावित होती है। मन में वासना उठने पर कामोत्तेजना होती है। यदि उस समय उसको रोका जाए तो शरीर को क्षति पहुचती है और यदि बार-बार वासनाओ के उठने पर उसका व्यय किया जाए तो शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है। इसलिए ब्रह्मचर्य-रक्षा के लिए मानसिक सयम आवश्यक है।

३. रक्त दूषित होने से या कम होने से वीर्य भी दूषित तथा कम हो जाता है। व्यभिचार आदि से जब रक्त दूषित होता है तो वीर्य भी सदोष हो जाता है। आहार की कमी आदि से जब रक्त की कमी होती है तो वीर्य-रचना भी कम होती है। दोनो दशाओ मे शरीर की स्थायी शक्ति का ह्रास होता है। अतएव चरित्र की शुद्धता तथा आहार-सयम का ध्यान रखना चाहिए।

४. वीर्योत्पादक अगो से मस्तिष्क का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इसलिए उसको सुव्यवस्थित, सबल और स्वस्थ रखना आवश्यक है। वैज्ञानिक परीक्षा से देखा गया है कि काम-ग्रथियो के नष्ट होते ही उत्साह,

साहस, धैर्य, चैतन्य और पौरुष-बल समाप्त हो जाते है। यह भी देखा गया है कि जर्जर काम-ग्रथियो को पुन: सजीव बनाने या बदल देने से वृद्धों के मन में भी युवावस्था की तरगें आ जाती हैं और वे शरीर से भी पुरुषार्थी बन जाते हैं। जिनके काम-यत्र निर्बल होते हैं वे युवावस्था मे भी वृद्ध का-सा आचरण करते है। काम-अंगो की सशक्तता, सुदृढता और उनकी तृप्ति का मानव-स्वभाव और विचारधारा पर अपरम्पार प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध मे यह जान लेना चाहिए कि जननेन्द्रिय और मस्तिष्क का सीधा सम्बन्ध है। रीढ से लगी हुई एक मोटी नस होती है जिसको वीर्य-प्रवाहिनी शिरा कहते है। वह शिरा रीढ के साथ मस्तिष्क से जुडी रहती है। इसलिए जननेन्द्रिय के रोगग्रस्त, विकृत या अशक्त होने से मस्तिष्क भी वैसा ही हो जाता है। साथ ही मस्तिष्क की अवस्था का पूर्ण प्रभाव इस अग पर पड़ता है। अतएव इस शक्ति-उत्पादक अग का रक्षण एव उपयोग सावधानी और प्राकृतिक ढग से करना चाहिए।

५. अति सर्वत्र वर्जयेत्—इस सिद्धान्त का पालन यदि किसी कार्य में करने की आवश्यकता है तो वह भोग-विलास के सम्बन्ध मे। अधिक भोग-विलास से अधिक वीर्य-क्षय के कारण, रोग ही नही राजरोग(क्षय) तक हो जाता है। व्यभिचार से उपदश होता है जिसमें शारीरिक यत्रणा तो होती ही है, मानसिक यत्रणा और भी भयकर होती है। पागलपन का तो यह एक प्रमुख कारण होता है क्योकि सिफलिस (उपदश, गर्मी) से मस्तिष्क के सूक्ष्म ततु बिलकुल बेकार हो जाते है। मानसिक विकार में इसीलिए अनुभवी डाक्टर रक्त-परीक्षा द्वारा पहले ही देख लेते हैं कि कही उसमे उपदंश के कीटाणु तो नही हैं। यदि परीक्षा न की जाए और वास्तव में पागल व्यक्ति उपदश-पीडित हो तो कोई दवा देने से उसको लाभ नही होता।

शरीर पर मानसिक दशा का प्रभाव

आहार आदि पर मन का प्रभाव क्या पड़ता है, इसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके है। स्वस्थचित्त स्वास्थ्य के लिए कहां तक और

किस प्रकार सहायक होता है, यहा हम इसपर विचार करेंगे। विस्तार के भय से हम इस विषय को निम्नलिखित भागो मे विभाजित करके देखेंगे कि किन-किन मानसिक वृत्तियो का प्रभाव शरीर के स्वास्थ्य पर कैसा पड़ता है।

मनोयोग

मनोयोग के विना स्वास्थ्य-निर्माण कभी नही हो सकता। किसी आहार या व्यायाम में मन न लगे तो उसका पूर्ण प्रभाव शरीर पर नही पड़ता। स्वास्थ्य-सुधार के लिए सुवह-शाम मन लगाकर थोड़ा भी टहलना लाभदायक दिखलाई पडता है। पोस्टमैन लोग दिन-भर घूमते है, पर उससे उनका स्वास्थ्य औरो की अपेक्षा अच्छा नही प्रतीत होता, क्योकि वे स्वास्थ्य-सुधार की भावना लेकर नहीं टहलते।

मनोयोग से इच्छा-शक्ति दृढ होती है और इच्छा-शक्ति वडे से वडे चमत्कार कर सकती है। मनुष्य जव इच्छा कर लेता है कि उसको स्वस्थ होना है तो वह अवश्य स्वस्थ बन जाता है। शक्तियो का सग्रह और योग मनोयोग से ही होता है।

विश्वास

मन के विश्वास का प्रभाव स्वास्थ्य पर कई प्रकार से पडता है। आत्मविश्वास से स्नायु-मण्डल स्वभावतः प्रवल हो जाते हैं और उसकी क्षीणता से इन्द्रियां क्षीण हो जाती हैं। आत्मविश्वास से शरीर मे अति-रिक्त बल की अनुभूति होती है और उसके अनुसार शरीर की बल-वृद्धि होती है। कई प्राचीन महावीरों के सम्बन्ध में जो यह कहा जाता है कि उनमे दस हज़ार हाथियों का वल था, उसका अर्थ हम यह समझते है कि उनमे उनका मनोवल था। आत्मविश्वास से एक व्यक्ति कई व्यक्तियो से अधिक वलवान् होता देखा जाता है।

जिनमे आत्मविश्वास नही होता वे कई प्रकार की कल्पित व्याधियों से पीडित देखे जाते है। ऐसी वीमारियां ओषधियो से नही, युक्ति से मन का सन्देह मिटाने से ही मिटती है।

मन में झूठा विश्वास जमने से कभी-कभी आत्मविश्वासी लोग सच-मुच बीमार हो जाते हैं। इसकी परीक्षा कुछ अमरीकन डॉक्टरो ने इस प्रकार की थी। एक बिलकुल चगे आदमी से एक डॉक्टर ने कहा, 'आज आप कुछ ढीले लगते हैं।' कुछ देर बाद दूसरा डॉक्टर पूर्व-योजना के अनुसार उसको मिला और कहा, 'क्या मामला है, आपका चेहरा उतरा है, आखें लाल हैं और आप अस्वस्थ लगते है।' बाद मे तीसरा डॉक्टर मिला। उसने कहा, 'आपको तो बुखार मालूम देता है, घूमिए-फिरिए नही।' तीनो की बातो से वह स्वस्थ व्यक्ति अपने को सचमुच बीमार समझने लगा और थर्मामीटर मे देखा गया तो उसको काफी टेम्परेचर हो आया था।

मन के विश्वास का कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका एक और दृष्टान्त किसी विलायती पत्र में छपा था। एक बच्चे को विचित्र प्रकार का सूखा रोग हो गया था। निदान से कोई कारण ज्ञात नही हुआ। तब एक अनु-भवी डॉक्टर ने एक विचित्र औषधि बताई। उसने कहा कि इस बच्चे को हर तीसरे घटे प्यार किया जाए। ऐसा किया गया और बच्चा मोटा-ताजा होने लगा। उसको विश्वास हो गया कि उसपर प्यार होता है। इसके उदाहरण हम भारतीय परिवारो में यत्र-तत्र-सर्वत्र देख सकते हैं। विपत्नियो या विमाताओ द्वारा पालित बच्चे सूखकर काटा हो जाते है, क्योकि उनके मन में यह बात बैठी रहती है कि ससार में कोई उनको चाहनेवाला नही है। विश्वास से प्रेम होता है और प्रेम से मन तथा शरीर का पोषण। इसके अभाव मे क्लेश, विरह, स्वास्थ्य-नाश होता है। सुन्दर परिवारो मे पारस्परिक विश्वास ही सबको स्वस्थ एव प्रसन्नचित्त रखता है।

निश्चिन्तता

निश्चिन्तता से आयु और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। इसमे तो कोई सन्देह ही नही। चिन्ता से शरीर कृश होता है। कहा भी है कि 'चिन्ता सम नास्ति शरीरशोषणम्।' चिन्ता के समान अन्य कोई वस्तु शरीर-

शोषक नही है। एक सस्कृत-नीतिकार ने लिखा है कि चिन्ता चिता से दसगुनी बड़ी है (चिता की अपेक्षा उसके आगे एक बिन्दु '०' भी है), क्योंकि चिता तो मरे हुए शरीर को जलाती है और चिन्ता जीवित शरीर को ही दग्ध करती है। चिन्ता की अनिद्रा और क्लान्ति का अनुभव तो सभी ने किया होगा।

चिन्ता प्राय धन की कमी, निराशा, सशय आदि के कारण उत्पन्न होती है। जब आदमी अपने को अरक्षित तथा भविष्य को अधकारमय देखता है, तभी उसको चिन्ता होती है। यह चिन्ता चाहे झूठी ही हो पर स्वास्थ्य पर उसका प्रभाव पडता है। अमरीका के एक पत्र (गार्डियन) मे इस विषय का समर्थक एक वृतान्त हाल ही मे छपा है। जर्मनी की पराजय के बाद जर्मन बच्चो का शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट होने लगा। भोजन की कमी तो थी ही, पर सबसे बडी बात यह थी कि उन बच्चो के मन में यह शका पैदा हो गई थी कि आज जो खाने को मिल रहा है, वह कल भी मिलेगा या नही। दूसरे दिन की अनिश्चित दशा का विचार करके वे रात को चिन्तावश सो भी नही सकते थे। तब उनकी मनोदशा का अध्ययन करके उनके अभिभावकों ने यह उपाय किया कि रात को लेटने से पहले प्रत्येक बच्चे को एक-एक रोटी का टुकड़ा दिया जाने लगा। बच्चे उसको गुड़िया की तरह लिपटाकर इस निश्चिन्तता के साथ सो जाते थे कि उनके पास अगले दिन के लिए भोजन है। यह वृत्तान्त 'मैगज़ीन डाईजेस्ट' के जून १९४८ के अक मे उद्घृत हुआ है।

स्वस्थ रहने के लिए यह आवश्यक है कि जो गत हो चुका है, उसकी चिन्ता न करे : 'गत न शोचामि।' और भविष्य की अनावश्यक एव निराशजनक कल्पना न करे।

मनोव्याधियां

चिन्ता के अतिरिक्त अन्य कई मानसिक व्याधिया है जो कुछ समय मे शारीरिक व्याधियो के रूप में फूट निकलती हैं। इस सम्बन्ध मे एक विद्वान् डॉक्टर(डा० एस० वी० व्हाइटहेड) का यह कथन उल्लेखनीय है :

"मनोविकार कई सूक्ष्म ढगो से शरीर द्वारा अपने प्रभाव को प्रकट करते हैं। उत्तेजनात्मक स्वभाव रक्त का प्रसार बढा देता है; उदासीनता या उद्विग्नता नाड़ियो को शिथिल कर देती है। भय पाचन-क्रिया को गड़बड़ा देता है। सैंकड़ों प्रकार से मनोदशा का प्रभाव शारीरिक स्वास्थ्य और मनुष्यों के व्यवहार एव आचरण पर पडता है।"[1]

इस सम्बन्ध मे अमरीका की एक सुप्रसिद्ध पत्रिका (रीड मैंगजीन, अगस्त १६४५) में एक सारगर्भित लेख छपा था। उसमें लिखा था कि प्राय: लोग अपने परिवार ही के किसी व्यक्ति के प्रति मन मे अर्से तक गुप्त घृणा लिए रहते हैं, जिसके कारण उनको आत्मग्लानि होती है। ये दुर्भाव अन्तर्मन में बैठ जाते हैं और वर्षो बाद एक्जीमा, दमा, हाई-ब्लडप्रेशर या दृष्टि-दोष के रूप में प्रकट होते है। गुप्त अन्तर्वेदना, व्यग्रता तथा भय-शका की भावना का शरीर-दृष्ट्या लक्षण है थकावट। जब आपको बिना किसी शारीरिक व्याधि के क्लाति तथा शिथिलता का अनुभव हो तो समझ लीजिए कि कोई दुर्भाव आपके अन्तर्मन मे समा गया है जो रह-रहकर जाग उठता है और आपको पीड़ित करता है। थकावट (या बेचैनी) विकार-प्रेरित द्वन्द्व की सूचना है।[2]

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि शरीर से स्वस्थ रहने के लिए मन से स्वस्थ होना परम आवश्यक है। मन का पाप शरीर पर प्रकट होता है, उसी तरह जैसे : 'जीभ तो कहि भीतर गई, जूता खात कपाल' (तुलसी)।

---

1. In many subtle ways, mentality reflect themselves through your body. Your hot temper sends up your blood pressure. Your sulks depress your nerves ..your fear inhibits your digestion. In thousand and one ways mental health reflects itself in your physical health and the wey you react to people and circumstances.

2 Fatigue is the red flag of emotional conflict.

—Curtis Reed.

संगति का प्रभाव

सगति का शारीरिक प्रभाव तो स्वास्थ्य पर पड़ता ही है, क्योकि एक का रोग दूसरे को पकड लेता है, पर मानसिक प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है। स्वस्थ व्यक्ति की सगति से उत्साह होता है क्योकि प्रत्यक्ष स्वास्थ्य-देवता के दर्शन होते है और देवदर्शन के बाद उपासना की भावना स्वभावतः उठती है। स्वस्थ व्यक्तियो की सगति से अपना स्वास्थ्य सुधारने की मनोवृत्ति उठती है। पहलवान लोग अखाड़ो में हनुमान् जी की मूर्ति इसीलिए तो रखते है। अतएव स्वस्थ होने के लिए सामने एक आदर्श रखना आवश्यक है।

स्वास्थ्य और व्यायाम

शरीर और मस्तिष्क की स्वाभाविक शक्ति और स्फूर्ति को उद्दीप्त करने के लिए व्यायाम की आवश्यकता होती है। व्यायाम का अर्थ पहलवानी नही है। व्यायाम किसी भी ऐसे कार्य को कह सकते है जिसके द्वारा शरीर की स्थायी शक्ति सतेज, सक्रिय एव सुदृढ़ हो। प्राकृतिक चैतन्य प्राप्त करना ही उसका उद्देश्य होता है। वह चैतन्य टॉनिक पीने या मद्य-सेवन से नही आ सकता, क्योकि वह पुष्टिकर होने पर भी स्थायी एव स्वाभाविक नही होता। व्यायाम ही एक साधन है जिसके द्वारा मासपेशियो को बल मिलता है। नाडिया स्वस्थ होती है; हृदय फेफडे, मस्तिष्क और पाचन-यन्त्र विशेप क्रियावान् होते हैं और शरीर मे अनावश्यक चरबी बढने नही पाती, क्योकि भीतर का बहुत-सा दूषित मल, श्वास और पसीने से बाहर निकल जाता है। व्यायाम से ही प्रत्येक अग सुगठित रहता है, रक्त का प्रवाह ठीक रहता है, मन में उत्साह तथा आत्म-बल का अनुभव होता है। व्यायाम द्वारा अगो के संघर्षण और सचालन से शरीर की विद्युत्-शक्ति गतिमान् होती है और शरीर सतेज होता है। यही सब व्यायाम के लाभ है और इन्ही के लिए व्यायाम करना भी चाहिए।

शारीरिक व्यायाम अनेक ढग के होते हैं, जैसे : योगासन, खेल-कूद, दण्ड-बैठक, दौड़ना आदि। इनके ढग और लाभ आदि सर्वविदित है। इनमें सबसे सरल टहलना है, क्योकि उसको सभी सुगमता से मनो-विनोद के लिए भी कर सकते है। कई दृष्टियो से वह सर्वोत्तम भी है। कोई भी व्यायाम किया जाए, उसको नियमित रूप से और पूर्ण मनो-योग से ही करना चाहिए। उसके लिए प्रभात का समय सर्वोपयुक्त होता है। उस समय जिन शारीरिक क्रियाओ से शरीर को चैतन्य-लाभ मिले, उन्ही को करना चाहिए। यह आवश्यक नही कि उछल-कूद ही मचाई जाए। जो ऐसा नही कर सकते वे खाट पर ही हाथ-पैर तानकर, लम्बी सांसें लेकर और मासपेशियो को थोडा हिला-डुलाकर अपनी शक्ति को जगा सकते हैं। घर ही मे थोड़ा टहल लेने से भी साधारण व्यायाम हो जाता है, किन्तु तब जब कि इच्छा-शक्ति दृढ हो। इसी प्रकार दफ्तर मे काम से थकने पर कुर्सी पर ही थोडा हाथ-पैर तानने से मासपेशियो मे नव-स्फूर्ति आ जाती है। उस समय आखो को दो-चार बार कसकर बन्द करने तथा खोलने और दो-चार बार अगडाई लेने से नव-स्फूर्ति आ जाती है। वह भी एक उत्तम व्यायाम है; कम से कम रेल-यात्री और बुद्धि-व्यवसायियो के लिए। परन्तु इन सबसे स्थायी लाभ नही होता। ये तो चुटकुले हैं। स्थायी शक्ति के लिए किसी प्रकार का नियमित परिश्रम करना चाहिए और सावधानी के साथ, क्योकि : 'अंतरे-खोतरे कसरत करे, दैव न मारे अपने मरें'—अर्थात् अनियमित व्यायाम से शारीरिक विनाश होता है।

सर्वोत्तम व्यायाम

हमारी सम्मति मे केवल एक व्यायाम है जो सभी दृष्टियो से सहज उपयोगी और शरीर के समस्त अगो के लिए समान रूप से हितकर हो सकता है—वह है धनुष-बाण चलाने का अभ्यास करना। आमोद-प्रमोद के साथ शरीर और मस्तिष्क को स्वस्थ बनाने के लिए इससे बढकर कोई व्यायाम नही हो सकता। आगे चलकर यह व्यायाम ही नही रह जाता

वल्कि एक गुण और आत्मरक्षा का साधन भी वन जाता है। प्राचीन भारत का यह सर्वमान्य व्यायाम था। भारत ही नही, पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी तक यह इग्लैड का भी राष्ट्रीय व्यायाम था। पन्द्रहवी शताब्दी मे इग्लैड के प्रत्येक व्यक्ति के लिए धनुष रखना और प्रतिदिन उसका अभ्यास करना अनिवार्य था। चतुर्थ एडवर्ड के राज मे यह राज-नियम वनाया गया था कि जब बच्चे सात वर्ष की आयु के हो जाए तो उनको वाण चलाना अवश्य सिखाया जाए और इसके लिए प्रत्येक ग्राम मे व्यवस्था थी। ग्रामवासियो और नगरवासियो के लिए नियम था कि वे प्रत्येक रविवार को और उत्सव के दिनो मे धनुष-वाण का अभ्यास करें। जो इसमे आलस्य करते थे उनको जुर्माना देना पडता था। सुप्रसिद्ध हैरो स्कूल के सस्थापक ने यह नियम बनाया था कि जो माता-पिता अपने बच्चे को यहा भर्ती करें वे उसको एक धनुष देकर तव स्कूल भेजे। काल-परिवर्तन से इस कला का उपयोग लोग भूल गए, परन्तु इससे उसकी उपयोगिता नही नष्ट हुई। एक सुप्रसिद्ध अग्रेजी मासिक पत्र (हैल्थ एड एफीशैंसी) के १९४६ के विशेषाक मे एक अनुभवी लेखक ने लिखा है कि सकुचित फेफडो को खोलने के लिए, भद्दे कधो को सुडौल बनाने के लिए, तोद पचाने के लिए, मासपेशियो को सुदृढ बनाने के लिए यह एक राष्ट्रीय व्यायाम है, जिसको अत्यधिक लोकप्रिय बनाना चाहिए।[1]

अव देखिए कि किस प्रकार इस एक ही व्यायाम से शारीरिक एव मानसिक शक्तियो का सगठन, सतुलन तथा विकास होता है। जब आप धनुष चलाने खडे होगे, तो स्वभावत: पैरो को सीधा करके दृढता से जमीन पर खडे होगे। पैर ही नही, पूरे शरीर को सीधा रखना पडेगा,

---

1 As an antidote for cramped lungs, round shoulders, flabby abdomen and soft muscles, this is a national sport that should be a lot more popular than it is today

—James Dudley

और आख को भी। इस प्रकार आप उस दशा में हो जाएगे जिस दशा में होने से मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुचता है। दूसरे शब्दो मे आप कमर कसकर एक लक्ष्य की ओर ध्यान को केन्द्रित करके लक्ष्य-वेध के लिए तैयार हो जाएगे। बाण-सधान करते समय मौर्वी को आप दृढता से खीचेंगे, उससे हाथ की मासपेशियो का व्यायाम होगा। शरीर का तना स्वभावतः तना रहेगा और वक्षस्थल तथा सिर पीछे की ओर तन जाएगे ; पैर आगे-पीछे हो जाएगे। मौर्वी को खीचते समय स्वाभाविक रीति से आप अपनी सास को खीचेंगे और जब तक बाण नही छोडते, तब तक सास को भीतर भर रखना पडेगा। इससे फेफडे पूर्ण रूप से खुल जाएगे, छाती चौडी हो जाएगी, पसलिया खुल जाएगी और पेट तो ढीला रह ही नही सकता। जब तक लक्ष्य-वेध नहीं हो जाता तब तक चित्त एकाग्र रहता है, दृष्टि एकाग्र रहती है, आशा-उत्साह प्रबल रहता है और सफलता की एक ऊची आकाक्षा मन मे रहती है। शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए और क्या चाहिए? यह ऐसा व्यायाम है जिसको सब स्वय अपने अभ्यास से सीख सकते हैं। योग, प्राणायाम, व्यायाम, मनोरजन और एक सैनिक कला का ज्ञान—यह सब धनुष चलाने का अभ्यास करने से होता है, इसमे सन्देह नही। हाकी-फुटबाल खेलने की अपेक्षा सरकार विद्यार्थियों को धनुर्विद्या का अभ्याम कराए तो उनको व्यक्तिगत लाभ ही नही बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र को लाभ होगा, क्योकि भावी नागरिक कम से कम स्वावलम्बी और लक्ष्य-वेध मे पटु होगे। यह स्मरण रखना चाहिए कि धनुष-सचालन के अभ्यास से स्वावलम्बन की भावना स्वतः उद्दीप्त होती है। अपने पैरो पर खडे होकर, अपने बल से ही मौर्वी को खीचकर, अपनी ही एकाग्रता-शक्ति के अनुसार लक्ष्य को भेदकर आप सफलता प्राप्त करते हैं।

बुद्धि का व्यायाम

बुद्धि के व्यायाम के सम्बन्ध में भी कुछ जान लेना आवश्यक है।

यो तो बुद्धि का व्यायाम ठीक विचार करने और रचनात्मक कार्य करने से हो जाता है, परन्तु उसके कुछ और भी साधन है। एक साधन तो है शतरंज खेलना। यह शुद्ध भारतीय खेल है जिससे मनोविनोद के साथ ही बुद्धि का भी विकास होता है। कहते है, रावण ने इसका आविष्कार मन्दोदरी के लिए किया था। बाद में कूटनीतिज्ञ चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की बुद्धि को तीक्ष्ण करने के लिए उसको यह खेल सिखाया। उसके बाद बुद्धकालीन भारत मे इसका प्रचार बढ़ा क्योकि मनुष्य की युद्ध-प्रवृत्ति को बुझाने का यह अच्छा साधन माना गया। इसकी अहिंसात्मक युद्ध-प्रणाली को बौद्धो ने बहुत पसन्द किया। शतरज का पूर्ण परिचय न देकर हम निश्चित रूप से इतना ही कहना चाहते है कि यह एक मनोरंजक और बुद्धिवर्द्धक व्यायाम है।

बुद्धि का सर्वश्रेष्ठ व्यायाम है उपासना

प्रार्थना से देवता वरदान दें या न दे, परन्तु मन उनके तेजोमय रूप को अपने भीतर प्रतिष्ठापित करके निश्चय ही सबल हो जाता है। उससे आत्मशक्ति की दृढता बढती है और चित्त की एकाग्रता बढती है। मनुष्य एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर की सहानुभूति का विश्वास न करके अपने को स्वय शक्तिमान् समझने लगता है और मनोबल से उसका बौद्धिक एवं शारीरिक विकास होता है।

विश्राम

स्वास्थ्य के लिए आहार, व्यायाम आदि के समान विश्राम की भी आवश्यकता होती है क्योंकि उसी के द्वारा शरीर की खोई हुई शक्ति पुन वापस मिलती है और शरीर-यन्त्र जर्जर नही होने पाता। मानसिक और शारीरिक परिश्रम मे मासपेशियों तथा नाड़ियो पर जो कार्य-भार पडता है उसको हल्का करने का साधन विश्राम ही है। विश्राम से स्नायु-मण्डल दृढ होता है। शरीर, मन दोनो स्वस्थ होकर जीवन-सघर्ष के लिए पुनः समर्थ हो जाते है और धातु-तन्तुओ की क्षतिपूर्ति होती है।

इसलिए परिश्रम के बाद विश्राम करना भी आवश्यक है और विश्राम ऐसा करना चाहिए जिससे तन-मन दोनो को पूर्ण शान्ति मिले, क्योकि यही उसकी उपयोगिता है।

मानसिक विश्राम तो बहुत कुछ विषय-परिवर्तन और स्त्री-बच्चो तथा मित्रो के साथ हास्य-विनोद करने से हो जाता है। हसने से भी मन का विश्राम होता है, क्योकि हसी से रक्त का प्रसार बढता है, रक्त की गति तीव्र होती है और मुख्यतः मस्तिष्क का अवरुद्ध रक्त ठीक से प्रवाहित होता है। उससे फेफडे खुलते है और एक-एक नस से दूषित वायु बाहर निकल आती है। इससे मन को शान्ति होती है, बहुत-सी चिन्ताए हसी की हवा मे उड जाती है। किसी भी प्रकार के मनोरजन से मन को विश्राम मिल जाता है।

पूर्ण विश्राम का प्रधान साधन निद्रा है। स्वाभाविक, मानसिक तथा शारीरिक शान्ति पूर्ण मात्रा मे उसी से मिलती है। इसलिए उचित मात्रा मे प्रगाढ निद्रा शरीर के लिए सबसे प्रमुख 'टॉनिक' है। निद्रा के सम्बन्ध मे विशेष रूप से कुछ जान लेना आवश्यक है।

१. निश्चित समय पर स्वाभाविक निद्रा ही स्वास्थ्यप्रद होती है। उसको प्राप्त करने के लिए सुन्दर पलग और बिछौने की उतनी आवश्यकता नही होती, जितनी कि स्वाभाविक आहार और परिश्रम की। पाचन-क्रिया ठीक रखने और दिन मे कुछ शारीरिक परिश्रम करने से रात मे अच्छी नीद आती है।

२. नीद एक शारीरिक क्रिया नही मुख्यतः मानसिक क्रिया है। मस्तिष्क को हल्का करने से ही नीद आती है, मन मे चिन्ता रहने से वह दूर भागती है। इसलिए लेटने पर किसी ऐसे कार्य की चिन्ता नही करनी चाहिए जिसके सुलझाने में मन को विचार करना पडे। किसी पुराने विषय को सोचिए; ऐसे विषय को सोचिए जिसमें आपको सफलता मिल चुकी हो; किसी मधुर स्मृति मे मन को लगाइए। उससे यह होगा कि मन को चिन्तन न करना पडेगा; वह सुलझी-सुलझाई

बातो का रस लेगा और जानी-बूझी गलियो में ही घूमेगा। उसपर नये विचारो का दबाव न पडेगा और वह रस-मग्न होकर सो जाएगा। मनोवैज्ञानिको ने निद्रा का यही श्रेष्ठ उपाय बताया है। दूसरा उपाय है सोने के पहले कोई मनोरजक उपन्यास, कहानी या काव्य पढना, अथवा स्वजनो से प्रेमालाप करना। इसे मन किसी गम्भीर चिंता मे न फसेगा। आयुर्वेद के प्राचीन पण्डित का कहना है कि इद्रियो से मन को हटा लेनें से ही नीद आती है।

३. वैज्ञानिको ने अनिद्रा के कारण और उसके निवारण के कुछ अच्छे उपाय बताए है। अनिद्रा एक भयकर रोग है। यदि इसका शीघ्रातिशीघ्र निवारण न किया जाए तो शरीर और मस्तिष्क दोनो अस्वस्थ हो जाते है तथा बाद मे यह किसी भी उपचार से ठीक नही हो सकता। आत्मघातियो मे अनिद्रा-पीडित व्यक्तियो की सख्या काफी होती है। यह रोग प्राय' बुद्धि-सम्बन्धी काम करनेवालो को तथा व्यवसायियो को ही होता है।

अधिक मानसिक परिश्रम और चिन्ता से अनिद्रा रोग होता है। इसका रहस्य यह है साधारण निद्रा की अवस्था में मस्तिष्क के रक्त का अधिक भाग वहा से निकल आता है और रक्तवाहिनी नसो का सकोचन होता है। परन्तु जागरितावस्था में और मुख्यतया विचार करते समय मस्तिष्क की नसो मे रक्त प्रचुर मात्रा में रहता है, इसलिए उनका फैलाव होता है। दोनो अवस्थाओ के ये कार्य प्राकृतिक हैं। मस्तिष्क से जब रक्त निकल जाता है और नसें सकुचित होती हैं तभी नीद आती है। अधिक चिन्ता, रात्रि-जागरण और अनवरत परिश्रम से रक्त मस्तिष्क में निरन्तर भरा रहता है और परिणाम यह होता है कि नसे फैलकर ढीली हो जाती है तथा उनका स्वाभाविक सकोचन नही हो पाता। ऐसी दशा में वे रक्त को मस्तिष्क से बाहर निकालने मे असमर्थ हो जाती हैं और रक्त की उष्णता के कारण नीद नहीं आती। यदि शीघ्र सावधानी न की जाए तो स्नायु-मण्डल अशक्त बना रहता है और

आगे उसको ठीक नही किया जा सकता । मूर्खों और दरिद्रो को यह रोग नही होता क्योकि वे बुद्धि पर जोर डालनेवाला कोई कार्य ही नहीं करते । मूर्ख जब चाहे तब सो लेता है क्योकि विचार न करने के कारण उसका मस्तिष्क रक्त से सदैव रिक्त रहता है । उसको सोने की ही बीमारी हो जाती है, क्योकि मस्तिष्क की नसें सकुचित ही रहती हैं ।

अनिद्रा मे अधिक से अधिक विश्राम लेना ही हितकर होता है । निश्चिन्तता से नसें पुनः स्वाभाविक कार्य करने लगती हैं । समुद्र की हवा इस रोग में जादू का-सा काम करती है । दिन में सोना, स्वच्छतम वायु का सेवन, घर से बाहर रहना, व्यायाम करना —ये सब इसमे बहुत लाभ करते है । लेटने से पूर्व कोई गरम पेय, मुख्यतः दूध पीने से गरमी पाकर मस्तिष्क का रक्त वहा से नीचे उतर आता है । सोने से पूर्व और जब जगें तब गरम दूध पीना बहुत गुण करता है । गरम दूध पीकर थोडी देर गरम पानी मे पैर रखने से मस्तिष्क का रक्तप्रसार कम हो जाता है और नीद आ जाती है ।

जिस तरह भी हो सके, प्राकृतिक और पर्याप्त विश्राम लेना स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है । अच्छी नीद के बाद थोडे समय मे भी दूना काम होता है । नीद न आने से दूने समय मे भी आधा काम होता है ।

औषधिया

स्वास्थ्यरक्षक एव स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तुओ मे हम औषधियो को भी लेते है । औषधियो से हमारा तात्पर्य रस-भस्म या काष्ठ औषधियो से ही नही है । प्राचीन विद्वानो के मत से जिस वस्तु के द्वारा शरीर को आरोग्य प्राप्त हो, वही भेषज है । उनके मत से जल, वायु, ताप, उपवास, मन्त्र सभी भेषज है । सूर्य की किरणें सर्वोत्तम भेषज हैं । सूर्य से तीन प्रकार की किरणें—तापदायक, प्रकाशदायक और रसायनोत्पादक निकलती है । तीनो स्वास्थ्यकर है । इसी प्रकार वायु आदि के गुण हैं जिनका

उल्लेख हम ऊपर यथास्थान कर चुके है।

१. वास्तव मे अन्न अर्थात् आहार ही सर्वोत्तम ओषधि है। आहार-सयम और पाचन से यथासभव कोई रोग नही होता और यदि हो भी जाए तो आहार-परिवर्तन से ही वह अधिक सुगमता से ठीक हो सकता है। आहार की कोई साधारण वस्तुए ही ठीक ढग से लेने पर चमत्कार करती है। उदाहरण के लिए नमक को लीजिए। मलेरिया मे दो तोला नमक भूनकर गरम पानी के साथ पीने से रामवाण का काम करता है। ज्वर के बाद की निर्वलता मे नमक-मिश्रित पानी पीने से शरीर की शक्ति बहुत शीघ्र वापस आ जाती है, क्योंकि ज्वर की दशा में पसीने से शारीरिक नमक का जो व्यय हुआ होता है उसकी पूर्ति हो जाती है। किसी भी समय थकावट या बेचैनी होने पर हल्का नमक-मिश्रित जल पीने से स्फूर्ति आती है। दात के रोगो मे नमक और कड़वा तेल मिलाकर माजना अद्भुत गुण करता है और यदि उसके साथ एक भाग सोडा-बाईकार्ब भी मिला लिया जाए तो और भी। इसके अतिरिक्त नमक एक सर्वसुलभ जन्तुघ्न ओषधि भी है।

खाद्यपदार्थों मे करेले को लीजिए। कुछ दिन पूर्व 'अमृत बाजार पत्रिका' (इलाहाबाद) मे डॉक्टर अग्रवाल नामक एक सज्जन का एक पत्र छपा था। उसमें उन्होंने लिखा है कि करेले के ऊपरी छिलके में मधुमेह को निर्मूल करने की विचित्र शक्ति है। इसलिए करेला प्रत्येक रूप मे मधुमेहियो के लिए लाभदायक है। यदि कोई 'मेही' उसको सुरक्षित रखना चाहे तो उसके छिलके को किसी काठ की छुरी (धातु की छुरी से नही) से छीलकर छाया में सुखा ले और साल भर खाए। उक्त सज्जन को यह प्रयोग किसी अनुभवी मिस्र-निवासी से ज्ञात हुआ था। उन्होने इसका अनुभव करके देखा है और तभी छपवाया है। ऐसे ही, पपीते को लीजिए। कोष्ठबद्धता के लिए यह राम-रसायन है। कैसा भी जीर्ण कोष्ठबद्ध हो, प्रातःकाल एक छोटे चम्मच-भर शक्कर में कच्चे फल का दस-पन्द्रह बूंद दूध डालकर पीने से पाचनक्रिया ठीक हो जाती है। दूध

के लिए फल तोडने की आवश्यकता नही है। सुई चुभाने से दूध टपक पड़ता है। नीबू भी प्रात.काल एक प्याले गरम पानी मे लेने से पेट को तथा रक्त को शुद्ध करता है।

ऐसी छोटी-मोटी किन्तु असाधारण वस्तुओ में हम 'लहसुन' को नही भूल सकते। वाग्भट ने उसको अमृत-सभूत रसायनराज माना है: 'साक्षादमृतसभूतेर्ग्रामणी. स रसायनम् ।' महर्षि सुश्रुत ने भी उसको बल-कारक ; बुद्धि, स्वर, वर्ण, चक्षु के लिए उपयोगी; टूटी हड्डी को जोड़नेवाला ; हृदय-रोग, जीर्ण-ज्वर, पार्श्वशूल, कोष्ठबद्धता, गुल्म, अरुचि, कास, शोथ, अर्श, कुष्ठ, अग्निमाद्य, कृमि, वायु, श्वास और कफ का नाशक कहा है। वास्तव मे यह फेफडे के रोगो मे, राजयक्ष्मा तक मे, अबलता में, पेट के कृमि रोग मे और लकवा आदि वात-रोगो में आश्चर्यजनक लाभ करता है। यह अपने वातारि श्रीमस्त महौषध, रसायनकर और अस्थिसधानकर आदि नामो को सर्वथा सार्थक करता है। क्षय रोग की प्रारम्भिक दशा मे एक से दस तक कच्चे लहसुन प्रात.काल खाने से उक्त रक्त रोग निर्मूल हो जाता है। इसको हम दो-एक व्यक्तियो के अनुभव के आधार पर कह सकते हैं। पक्षाघात मे लहसुन के दस यव दूध मे पकाकर चालीस दिन तक खाने से स्थायी लाभ होता है। यह भी बहु अनुभूत है। साधारणतया चार यव लहसुन प्रातःकाल बासी मुह रोज खाने से पेट अवश्य शुद्ध रहता है और तेज-ओज की वृद्धि होती है। महात्मा गाधी प्रतिदिन नियमित रूप से लहसुन खाते थे और अन्त तक पूर्ण स्वस्थ थे। वृद्धो के लिए तो यह ओषधि भी है क्योकि उनको वात-विकार होता है और यह वात को हड्डियो तक से निकाल भगाता है। इसको कुछ लोग कामोत्तेजक मानते हैं, परन्तु गाधीजी ने एक बार कहा था कि लहसुन के नियमित सेवन से मैंने उसको कभी ऐसा अनुभव नही किया।

ओषधियो का निर्देश करना हमारा विषय नही है। हमने प्रसगवश यह दिखलाने के लिए कुछ अनुभूत प्रयोगो का उल्लेख कर दिया है कि

साधारण घरेलू वस्तुओ से भी वड़े-वडे रोगो का मारण-निवारण हो सकता है। केवल समझ-बूझकर प्रयोग की आवश्यकता होती है। ठीक से प्रयोग करने पर सखिया भी अमृत हो जाता है और मूर्खता से मधु भी विप हो जाता है।

२. ओपधियो में हम उपवास को भी लेते हैं। उपवास से शरीर की सफाई हो जाती है और पाचनेन्द्रियो को विश्राम मिलता है। अजीर्णता आदि में लघन विशेप गुण करता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि उपवास मे धातु-तन्तुओं का विनाश होता है और उनके स्थान की पूर्ति सचित मांसपेशियो की धातुओ से होती है। शरीर के साधारण अगो से ही धातु-व्यय अधिक होता है; उदाहरणार्थ—उपवास में जितने समय मे मासपेशियो का वजन चालीस प्रतिशत घटता है, उतनी देर मे हृदय का तीस प्रतिशत ही घटता है। इसलिए यह भ्रम निकाल देना चाहिए कि उपवास से हृदय दुर्वल होता है। आवश्यक अगो की रक्षा का विधान प्रकृति ने कर रखा है।

३. मन्त्र भी ओपधि-वर्ग मे माने गए है। उनपर कोई विश्वास करे या न करे, इतना तो सत्य ही है कि उनमे हृदय को वल, विश्वास और धैर्य देने की शक्ति है। उनसे चित्त मे जो शान्ति और आशा उत्पन्न होती है, उसका लाभ स्वास्थ्य पर अवश्य पडता है। शब्द हृदय पर आघात करते हैं। किसी के लिए आप मंगल-कामना सुमधुर शब्दो में व्यक्त कीजिए तो वह फूल जाता है। किसी को भर्त्सनात्मक शब्द कह दीजिए तो वह विना काटे ही कट जाता है। इससे शब्दो की मन्त्र-शक्ति प्रमाणित होती है। शब्द अन्तस्तल को स्पर्श करते है और स्पर्श मे कितनी शक्ति होती है, इसका अनुभव आप शीत या उष्ण वायु के स्पर्श से कर सकते हैं। वायु के साथ जब मन्त्रो के मगलमय सुव्यवस्थित शब्द हृदय को छूते है तो हृदय अवश्य आन्दोलित होता है। उन मन्त्रो मे कल्याण की भावना ही तो रहती है। मन्त्र के साथ मागलिक द्रव्यो के स्पर्श से भी शरीर को लाभ होता है। इस स्पर्श को भी साधारण

न मानना चाहिए। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के स्पर्श से ही रोमाचित हो जाते है। इसी तरह माता पुत्र के स्पर्श से स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करती है। चाणक्य ने लिखा है कि चन्दन का स्पर्श शीतल अवश्य होता है, परन्तु पुत्र का शरीर-स्पर्श उससे भी अधिक शीतल होता है। जिस वस्तु से जिसका अनुराग होता है उसको वही आनन्ददायक होती है।

४. मणि-रत्नों और सुवर्ण आदि धातुओ का प्रभाव भी शरीर के स्वास्थ्य पर पडता है, ऐसा कहा जाता है। शास्त्रीय मत से ग्रहो का प्रभाव शरीर पर पडता है और मणि-रत्न उन्ही ग्रहो से शक्ति-सचय करते है। उनका कुप्रभाव भी पड़ता है। इसमें कहां तक सत्यता है, हम कह नही सकते। जब ठण्डे पानी जैसे साधारण पदार्थ के स्पर्श से शरीर मे शीतलता आती है और अगो का सकोचन होता है तो हीरे जैसे कान्ति-विशिष्ट पदार्थो के स्पर्श का प्रभाव भी पड़ सकता है। शुक्राचार्य ने अपने नीतिशास्त्र में लिखा है कि पुत्र की कामना करने वाली नारियो को कभी हीरा न धारण करना चाहिए : 'न धारयेत् पुत्रकामा नारी वज्र कदाचन।' धनी परिवारो मे सन्तानकष्ट प्राय. रहता है। यह देखना चाहिए कि आभूपणो में हीरा पहनने से तो कही स्त्रियो की गर्भधारण-शक्ति पर प्रभाव नही पडता। स्वर्ण के विषय मे यह कहा जाता है कि वह शरीर को प्राकृतिक विद्युत् से संयुक्त करता है। ऐसा हो या न हो, पर इतना अवश्य होगा कि त्वचा द्वारा स्वर्ण का धातु-अश रक्त से सयुक्त होकर स्वास्थ्यकर होता होगा।

५. स्नान, तेल-मालिश आदि को भी हम ओषधि मे ले सकते है। स्नान के विषय मे हम लिख चुके हैं। तेल-मालिश के सम्बन्ध मे यह जानना चाहिए कि वह परम पुष्टिवर्द्धक होता है। पेड को जल का सिंचन जितना लाभ करता है, उतना ही शरीर को स्नेह-सिंचन।

६. दवाओ के उपयोग के सम्बन्ध मे कुछ लिखना यहां पर अना-

वश्यक होगा; वह वैद्य-डाक्टरो का विषय है। हा, इतना स्मरण रखना चाहिए कि बलाबल के अनुसार ही ओषधियो का सेवन हितकर होता है, अर्थात् युवक के लिए जो दवा जिस मात्रा मे दी जाएगी उससे बालक तथा वृद्ध की दवा और उसकी मात्रा में भिन्नता होगी। साथ ही, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अप्राकृतिक ढग से ली हुई दवाए स्थायी गुण नही करती। जिस देश का जो प्राणी होता है, उसी देश की दवाए उसको स्वभावत· लाभ करती है।

स्वास्थ्य-नाश के कारण

सक्षेप में हमें स्वास्थ्य-नाश के सम्बन्ध में कुछ साधारण कारणो पर विचार कर लेना चाहिए। प्रधान कारण तो रोग ही है। रोग उसको कहते हैं जिसका सयोग मनुष्य को दु ख दे : 'तद्दु खसयोगा व्याधय उच्यन्ते' (सुश्रुत)। यह परिभाषा बहुत व्यापक है। इसके अन्तर्गत विषय, भोजन, प्रतिकूल जलवायु और कुसंगति आदि सभी आ जाते है जिनपर ऊपर कुछ लिखा जा चुका है। यहा हम कुछ आवश्यक बातो का निर्देश-मात्र करेंगे।

त्रिदोष—आयुर्वेद के मत से वात, पित्त और कफ ये तीन शरीर के मुख्य धारक हैं। इनके बिना शरीर का होना सभव नही। ये सम-परिणाम मे रहते हैं तो शरीर स्वस्थ रहता है। इनमे से एक भी घटता-बढता ह तो शरीर व्याधिग्रस्त हो जाता है। कफ बढ़ने से कफ के अनेक रोग होते है, और पित्त बढने से रक्त के विकार तथा वात से पेट और मस्तिष्क के। जन्म से ही मनुष्य की प्रकृति में एक न एक की प्रधानता होती है। जलवायु, आहार-विहार और मानसिक व्यतिक्रम से वे घटते-बढ़ते रहते हैं। इनमे से सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करना यहा सभव नही। उदाहरण के लिए हम वात के विषय मे कुछ बातो का उल्लेख करेंगे क्योकि उसका मस्तिष्क से भी विशेष सम्बन्ध रहता है। मस्तिष्क और उससे निकली नाड़िया इस वात-धातु से बनती है। सोचने-विचारने और

सवेदना-सम्वन्धी कार्य इसी के सहारे होते है। शरीर के वायु-सम्वन्धी सभी कार्य शरीरस्थ वात-धातु से होते है।

जिनकी प्रकृति वात-प्रधान होती है वे स्वभाव से ही आतुरमति होते है, ऐसा सुश्रुत का मत है: 'वातलाद्या: सदातुरा.।' वाग्भट के मत से वात-प्रकृति के व्यक्ति क्रोधी, चचल, बहुवक्ता तथा सशयालु स्वभाव के होते हैं। ऐसे लोग रूक्ष, बकवादी, जागरणशील और कल्पना-प्रिय होते है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वृद्धावस्था में मनुष्य के शरीर मे जव वाताधिक्य हो जाता है तो उसके स्वभाव मे यही बातें दिखलाई पडती हैं।

वात-प्रकृति होने का अर्थ यह नही है कि जन्म से ही मनुष्य ये दुर्गुण ले आता है। होता यह है कि जब प्रकृति वात-प्रधान रहती है तो किसी भी कारण से वात के कुपित होने से ये वासनाएं भडक उठती हैं। कोई वात-प्रकृति का न हो तो भी दुष्ट आहार या अशुद्ध वायु-सेवन अथवा रहन-सहन की गडवडी से वात-ग्रस्त हो जाता है। वैद्यक मत से वाताधिक्य मुख्यत: इन कारणो से होता है—कडवा, रूखा, कसैला, ठण्डा पदार्थ, सूखा शाक, सावा-कोदो जैसे भारी पदार्थ खाने से; अधिक उपवास, अजीर्ण भोजन, अधिक व्यायाम, मार्ग-गमन, मैथुन, चिन्ता, आघात, शारीरिक पीडा, रात्रि-जागरण, मल-मूत्र, शुक्र, वमन, अधो-वायु हिचकी, आसू, उद्गार आदि को बलात् रोकने से और वर्षाऋतु मे तथा दिन के तीसरे पहर और वायु का वेग प्रवल होने पर।

वात-प्रकोप से शरीर मे शूल, श्वास और गठिया आदि तो हो ही जाते हैं, साथ ही मानसिक क्षति विशेष रूप से होती है। उसके वढने से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से रक्त उत्तप्त होता है और श्वास का घोर अपव्यय होता है। यही नही, उससे उन्माद हो जाता है। कम से कम सीता को इसका ज्ञान था। लका मे हनुमान् को एकाएक सामने देख-कर उनको विश्वास नही हुआ और वे सोचने लगी कि क्या यह मेरा

चित्तभ्रम है या वायु का विकार अथवा उन्माद से उत्पन्न विकार है या मृगतृष्णा है.

किं नु स्याच्चित्तमोहोऽयं भवेद्वातगतिस्त्वियम् ।
उन्मादजो विकारो वा स्यादियं मृगतृष्णिका ।। (रामायण)

वात के कुपित होने पर मनुष्य क्रोधान्ध और उन्मत्त होकर प्रलाप करता है, निरर्थक वाक्य बकता है :

स्वदेहकुपिताद्वातादसम्बन्ध निरर्थकम् ।
वचन यन्नरो ब्रूते स प्रलाप प्रकीर्तित ।। (वैद्यक निघण्टु)

उस अवस्था मे विचारो मे अस्थिरता आ जाती है, बुद्धि मारी जाती है। क्रोध से मोह, मोह से स्मृति-नाश, स्मृति-नाश मे बुद्धि-नाश और बुद्धि-नाश से सर्वनाश होता है। क्रोधावेश मे बहुतो को क्रोधज्वर, बहुतो को पागलपन और बहुतो को पक्षाघात हो जाता है। क्रोधावस्था मे शरीर का तापमान स्वभावत बढता है और ताप बढने से वायु कुपित होती है, क्योकि वह स्वय दहनात्मक होती है और तब मनुष्य प्रलाप करता है, जैसे ज्वर मे ।

क्रोधी मनुष्य प्राय वातुल (पागल) या पक्षाघात जैसे रोग से ग्रस्त पाए जाते हैं क्योकि उनके ज्ञान-तन्तु बार-बार उत्तेजित होकर शिथिल पड जाते हैं। हिन्दुओ के कर्म-विपाक शास्त्र (कर्मफलोदय) के अनुसार भी दूसरो का दिल दुखाने, सभा मे अन्याय, पक्षपात तथा अकारण दोषारोपण करने वाले के लिए पक्षाघात ईश्वरीय दण्ड माना गया है। ये सब कार्य मनुष्य वात-विकार से ग्रस्त होकर ही करता है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे लिखा है कि प्राय क्रोधालु राजाओ को प्राकृतिक कोप से नष्ट होते सुना गया है :

प्राय कोपवशा राजान प्रकृतिकोपैर्हता श्रूयन्ते ।

ये प्राकृतिक कोप ऐसी ही आकस्मिक व्याधियां है। इससे बचने के लिए वात-विकार से बचना चाहिए। उससे बचने के आयुर्वेदोक्त उपाय ये है—पेट को साफ रखना, घृत-तेल का नियमित सेवन, उपवास,

मधुर, अम्ल, लवण और पके द्रव्यो का हल्का आहार, तेलमर्दन, चिन्ता और भय-त्याग। मस्तिष्क पर वायु का प्रकोप होने पर वह प्राय भय-प्रदर्शन से ही शान्त होता है। यह प्रमाण-सिद्ध है। कोई व्यक्ति जब अनर्गल प्रलाप या क्रोधावस्था मे कोई अपकर्म करने लगता है तो दण्ड के भय से ही वह स्वस्थचित्त होता है। लोग कहते हैं कि होश ठिकाने आ गए। यह इसलिए होता है कि वायु शमित हो जाती है। उसी को लोग बोलचाल की भाषा मे कहते हैं कि जब डाट पडी तो हवा खिसकने लगी। आयुर्वेदज्ञो ने इस रहस्य का पता पहले ही पा लिया था। आज-कल भी नये पागलो का इलाज भय-प्रदर्शन से ही होता है। डाक्टर लोग उनको बिजली के करेण्ट[1] छुआकर भय दिखलाते है और इससे बहुत-से लोग चगे हो जाते है।

इन सब बातो को समझकर अपने को वातग्रस्त होने से बचाना चाहिए। इसी तरह कफग्रस्त और पित्तग्रस्त होने से भी। अब हम अन्य स्वास्थ्य-नाशक विषयो को लेते है।

विष सेवन

विष-सेवन से हमारा अभिप्राय उन विषो से है जिनको हम व्यसन-वश प्रतिदिन खाते हैं। मद्य की चर्चा हो चुकी है। दूसरा मुख्य विष तम्बाकू है। तम्बाकू के विषय मे शिकागो के एक शरीर-शास्त्री ने लिखा है कि उसमे होने वाले 'निकोटीन' नामक पदार्थ मे इतना विष होता है कि उसके एक औंस का $\frac{१}{४००}$ भाग यदि मनुष्य के रक्त मे इन्जेक्शन द्वारा मिला दिया जाए तो वह मर जाएगा। इसका $\frac{१}{३}$ भाग प्रत्येक सिगरेट मे रहता है। निकोटीन से हृदय की गति बढती है, चौबीस घटे मे सिगरेट पीने वाले के हृदय को तीस हजार बार अधिक धड़कना पड़ता है।[2]

---

1. Electric-shock treatment.

2 If less than four hundredth part of an ounce of Nicotine were injected into a man's blood, he would die, and there is about one-third of this quantity in every cigarette smoked Nicotine excites the heart to go faster. In the course of 24 hours, a

अंग्रेजी के प्रसिद्ध काम-शास्त्र विषयक विश्वकोष[1] मे लिखा है कि तम्बाकू से काम-शक्ति घट जाती है। बहुत-से नपुंसक जब किसी ओषधि से चंगे नही हुए तो उनसे सिगरेट का परित्याग करवाके देखा गया। परिणामत: वे पुन. पुरुषार्थी हो गए। उसमे एक लोक-प्रचलित उक्ति का उल्लेख है, जिसका अर्थ है कि तम्बाकू और स्त्रियां परस्पर शत्रु है, एक के प्रति अनुराग होने से दूसरे के प्रति अनुराग नष्ट हो जाता है।[2]

टाल्स्टाय का अनुभव था कि तम्बाकू से विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है। उनके अनुसार रूस के अधिकाश नरघातियो मे सिगरेट पीने के बाद ही हत्या करने का दुस्साहस उत्पन्न होता था। निकोटीन से मुख्यत: स्मरणशक्ति नष्ट होती है, फेफडे भ्रष्ट होते है और आहार-पाचन मे नष्ट होता है। तम्बाकू खाने या पीने से दातो की चमक जाती रहती है और मुख दुर्गन्धित हो जाता है। कम से कम सिगरेट एक भयकर व्यसन है। १६१६ के विश्वयुद्ध के कामुक जीवन पर अंग्रेजी मे एक प्रामाणिक ग्रथ[3] है। उसमे लिखा है कि फ्रास आदि देशो मे सिगरेट का अभाव हो जाने पर वहा की तरुणिया एक-एक सिगरेट लेकर अपना सतीत्व सिगरेटदाता को किराये पर दे देती थी। सिगरेट से उद्दण्डता और निर्लज्जता दोनो की भावनाएं जगती हैं।

पान को हम विषो मे ले सकते हैं। एक सीमा तक वह मुखरजक ही नही, कान्तिवर्द्धक, उद्दीपक और रक्तशोधक भी होता है। पर व्यसन बढने पर यह भूख को मारता है, रक्त को रूक्ष करता है और दातो को निर्बल करता है। पान की जड में भयकर विष होता है। उसके विषय में

---

smoker's heart may have to beat 30,000 extra time

—Dr. Steinhans (Chicago)

1 Encyclopaedia of Sex

2 Tobacco and woman are enemies A taste for one spoils the taste for the other.

3 Sexual Life during the World War.

प्रसिद्ध है कि उसका चूर्ण फाक लेने से स्त्रियो की गर्भधारण-शक्ति सदा-सर्वदा के लिए जाती रहती है। ऐसी दशा मे पान खाने का कुप्रभाव कम से कम स्त्रियो पर तो अवश्य पडता होगा। ऋतुकाल मे स्त्रियो को पान खाना वैद्यक में वर्जित है। विलासिनी स्त्रिया पान अधिक खाती हैं। उनकी गर्भधारण-शक्ति पर इसका प्रभाव अवश्य पडता होगा।

वनस्पति घी भी एक प्रकार का विष ही है। आजकल घी की जगह उसी का व्यवहार होता है। शुद्ध घी अमृत माना गया है। वह इतना विषघ्न होता है कि उससे सर्प-विष तक शमित हो जाता है। उससे आयुर्बल बढता है। उसका एक सस्कृत नाम ही आयु है। पुष्टि, कान्ति, मेधा बढाने में वह अप्रमेय है। वनस्पति घी उसका स्थान इन बातो मे नही ले सकता, हलवाई की दुकान मे भले ही ले ले। इस कृत्रिम घी से पाचन-शक्ति स्वय पच जाती है, पुस्त्व का सत्त्व निकल जाता है और दृष्टि का धीरे-धीरे लोप हो जाता है। जीवो पर इन बातो की वैज्ञानिक परीक्षा की गई है। दो-तीन पीढी के बाद उनके वशधर नपुसक और अधे मिलते है।

आलस्य

आलस्य भी स्वास्थ्य-नाशक होता है क्योकि उससे अनावश्यक स्थूलता बढती है, हृदय रक्त प्रसारित करने मे असमर्थ हो जाता है, और शरीर में भारीपन आ जाता है। आलसी दिन-भर पडा रहता है, इससे उसकी आयु तीव्रता से क्षीण होती है। वैज्ञानिक परीक्षा से यह ज्ञात होता है कि खडे या बैठे रहने पर हृदय को उतना नही धडकना पडता है, जितना कि लेटने पर।

सुप्रसिद्ध 'मेट्रोपॉलिटन बीमा कम्पनी' ने हिसाब लगाकर प्रकाशित किया है कि आत्महत्या का प्रधान कारण आलस्य है। आलस्य और अकर्मण्यता से ही यह प्रवृत्ति उठती है। उक्त कम्पनी की गणना के अनुसार क्षीणकाय व्यक्तियो की अपेक्षा मोटे आत्मघातियो की सख्या अधिक है।

आलस्य और स्थूलता, सरल आहार व परिश्रम से ही नष्ट होते है। प्रात काल मधु-मिश्रित या नीबू-मिश्रित पानी पीना इसमे गुण करता है। नहाने के पानी में एक नीबू निचोड़कर स्नान करने से भी लाभ होता है। उससे एक लाभ यह भी होता है कि चमड़े पर झुरियां नही पड़ती और त्वचा का रग निखरता है।

कोष्ठवद्धता

कोष्ठवद्धता के सम्बन्ध मे हम ऊपर कुछ लिख चुके है। यह रोग रक्त को दूपित करता है और शरीर को जीते-जी सडाता है। ज्वर आदि का जननी-जनक यही होता है। 'आंत भारी तो माथा भारी' की उक्ति सर्वविदित है। त्रिफला-सेवन इसकी एक अच्छी ओपधि है। आधुनिक उपचारो मे 'एनिमा' का प्रयोग सर्वोत्तम है।

आहार-विरह

ठीक समय पर अथवा क्षुधा-भर को आहार न प्राप्त होने से भी शरीर का नाश होता है। इमको प्रमाणित करने की आवश्यकता नही क्योकि भारतवर्ष मे असख्य आहार-विरही मिलते है, जिनकी दशा से इसके कुप्रभाव का अनुमान किया जा सकता है।

इसी प्रकार कई कारणो से स्वास्थ्य-नाश होता है, जिनमे से एक तो अस्वच्छ रहन-सहन और वाजार का गन्दा खाना है। मक्खियो से जितना नाश होता है उतना मानव-विनाश सभवतः तोप के गोलो से भी नही होता। दूपित जलवायु से भी स्वास्थ्य-नाश प्रत्यक्ष ही होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि जलवायु का प्रभाव शरीर पर ही नही, मस्तिष्क पर भी वहुत पडता है। उससे मनुष्य का स्वभाव ही वदल जाता है। वैज्ञानिक परीक्षा से देखा गया है कि आवश्यकता से अधिक शीत-सेवन से ज्ञान-तन्तु स्वच्छन्द हो जाते है और स्वभाव मे निर्लज्जता आ जाती है। उष्ण जलवायु से स्वभाव मे कर्कशता, झुझलाहट, आलस्य, थकावट, वेचैनी और स्नायविक शिथिलता उत्पन्न होती है और चित्त की एकाग्रता नष्ट होती है। यह ऑक्सीजन का खेल है।

स्वास्थ्य की परीक्षा

अन्त में हमें यही कहना है कि सब बातो को ध्यान मे रखकर अपने स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए और अपने शरीर को इतना समर्थ बनाना चाहिए कि वह औरो का नही, तो कम से कम अपना बोझ स्वय उठा सके। इसके लिए अपने त्रिमर्म—हृदय, मस्तिष्क, फेफडे—का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि वे ही प्रधान शरीर-सचालक हैं, और रक्त की रक्षा करनी चाहिए क्योकि सुश्रुत के शब्दो में रुधिर ही शरीर का मूल है; वही शरीर को धारण करता है। वास्तव मे, वही जीवन है। स्नायु-मडल सुदृढ़ रखना चाहिए, क्योकि वही शरीर-जाल को बुनते है। नाना उपायो से रोज स्वास्थ्य की परीक्षा करनी चाहिए। उदाहरणार्थ—सिर भारी हो, जीभ गन्दी हो तो आतो का भारीपन समझना चाहिए। अत्यधिक उत्तेजना या शिथिलता से स्नायु-दुर्बलता तथा लाल-पीले या जलनयुक्त मूत्र से अस्वास्थ्य और बिना फेन के मूत्र से पुरुषत्व-विनाश मानना चाहिए।

४. सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति

सुप्रसिद्ध नीतिकार भर्तृहरि ने लिखा है कि जिसके पास धन है वही कुलीन है, वही पण्डित, विद्वान्, गुणज्ञ, वक्ता एव रूपवान् माना जाता है, धन से सब गुणो को आश्रय मिलता है। वास्तव में धन ही मनुष्यों का ऐश्वर्यदाता, सहायक, बन्धु, सकट-मोचन और अलादीन का चिराग है। उसी से जीविका चलती है, प्रतिष्ठा बढती है, मनोरथो की पूर्ति होती है। अनुभवी व्यास ने सत्य ही कहा है कि धन का न होना पुरुष की मृत्यु है : 'पुरुषस्याऽधन वध' [उद्योग-पर्व] नीति के इस कथन को कौन शरीरधारी अस्वीकार करेगा कि निर्धनता ही सर्वाधिक कष्टदायिनी होती है : 'सर्वकष्टा दरिद्रता।'

द्रव्योपार्जन करना मनुष्य का एक व्यक्तिगत धर्म है, क्योंकि बिना उसके जीवन की क्रिया नहीं चल सकती। इस पृथ्वी का नाम वसुमती (अर्थात् धनवाली) है। इसमें जो वसुता नही प्राप्त करता वह भौतिक जीवन का आनन्द नहीं पा सकता। जो वसुमत् (धन-सम्पन्न) होता है, वही वसुमती का भोग करता है, जो वसुकीट (भिक्षुक) होता है, वह 'नानारत्ना वसुन्धरा' [कालिदास] में भी नरक का जीवन भोगता है। लौकिक जीवन की ऐसी ही व्यवस्था है।

धनोपार्जन एक बडा स्वार्थ ही नही बल्कि परमार्थ भी है। वह एक श्रेष्ठ राष्ट्र-धर्म है, राष्ट्र व्यक्तियो से ही बनते हैं। अतएव व्यक्तियो की सामूहिक सम्पन्नता-विपन्नता का प्रभाव राष्ट्र की दशा पर पडता है। जब देश धनधान्य से समृद्ध रहता है तो उसकी सभ्यता एव स्वतन्त्रता का विकास होता है, राष्ट्र शक्तिशाली होता है, समर्थ और शान्तिमय होता है। राजनीतिक परिस्थिति के ठीक पीछे आर्थिक परिस्थिति खड़ी मिलती

है। युद्धो मे भी सैन्य-बल के पीछे राष्ट्र का धन-बल ही रीढ बनता है। देश की आर्थिक स्थिति ठीक न हो तो सेनाए अधिक समय तक मैदान में खडी नही रह सकतीं। लोग जब भूखे रहते हैं तो राष्ट्र के नियम ढीले पड जाते हैं, लोक-मर्यादा टूट जाती है, विद्रोह होता है, अनाचार बढता है। 'क्षीणा नराः निष्करुणा भवन्ति' का अनुभव करके ब्रिटिश गवर्नमेण्ट भारतवर्ष से उजड चुकी है।

सभी दृष्टियो से धन-सचय करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। तत्त्व-ज्ञानियो का यह मत है कि धन से धर्म होता है और उससे सुख—'धनाद्धर्मं तत सुखम्।' वैरागियो की तरह धन को पाप का मूल मानना मूर्खता है। धन पाप का बाप नही होता, बल्कि उसका न होना मनुष्य से पाप कराता है। पाप की खेती निर्धनता ही मन में पनपती है, क्योकि तब कष्ट से उत्पन्न आसुओ की बरसात होती रहती है। निकम्मा आदमी अपने ही साथ नही, देश और समाज के साथ भी अपराध करता है, क्योकि वह स्वय कुछ न कमाकर दूसरे के धन का उपभोग करता है और राष्ट्रीय सम्पत्ति को क्षीण करता है। जो धन-सग्रह के लिए उद्यत रहता है, वह अपने पौरुष से स्वय तथा देश-समाज का भी कुछ न कुछ कल्याण करता है। यही मानिए कि धन से ही लोक-जीवन का कल्याण होता है। प्रकृति यही चाहती है कि आप निर्धन न बनें। शेखसादी के शब्दो मे : 'सूर्य-चन्द्र सब इसलिए कार्य-मग्न है कि आपको खाने के लिए रोटी मिलती रहे, धन मिलता रहे।'

धन-प्राप्ति के साधन

अब धन-प्राप्ति के साधनो पर विचार कीजिए। भाग्य से भी धन मिलता हुआ देखा जाता है, परन्तु भाग्य एक ऐसा बल है जिसपर किसी का स्वतन्त्र अधिकार नही होता। अतएव भाग्य के भरोसे अकर्मण्य बनना ठीक नही। तुलसी का मत है कि घर मे कल्पतरु एव कामधेनु के चित्र टाकने से विपत्ति-नाश नही होती : 'चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपत्ति नसावै'। कौटिल्य का भी मत है कि धन, धन से ही पैदा होता

है, तारे वेचारे क्या सहायता करेंगे : 'अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्र किं करिष्यन्ति तारका.'। हमें यही मानना चाहिए कि बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य से धन पैदा होता है और पैदा होने पर उससे उसी की वृद्धि होती है। परिश्रम पैसे का पिता है।

कार्य या परिश्रम व्यापार के रूप में भी हो सकता है और नौकरी के रूप मे भी। सेवा-वृत्ति को शास्त्रो ने हेय माना है। इसमें सन्देह नही कि यथेच्छ धन का अर्जन और उपभोग व्यापार से ही हो सकता है।

जो मम्पत्ति का पूर्ण उपभोग करना चाहे, उसे व्यवसाय को ही धनागम का साधन बनाना चाहिए। व्यवसाय चाहे छोटा ही हो, नौकरी से अधिक फलप्रद और आशाप्रद होना है। दासता में पराधीनता रहती है, इसलिए अपने को दूसरो के अनुकूल बनाने मे बड़ा कृत्रिम रूप बनाना पड़ता है।

इन बातो को ध्यान मे रखिए

परिस्थितिवश आप चाहे व्यापार करें या नौकरी, यदि आप उन्नति करना चाहते है तो इन बातो को ध्यान मे रखिए ·

१ किसी के हाथ अपने आत्माभिमान और अपनी नैतिकता को न वेचिए—चाहे आप नौकरी या व्यापार करते हो अथवा करने निकले हो, अपने मनुष्योचित आदर्शों को न भूलिए। नैतिक पतन होते ही मनुष्यता पतित हो जाती है। ऐसा कार्य न कीजिए जो आत्मा के प्रतिकूल हो। धन से सब कुछ खरीदा जा सकता है, परन्तु किसी भले आदमी की मान-मर्यादा नहीं खरीदी जा सकती।

२. दूसरों की दया-कृपा पर अवलम्बित न रहिए—दूसरो मे हम भाग्य को भी लेते है। भाग्य में अच्छी नौकरी मिल सकती है, अथवा व्यापार के लिए अच्छा अवसर प्राप्त हो सकता है, पर उसके उपयोग में उसकी (भाग्य की) सहायता काम नही देगी। आत्मयोग्यता से ही अच्छे पद या अच्छे अवसर का लाभ लिया जा सकता है। दूसरो में

हम मित्रो और बड़े आदमियो को भी लेते हैं। वे एक सीमा तक ही आपके सहायक हो सकते हैं। यदि आपमें आत्म-समर्थता न होगी तो वे आपकी रीढ नही बन सकते है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि 'भगवान् उन्ही को सहायता देता है, जो स्वावलम्बी होते हैं।'[1] एक सुप्रसिद्ध विलायती विचारक (सर विलियम टेम्पल) का यह अनुभवात्मक कथन इस सम्बन्ध मे याद रखने योग्य है :

"ऐसा व्यक्ति जो केवल ग्रथो का अनुवाद करता है, कभी कवि अर्थात् मेधावी नही हो सकता; ऐसा व्यक्ति जो केवल दूसरो के चित्रो के आधार पर चित्र बनाता है, कभी चित्रकार अर्थात् कलाकार नही हो सकता, ऐसा व्यक्ति जो केवल वायुगर्भित रबर की थैली के सहारे तैरता है, कभी तैराक अर्थात् पारगत नही हो सकता; उसी तरह जो लोग अपने व्यवसाय अर्थात् परिश्रम पर अवलम्बित न होकर केवल दूसरो की सहायता के भरोसे रहते हैं, वे सदैव दरिद्र अथवा-सकट मे ही रहेगे।"[2]—'काकी प्रभुता नहिं घटी पर घर गए रहीम।'

अतएव स्वावलम्बी बनिए; दूसरो का मुह न ताकिए, दूसरो का मुह ताकना श्वान-वृत्ति है। मुह देखने का आनन्द तभी आता है, जब दोनो ओर से हो, अर्थात् कोई आपकी उपयोगिता को देखे और आप उसकी जेब को सच्ची नजर से देखें।

३. भूलकर भी सतोष न कीजिए—साधुओ की दृष्टि मे 'सतोषः परम सुखम्' एक अच्छा सिद्धान्त हो सकता है, परन्तु सासारिक मनुष्य के लिए सतोष करने का अर्थ है जड होकर बैठ जाना। जड़ता या स्थिरता कम से कम लक्ष्मी को प्रिय नही है। वे महाचचला हैं। उनके साथ दौड़ने पर ही उनका साहचर्य प्राप्त होता है। उसी से आशा बनी रहती

---

1. God helps those who help themselves

2 A man that only translates shall never be a poet, nor a painter that only copies, nor a swimmer that swims always with bladder, so people that trust wholly on others' charity and without industry of their own will always be poor.

है और आशामय जीवन ही सबसे सुखी जीवन है । संतोषी होकर निराशावादी या निराशावादी होकर सतोषी न बनिए । इच्छाशक्ति को प्रबल और चैतन्य रखिए ।

४. भविष्य को देखिए—यदि आपमे आशा की एक भी चिनगारी है तो भविष्य को देखिए, क्योंकि आज के बाद का प्रत्येक क्षण आपको उसमे बिताना है । उसपर आपका कुछ अधिकार है और वह आपके बनाने से बन भी सकता है । समय से आगे सोचने-विचारनेवाला नेता ही अग्रगामी माना जाता है । अतएव यदि आप अपने क्षेत्र के नेता बनना चाहते हैं तो आज से दस वर्ष बाद का कार्यक्रम बनाकर तब चलिए, उसी तरह चलिए जैसे एक स्थान से दूसरे स्थान की रेल-यात्रा करते समय आप मार्ग की सारी तैयारी करके और निश्चित स्थान का टिकट लेकर चलते है । भविष्य को देखिए परन्तु अधकारमय भविष्य को नही ।

५. समय को पकडिए—समय सबसे बडा सेठ है । वह एक ऐसा सेठ है जो बड़ी-बडी जुल्फें रखकर चलता है और पीछे से खल्वाट है । सामने से पकडने पर ही वह पकड़ में आता है । उसके पीछे दौड़ने से अवसर हाथ से निकल जाता है और समय के पीछे रहनेवाला व्यक्ति बैठकर पछताने के सिवा कुछ नही कर सकता । अग्रेज़ी में एक कहावत है कि समय ही धन है ।[1]

हमारे शास्त्रो में भी महाकाल की बड़ी महिमा गाई गई है । उसका अभिप्राय यही है, कि समय बड़ा बली है, उसका सम्मान करना चाहिए। सम्मान-स्वागत आगे बढकर ही किया जाता है, पीठ पीछे प्राय: निन्दा ही होती है । समय की बलवत्ता इससे सिद्ध होती है कि वह सबको परिवर्तित एव व्यतीत करता है । वह आयु को भोगता है । काल-स्वामी सूर्य प्रत्येक दिन सबकी आयु का एक भाग लेकर तभी अस्त होता है । जब वह आपसे कुछ लेता है, तो बुद्धिमानी इसी में है कि आप भी उससे अपनी आयु का उचित मूल्य लें, अपनी वस्तु को व्यर्थ न जाने दें ।

1. Time is money.

अतएव एक-एक घण्टा और एक-एक क्षण को पकड़िए। पकडने का अर्थ है, प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ करते रहना। कुछ करते रहने का अर्थ खुराफात करना नही, वल्कि कोई न कोई उपयोगी कार्य करना है। वे क्षण ही आपके लिए मूल्यवान् हो जाएगे। बुद्धिमान् का एक घण्टे का जीवन मूर्ख के सम्पूर्ण जीवन के वरावर माना जाता है, क्योंकि बुद्धिमान् व्यक्ति उस एक घण्टे का उचित उपयोग करना जानता है और करता भी है। अतएव एक मिनट को भी व्यर्थ व्यतीत न होने दीजिए। आवश्यक कार्यो में 'कभी' की अपेक्षा 'अभी' को अधिक महत्त्व दीजिए। दुनिया बडी तेजी से भागती है, एक मिनट में वह कही से कही एक दूसरे वातावरण मे चली जाती है। अतएव यथासम्भव कामो को वादे पर न टालिए। तत्काल करने योग्य कामो को तत्काल कीजिए। कल का दिन अपने अनेक झझटो को लेकर आएगा, यही मानिए। 'शुभस्य शीघ्रम्' की नीति को अपनाइए।

स्वर्ण-सयोग की प्रतीक्षा न कीजिए। स्वर्ण-सयोग अपने-आप नही आ सकता। उसका वीज यदि आप आज वोइएगा तभी वह कल फला हुआ मिल सकता है। यही प्रकृति का नियम है। 'कल' का विधाता या पिता 'आज' आज ही निर्वल होगा तो उसका पुत्र 'कल' भी जन्म से निर्वल होगा। भविष्य के भरोसे वैठना मूर्खता है। भविष्य का थोड़ा भाग तो अपने प्रत्येक क्षण और प्रत्येक घण्टे के वाद तत्काल प्राप्त होता है। उसको अपने से दूर न मानना चाहिए और अपने लक्ष्य पर वही से चल पडना चाहिए जहां आप खड़े हैं। एक विद्वान् ने कहा है कि जीवन-यात्रा का मार्ग ठीक वही से प्रारम्भ होता है, जहा आप खड़े हैं।

भविष्य स्वर्ण-अवसर तभी वन सकता है जव कि आप स्वय उसके लिए तैयार मिलें। इगलैंड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री डिजरायली ने कहा है कि जव अवसर आए तव उसके लिए तैयार मिलना ही मनुष्य की

ने १५ जुलाई, १९४८ को राज्योद्‌घाटन करते हुए यह कहा था : "आधुनिक जगत्‌ प्राचीन जगत्‌ से भिन्न है, पहले हर चीज धीरे-धीरे निश्चित गति से चलती थी इसलिए अधिक अवकाश रहता था; अब एक दिन एक शताब्दी के बराबर हो गया है। देखते ही देखते कितने राज्य, कितने ही साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट होकर लुप्त हो गए; कौन कह सकता है कि समय के पख नही होते है और इसको देखते हुए समय की प्रतीक्षा मे बैठना या उसको गवाना कौन पसद करेगा ?"[1]

आधुनिक काल को देखिए जिसमे आपको रहना है। इस दृष्टि से देखिए कि यह वायुयान-युग है, बैलगाडी-युग नही। अल्प समय मे युक्ति या शक्ति अथवा दोनो से आप जितना अधिक कार्य कर सकेंगे उतना ही आपका मूल्य बढेगा। समय के इस बड़े विभाजन के ही नही, उसकी नवीन परिस्थितियो के प्रति भी सजग बनिए। सक्षेप मे, सूक्ष्म-दर्शी बनिए—समय के सम्बन्ध ही मे नहीं, प्रत्येक उपयोगी वस्तु के सम्बन्ध मे। देश-काल को सूक्ष्म दृष्टि से देखिए, प्रत्येक कार्य को सामयिकता और उपयोगिता की दृष्टि से देखिए।

७. मन की शक्तियो को चैतन्य रखिए—चाहे आप व्यवसायी हो अथवा कर्मचारी, अपने आत्मविश्वास को सदैव दृढ रखिए। अपने को असमर्थ न मानिए। जीवन की महान्‌ भूल वही होती है जहा मनुष्य अपने को असमर्थ और निस्सहाय मानकर हताश हो जाता है। हार मानने की मनोवृत्ति का त्याग करके उत्साही बनिए और यह निश्चय कीजिए कि आपको सफल बनना है, कुछ करके दिखाना है। निश्चय करके ही मनुष्य मे आत्म-बल आता है। अपनी कल्पना शक्ति को दौडाइए,

1. The world today is different from the world of yesterday. Things could move slowly and steadily in the old world where there was more leisure and less speed Today, one day is equal to a century See how overnight states have fallen and empires have vanished. Who can say then that time does not fly and that we can afford to wait.

परन्तु मत्रयोजन। कल्पना-शक्ति में भी बड़ी शक्ति है। आगे की सीढी वही ढूंढती है। उसके बाद विवेक का आश्रय लीजिए। वही आपकी कल्पना द्वारा ढूंढी हुई सीढियो मे ठीक सीढी का निर्णय कर सकेगा। अपनी स्मरणशक्ति को सवल बनाइए—परन्तु व्यर्थ की बातो को याद रखने के लिए नहीं। विवेकपूर्वक अनुभवसिद्ध उपयोगी बातो को ध्यान मे रखिए। अपने विचारों को इसका अभ्यस्त बनाइए कि वे किसी वस्तु के यथातथ्य रूप को तत्काल पहचान सकें। सफलता के लिए यथातथ्य ज्ञान, सफलता मे विश्वास और उच्च कल्पना-बल—इन तीनो का आश्रय लेना आवश्यक है। और सबसे अधिक आवश्यक है—साहस।

महर्षि व्यास ने महाभारत में लिखा है कि साहस ही में लक्ष्मी निवास करती है। भीरुता एक विनाशात्मक भावना है। जो भी बड़े-बड़े व्यवसाय आज खडे मिलते हैं, वे साहस से ही खडे किए गए थे। यदि आवश्यकता से अधिक सावधानी का ध्यान रखा जाता तो एक फैक्ट्री भी खडी नही हो सकती थी। रणक्षेत्र और व्यावसायिक क्षेत्र दोनो ही मे साहस की आवश्यकता होती है, क्योकि दोनो मे सघर्ष और प्रतियोगिता की भावना रहती है। आत्मरक्षा का विशेष ध्यान रखनेवाला व्यक्ति बहुत आगे नही जा सकता। यदि आप विजयी होना चाहते हैं तो बाहे चढाकर साहस के साथ कर्मक्षेत्र में खड़े होइए, परिस्थितियो से संघर्ष कीजिए और साथ ही धैर्यसहित जमे रहिए। साहस-धैर्य प्रायः कभी विफल नहीं होते। मन को इतना बलवान् बनाइए कि उद्देश्य की प्राप्ति तक मनोयोग ढीला न पड़े।

८. सहनशील और प्रयत्नशील बनिए—सहनशीलता धैर्य से ही आती है। उसका अर्थ यह नही है कि कोई आपका अपमान कर दे तो आप विष का घूंट पीकर बैठ जाए। उसका प्रयोजन है, स्थिरमति होकर शान्तिपूर्वक प्रत्येक बात को सुनना, समझना तथा विवाद के प्रसग को बचाना। सहनशील होकर प्रयत्नशील होने पर कार्य निर्विघ्न रूप से

समाप्त होता है।

९. व्यवहारकुशल बनिए—व्यापार मुख्यतः व्यवहार से चलता है। उसका एक सस्कृत पर्यायवाची शब्द ही व्यवहार है। व्यापारी को व्यवहारक कहते हैं। व्यवहार मे सत्य और विश्वास का सदैव ध्यान रखिए क्योकि इन्ही के द्वारा ससार का व्यापार चलता है। छल-कपट का व्यवहार अर्थ-नाशक होता है। किसी व्यवसाय की साख जम जाने पर बाद मे उसका नाम ही बिकता है। साख उखड़ जाने पर उसका सामान बिकता नही, नीलाम भले ही हो जाए। साख सच्चे व्यवहार से जमती है। व्यापार में कृत्रिमता की मिलावट वही तक कीजिए जहा तक अनिवार्य है। धोखा देना लक्ष्मी को डडे मारकर घर से खदेडना है। विश्वासपात्रता लक्ष्मी की मां है।

व्यक्तिगत रूप से भी व्यवहारकुशल होना अर्थ-सिद्धि का प्रथम सोपान है। व्यवहार के सौजन्य से कौन नही वश मे होता ! लिवरपूल के एक सुप्रसिद्ध व्यापारी से किसी ने पूछा कि आपने इतना धन किस व्यापार से कमाया ? उसने उत्तर दिया कि केवल एक वस्तु के व्यापार से, जिसको आप भी कर सकते है; वह है सौजन्य, विनम्रता। अमरीका के धनकुबेर रॉकफेलर ने कहा है कि व्यवहारकुशलता उसी प्रकार एक खरीदने योग्य वस्तु है जैसे चीनी या कॉफी ; और मैं उस योग्यता के लिए ससार की किसी भी वस्तु से अधिक मूल्य देने को तैयार हू।[1]

धन कमाने के लिए विद्वान् होना उतना आवश्यक नही जितना व्यवहारकुशल।

१०. सिद्धहस्त बनिए—धन ज्ञान से नही, ज्ञान के प्रयोग से मिलता है। अतएव शुद्ध ज्ञानी न बनकर कर्मयोगी बनिए। सक्षेप मे

---

1. The ability to deal with people is as purchasable a commodity as sugar or coffee, and I will pay more for that ability than for any other under the sun.

—Rockfeller

योगी बनिए, ऋषि बनिए, आर्य बनिए और शाक्त बनिए—तभी धन मिल सकता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मन्दिर में बैठकर 'सबके दाता राम' से धन मांगिए। इन शब्दो से भड़कने की आवश्यकता नही है। कार्यकुशलता को ही योग कहते है : 'योग.कर्मसु कौशलम्।' और गीता के अनुसार जीवन-धारण के लिए शारीरिक व्यापार का नाम कर्म है। योग कोई जादू नही है। ऋषि 'ऋष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है गति, और व्याकरण पण्डितो के मत से गति का अर्थ है ज्ञान, गमन और प्राप्ति। आर्य भी 'ऋ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है गति। जिसके द्वारा कर्म सम्पन्न हो—योग्यता, सामर्थ्य—वही शक्ति है। उसकी साधना करनेवाला शाक्त है।

कार्य द्वारा ही ज्ञान और शक्ति का विज्ञापन हो सकता है और कम से कम इस विज्ञान के युग में उसी से धन प्राप्त हो सकता है। अतएव केवल ज्ञान-श्रेष्ठता पर विश्वास करके न बैठिए। योजनानुसार हाथों को चलाइए और विद्वान् व्यास के इस नीति-वाक्य को ध्यान मे रखिए कि कामकाजी आदमी बलवान् और धनवान् होता है, इसमें सन्देह नही : 'पाणिवन्तो बलवन्तो धनवन्तो न संशयः।'

११. रुचि और योग्यता के अनुकूल लगन से कार्य कीजिए—पहली बात तो यह है कि आप ऐसे व्यवसाय को ही यथासम्भव चुनिए जो आपकी रुचि और योग्यता के अनुकूल हो। ऐसा न होगा तो आप उस व्यक्ति की तरह प्रतीत होगे जो मंगनी का ढीला-ढाला कोट पहनकर मेला देखने जाता है। अतएव अपने नाप का ही कपड़ा पहनिए। दूसरे, जिस कार्य को कीजिए, लगन, एकाग्रता और अध्यवसाय से कीजिए। समुद्र में डुबकी लगाने से जिस प्रकार मोती मिलता है, उसी प्रकार काम मे डूबने या लीन होने से धन मिलता है। प्रत्येक कार्य को करते समय सुरुचि-सम्पन्नता का ध्यान रखना रखिए। मनुष्य स्वभाव से ही सौन्दर्य-प्रेमी होता है।

सुरुचि और तन्मयता से किया हुआ प्रत्येक कार्य प्रशंसनीय, सफल

एव धनद होता है। तन्मयता में आप एडिसन का आदर्श सामने रखिए। एडिसन ने अपने सत्तर वर्ष के जीवन मे पन्द्रह सौ नये आविष्कारो को पेटेण्ट कराया था। वह एक ही धुन में लगा रहता था और किसी सभा-सोसाइटी या कमेटी मे भाग नही लेता था। लक्षपति होने पर भी वह धन-प्रतिष्ठा की चिन्ता नही करता था, यद्यपि दोनो उसके पीछे दौडते थे। समस्याओ का हल करना ही उसका व्यसन था और उसके पीछे वह एकाग्रचित्त होकर अनवरत उद्यम करता था। परिणाम सर्वविदित है। निरन्तर उद्योगी मनुष्य सब कुछ कर सकता है, और काम करनेवाले से काम स्वय डरकर सरल हो जाता है'—ऐसा उद्योगशील रूसियो का कहना है।

१२. गुण-सग्रह कीजिए और असाधारण बनिए—यदि आप निर्धन होकर भी गुणी है तो कोई न कोई गुण-ग्राहक आपको मिल ही जाएगा। ईश्वर भी सगुण होने पर, चाहे वह राम-कृष्ण के रूप में हो अथवा ईसा-मुहम्मद के रूप मे, अधिक लोक-वन्दित होता है, फिर मनुष्य का तो कहना ही क्या है! गुणो का सग्रह सदैव लाभप्रद होता है। गुण ही रुपये का जन्म-स्थान है। नये गुणो का सग्रह कीजिए और किसी एक विषय के विशेषज्ञ बनिए, तभी आप सर्वसाधारण से ऊंचे गिने जाएगे और आकर्षण के केन्द्र होगे। किसी कार्य मे दक्ष होने से जीविका का भय नही रहता। आत्मसबल, योग्यता और अभ्यास—यही लक्ष्मी-मन्दिर के सिद्ध सोपान है।

१३. सेवाभाव को अपनाइए—आप किसी भी स्थिति मे हो, सेवा द्वारा दूसरो को वश मे करके उनसे लाभ ले सकते है। समाज मे सेवा का मूल्य अवश्य मिलता है। सेवा से मनुष्य की उपयोगिता सिद्ध होती है और उसी के अनुसार प्रधानता मिलती है। शुक्राचार्य ने लिखा है कि समय पर यथोचित सेवा करने से अप्रधान भी प्रधान हो जाता है और सेवा मे आलस्य करने या चूक जाने से प्रधान भी अप्रधान हो जाता है.

---

1. Job fears the craftsman.

अप्रधान. प्रधान: स्यात्कालेनाऽत्यन्तसेवनात् ।
प्रधानोऽप्यप्रधान: स्यात्सेवालस्यादिना यत: ।। (शुक्रनीति)

यदि आप स्वतन्त्र व्यापारी हैं तो भी सेवा-भाव को न त्यागिए। हेनरी फोर्ड ने एक भाषण में कहा था कि इस युग के बडे-बडे व्यवसायी जनता के सेवक[1] ही होकर रह सकते हैं। क्योंकि जनता जब उनकी चीजो की कद्र करेगी तभी बाज़ार मे उनकी खपत होगी; जनता ही मालिक बनकर उनको पैसे देती है। अब वह युग बीतता जा रहा है जब कि लोग अर्थ-पिशाच बनकर जनता का रक्त चूस सकते थे। जनता की सरक्षता मे ही अब व्यापार का विकास हो सकता है। यदि आप नौकरी करते है तब तो सेवा ही आपकी पूजी है।

१४. अर्थ-शुद्धि को धर्म मानिए—प्राचीन शास्त्रकारो के मत से अर्थ-शुद्धि ही प्रधान शुद्धि है। पैसे के विषय मे निष्कलक रहना सचमुच बडा कठिन है। चोरी न करना ही अर्थ-शुद्धि के अन्तर्गत नही आता। उसका अर्थ है—धन का दुरुपयोग न करना, लोभ न करना, कामचोरी न करना और अनुचित साधनो से धन-सग्रह करने का प्रयत्न न करना। अर्थ-शुद्धि न होने से धन कभी ठहरता नही, इसको सत्य मानिए। धन के सम्बन्ध मे जो साफ-सुथरे नही होते, वे प्राय. धन-दास होते है, धन-स्वामी नही। इसकी परीक्षा आप इसी से कर लीजिए कि कोई चोर, डाकू या रिश्वती थानेदार अपने पाप-अर्जित धन को भोगता हुआ नही मिलता।

१५. आसन के बली बनिए—स्थान-बल एक बडा बल है। इसको इसी से समझिए कि जब तक बाल आपके सिर मे रहते है तब तक आप उनको सवारते हैं, तेल लगाते हैं, उनसे अपनी सौंदर्यवृद्धि करते है। यही नहीं, बाप बच्चो के सिर सूघते है। वही बाल जब काट डाले जाते हैं तो अशुद्ध और गन्दे मानकर फेंक दिए जाते है। यही दशा मनुष्यो की है। जब तक वह किसी पद पर, गद्दी पर, कुर्सी पर बैठा रहता है, तब तक

1. Public servant.

उसकी मर्यादा बनी रहती है, उसकी कद्र होती है। स्थान रिक्त होते ही उसकी महिमा घट जाती है। इसलिए शास्त्रो का यह उपदेश है कि स्थान का त्याग मत करो · 'सस्थान न त्यजेत्।' महाभारतकार ने लिखा है कि एक पैर को जमाकर तभी बुद्धिमान लोग दूसरे पैर को आगे बढाते हैं; आगे के स्थान की परीक्षा किए बिना पहले के स्थान को नही त्यागते :

तिष्ठत्येकेन पादेन चलत्येकेन बुद्धिमान्।
न परीक्ष्य पर स्थान पूर्वमायतन त्यजेत्॥ (व्यास)

१६. भवसागर का मथन कीजिए—इसको व्यावहारिक दृष्टि से सत्य मानिए कि विष्णु जैसे सर्वशक्तिमान् को भी समुद्र-मथन से ही लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी। परिश्रम के बिना अर्थ-प्राप्ति नही हो सकती। शास्त्र मे लिखा है कि धन की कामना अग्नि से करनी चाहिए : 'धन-मिच्छेत् हुताशनात्।' अग्नि को धनदायी और धनजय कहते भी है। इसका अर्थ यह नही है कि हाथ जोडकर अगीठी के सामने बैठिए तो धन बरसने लगेगा। अर्थ स्पष्ट है। देखिए तो पता चलेगा कि कितने ही धन-प्रवर्द्धक कर्म अग्नि की सहायता से होते हैं। दूसरा अर्थ यह है कि शरीर की अग्नि अर्थात् परिश्रम की अग्नि उद्दीप्त होने से ही धन की प्राप्ति होती है। पैसे मे गरमी होती है, यही एक प्रमाण है कि उसमें अग्नि होती है। शब्दो पर न जाइए, भाव को देखिए। पसीना बहाने से जो पैसा मिलता है, वही पचता है। बिना पसीना बहाए प्राप्त हुए पैसे की गरमी असह्य हो जाती है, उससे दिमाग मे चक्कर आता है। साररूप में यही समझिए कि बिना द्रवित हुए द्रव्य नही मिलता। अतएव मन से द्रवित—विनम्र—बनिए और शरीर से श्रम-जल द्रवित कीजिए। परिश्रम से मनुष्य की श्री बढती है; श्री ही नही उससे सहयोगिता की भावना भी बढती है। मनोवैज्ञानिक का कथन है कि परिश्रमी लोग कम सघर्ष, कलह करते हैं। कलह के मूल बुद्धि-व्यसनी और अकर्मण्य लोग

होते हैं। अतएव परिश्रमी व्यक्ति समाज-सुधारक भी होता है यही गौरव क्या कम है !

आवश्यकता से अधिक विश्राम न कीजिए, क्योकि वह श्रम-शक्ति का नाशक होता है। एक अमरीकन लेखक ने लिखा है कि अमरीका के नगर जो इतने धन-सम्पन्न लगते हैं उसका कारण यह है कि वहा बैठने का कोई स्थान नही है।[1] इस कथन की यथार्थता को समझने के लिए इस देश के किसी ऐसे दो नगरों की तुलना कर लीजिए जिनमे से एक व्यवसाय का केन्द्र हो और दूसरा सैरसपाटे का स्थान हो। हमारे कहने का अभिप्राय यही है कि कर्मक्षेत्र मे खड़े रहने से सम्पन्नता बढ़ती है।

१७. कार्यसिद्धि को महत्त्व दीजिए—कार्य की कठिनाइयो, विघ्न-बाधाओं को विशेष महत्त्व न दीजिए। शुरू करते समय साधारण कार्य भी कठिन लगता है, क्योकि सहजसाध्य कुछ भी नही है और हल हो जाने पर बडी-बड़ी समस्याए भी सरल लगती हैं। दो जर्मन कहावतें है—एक का अर्थ है कि हरएक कार्य का आरम्भ कठिन होता है।[2] दूसरी का अर्थ यह है कि समस्या हल हो जाने पर सरल लगती है।[3] इनको ध्यान मे रखिए। ससार मे सफलता ही मान्य होती है—चाहे वह पेड़ की हो, चाहे कार्य की, चाहे मनुष्य की। अतएव सफल होने की चेष्टा कीजिए। यदि किसी कार्य में आपके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति कभी सफल हो चुका है तो आप भी अवश्य सफल होगे—यदि उद्योग करें तो ! 'करत-करत अभ्यास के जडमति होत सुजान !'

१८. दैनिक आय-व्यय का चिन्तन कीजिए—जीवन के अन्त मे अथवा साल के अन्त मे हिसाब-किताब मिलाने की आदत न डालिए। रोज देखिए कि आय कितनी है, कैसे बढ सकती है; व्यय कितना है, कैसे घट

---

1. The reason American cities are prosperous is that there is no place to sit down.

2. All beginning is difficult.

3. The problem when solved becomes simple.

सकता है। प्रातःकाल इस पर विचार करके अपना कार्यक्रम बनाइए और उस योजना के अनुसार दिन-भर कार्य करके सन्ध्या मे देखिए कि आप लाभ में है या हानि में। अपनी परिस्थिति को रोज तौलिए। आपकी कमाई का वही हिस्सा अधिक मूल्यवान् है जो उचित व्यय के बाद बैंक में पहुचता है। आपत्ति के समय वही काम आता है और शास्त्र का वचन है कि आपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए. 'आपदर्थे धन रक्षेत्।' यदि आपके पास पैसा हो तो बचाना सीखिए और न हो तो कमाकर बचाना सीखिए। यह तभी सम्भव है जब आप रोज इस प्रश्न पर विचार करें। इस सम्बन्ध में चाणक्य मुनि का यह श्लोक ध्यान मे रखने योग्य है :

क. कालः कानि मित्राणि को देशः को व्ययागमौ।
को वाहम् का च मे शक्तिरिति चिन्त्य मुहुर्मुहुः॥

—कैसा समय है, कौन-कौन सहायक है, कैसा देश है; आय-व्यय कितना है, मैं कौन हू, मुझमे कितनी सामर्थ्यशक्ति है—इनका चिन्तन बार-बार करना चाहिए।

१९ लेन-देन में सावधान रहिए—शुक्राचार्य ने लिखा है कि धन का देना मित्रता का कारण होता है, परन्तु वापस लेना शत्रुता का : 'धन मैत्रीकर दाने चादाने शत्रुकारकम्।'

ऋण के लेन-देन में यही होता है। 'उधार दीजे, दुश्मन कीजे' की लोकोक्ति बहुत प्रसिद्ध ही नही, बहुत भोगी हुई भी है। अतएव यथा-सम्भव न तो ऋण दीजिए और न लीजिए। ऋण लेते ही तुलसी की यह उक्ति : 'आव गया आदर गया, नैनन गया सनेह'—पूर्णतया चरितार्थ होती है।

२०. दान से धन की वृद्धि होती है—यह एक अलौकिक किन्तु प्राचीनकाल से बहुतों द्वारा परीक्षित सत्य है कि दान से धन बढता है। आपकी आय कितनी भी कम हो, परन्तु यदि आप उसमे से कुछ सुपात्र को दे दें तो उससे पुण्य का नही तो कम से कम आत्म-बल का सचय

अवश्य होता है और मन में यह भावना उठती है कि पैसा कुछ धर्मार्थ हुआ, दूसरे, लोक-प्रतिष्ठा मिलती है। बड़े पैमाने पर देखिए तो ज्ञात होगा कि दान द्वारा प्रकारान्तर से आर्थिक लाभ होता है। बिडला को लीजिए जो दान के लिए प्रसिद्ध है। दान से बिड़ला के नाम का जो विज्ञापन होता है, उससे जनता मे उनके व्यापार के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। यह अनुराग और यश वे कोरा विज्ञापन करके नही कमा सकते थे। उनकी बहुत-सी वस्तुए तो बिडला नाम की लोकप्रियता के कारण बिकती हैं।

२१. धनी का भेस न बनाइए—अर्थात् अवध के ताल्लुकेदारो की तरह रईसी का मिथ्या विज्ञापन मत कीजिए। जैसी आपकी आर्थिक स्थिति है, उसी के अनुसार अपना रहन-सहन बनाइए।

२२. बनिये की तरह बनिए—धन कमाना है तो पडित की तरह ज्ञानी और भावुक तथा ठाकुर की तरह अक्खड़ न बनकर बनिये की तरह सरल, मधुर, सावधान और 'अर्थंकरी विद्या' के जानकर बनिए। दार्शनिक बुद्धि अथवा धनुर्वेद के ज्ञान से नही बल्कि वणिक्-बुद्धि से ही रुपया आता है। बनिया एक-एक पैसे को जिस प्रकार पकडता है, उसी प्रकार पकड़िए। देशी बनिया बनना न पसन्द हो तो अग्रेज़ बनिये की तरह बनिए जो 'सात समुदर पार' भारतवर्ष में आकर व्यवसाय करते-करते बनिये से राजा बन गया था।

२३. इन पांच नीति-वाक्यो को ध्यान मे रखिए :

१

श्रीर्मङ्गलात्प्रभवति प्रागल्भ्यात् सप्रवर्धते।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूल सयमात्प्रतितिष्ठति॥ (विदुर)

—धन उत्तम कर्मो से उत्पन्न होता है, प्रगल्भता (साहस, योग्यता, कीर्ति, वेग, दृढ निश्चय) से बढ़ता है, चतुराई से फूलता-फलता है और संयम से सुरक्षित होता है।

२

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥ (विदुर)

—जैसे भौंरा विना पुष्प को नष्ट किए उसमे से मधु ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी धन के मूल साधन को नष्ट किए विना उसमें से धन ग्रहण करना चाहिए।

३

कारणात् प्रियतामेति द्वेषो भवति कारणात्।
अर्थार्थी जीवलोकोऽय न कश्चित्कस्यचित्प्रियः॥ (महाभारत)

—कारण से ही लोगो मे प्रीति और कारण से ही द्वेष की उत्पत्ति होती है ; अर्थार्थी संसार में कोई (निष्प्रयोजन) किसी का प्रिय नही है।

४

प्रसारयति कृत्यानि, सर्वत्र विचिकित्सते।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ॥ (महाभारत)

—जो कार्य को लम्बा वना दे, सबपर सदेह करे, शीघ्रता के कार्य मे देर लगाए, वही मूढ़ कहा जाता है।

५

कार्ये कर्मणि निर्दिष्टे यो बहून्यपि साधयेत्।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति॥
न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः।
यो ह्यर्थं वहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने॥ (रामायण)

—(लका मे हनुमान की उक्ति) कर्तव्य-कर्म के पूरा हो जाने पर उससे अविरुद्ध अन्य कार्यों को भी जो साधता है, वही अच्छा कार्यकर्ता है। जो अर्थ-सिद्धि करने के बहुत-से उपाय जानता है, वही अर्थ के साधन मे समर्थ हो सकता है।

ऊपर के श्लोको पर विशेष रूप से कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। हां, यह समझ लेना चाहिए कि अर्थ का अभिप्राय यहां कार्य

से है। कार्य की सफलता के मूल्य-स्वरूप धन या मान ही मिलते हैं।

उपर्युक्त सभी बातो को ध्यान में रखते हुए, अब हमे कुछ ऐसी अन्य आवश्यक बातो पर भी विचार करना चाहिए जो भिन्न-भिन्न उपायों से द्रव्योपार्जन करनेवालो के काम की हैं।

१. यदि आप व्यापारी या व्यापार-प्रेमी हैं

पूंजी, परिश्रम और योग्यता—व्यापार के लिए या तो पूंजी और परिश्रम की आवश्यकता होती है, अथवा योग्यता और परिश्रम की। यदि आपके पास पूंजी है तो देखिए कि किस काम में उसको लगाने से वह फलित होगी। रचनात्मक बुद्धि से विचार कीजिए। लोगो की आवश्यकता और रुचि को देखिए। आशा, विश्वास, उत्साह को जागरित करके अपनी इच्छाओं को क्रियात्मक रूप दीजिए और मूलधन के साथ अपने तथा दूसरो के परिश्रम को संयुक्त कीजिए। यदि पूजी नही है तो योग्यता से आप दूसरो द्वारा धन लगवाकर स्वय अपने परिश्रम से व्यापारी बनने का उद्योग कीजिए। बड़ी पूजी हैतो यन्त्रो का साधन लीजिए; थोड़ी पूंजी या योग्यता का ही सम्बल हो तो घरेलू उद्योग-धंधो को अपनाइए और क्रमशः बढिए। गाधीजी के इस उपदेश को याद रखिए कि तुम बढना चाहते हो तो नीचे से शुरू करो।[1]

प्रतियोगिता के लिए तैयार रहिए—फौजी काम और व्यापारिक कार्य-प्रणाली मे बहुत कुछ समता होती है। एक को हिंसात्मक युद्ध कह सकते है तो दूसरे को अहिंसात्मक। फौज से देश पर अधिकार किया जाता है; व्यापार से बाज़ार पर। दोनों में सगठन, अनुशासन और कौशल की आवश्यकता पड़ती है। फौजें बैंड बजाती हुई आगे मार्च करती है और व्यापार विज्ञापन करता हुआ बढ़ता है। जिस प्रकार आमने-सामने की दो फौजो मे प्रतियोगिता होती है, उसी प्रकार दो व्यापारों में भी होती है। अवसर का उपयोग भी दोनों में समान रूप से होता है, फौज के भिन्न-भिन्न अग जैसे एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परस्पर सहयोग

1. If you want to start, start from below.

करते हुए एक लक्ष्य की ओर बढते हैं।

इन बातो को समझते हुए आप सैनिक उत्साह के साथ व्यापार मे पडिए। नये ढग के अस्त्रो से जैसे विजय-सिद्धि होती है, वैसे ही नई वस्तुओ के आविष्कार, आकर्षक तथा उपयोगी वस्तुओ के निर्माण से अर्थ-सिद्धि होती है। नई सूझ के साथ समय पर सबसे पहले नई वस्तु निर्माण करके और नये ढग से विज्ञापन करके ही उसका प्रचार बढाया जा सकता है। इसे याद रखिए कि यह 'प्रोपेगैण्डा' (प्रचार) का युग है। प्रोपेगैण्डा का मूल रहस्य है, पुनरुक्ति। बार-बार एक ही बात को प्रकाशित करने से वह लोगो के मन मे बैठ जाती है। अपनी एक विशिष्ट वस्तु रखिए और उसी को सर्वोत्तम प्रमाणित करने की बार-बार चेष्टा कीजिए। अपनी सभी वस्तुओ को सर्वोत्तम बनाने या बताने की यदि आप चेष्टा करेंगे तो असफल होगे। एक ही वस्तु को विशिष्ट बनाकर उसीके प्रचार पर अपनी शक्तियो को केन्द्रित कीजिए। उसी के पीछे अन्य वस्तुए भी चलेंगी जैसे गाधीजी की देश-सेवा के पीछे समस्त लोक-सम्मतिया। उनके निर्माण की अपेक्षा उनके विक्रय पर अधिक ध्यान दीजिए। रुपया उसी से आता है।

व्यापार लोकप्रियता से बढ़ता है—अपने व्यापार को व्यापक बनाने के लिए जनता की सहानुभूति प्राप्त कीजिए। उसके लिए सर्वप्रथम तो जनता की माग का ध्यान रखिए। माग के अनुसार वस्तुए देकर उनके मूल्य के बहाने जनता को लूटने का प्रयास न कीजिए। जनता तभी सतुष्ट होती है जब वह समझती है कि उसको उसके पैसे से अधिक मूल्यवान् वस्तु मिली है अथवा मूल्य के अनुसार ठीक वस्तु मिली है। इसीलिए थोडा त्याग कीजिए। दूसरो को जितनी छूट आप देगे, उतना ही लाभ आपको मिलेगा। यदि लोगो से आप कम से कम लाभ लेंगे तो उनका पैसा बचेगा और वह पैसा प्रकारान्तर से फिर आप ही के पास पहुचेगा। एक बार सतुष्ट होकर वे आपके स्थायी ग्राहक बन जाएगे। थोड़े लाभ के साथ अधिक बिक्री कैसे हो सकती है, इसी को ध्यान में रखिए। स्थायी लाभ के लिए

क्षणिक लोभ का त्याग करना अत्यावश्यक है।

सब वस्तुओं में उपयोगिता—किसी भी वस्तु को उपयोगी बनाया जा सकता है। यदि आप लोगों की सामयिक आवश्यकताओं और रुचियों को यथासमय ही भापकर उनके अनुकूल व्यापार करें तो किसी भी वस्तु का उपयोग कर सकते हैं। गत युद्ध मे जब वस्तु-संकट था तो चतुर लोगो ने छोटी-छोटी वस्तुओं को भी उपयोगी बनाकर काफी रुपये कमाए थे। जॉन-ट्रैल नाम के व्यक्ति ने युद्ध छिड़ते ही हज़ारों रुपये के पुराने कागज़ खरीद लिए थे क्योंकि उसने समझ लिया था कि शीघ्र ही कागज न मिलने से पुड़ियों और कागजी थैलियों के लिए उनकी आवश्यकता होगी। परिणामत. युद्ध में उसने उन्हीं अखबारी कागजों से लाखों रुपये कमाए। इसी तरह आलपिन की कमी को देखकर कुछ लोगो ने बबूल के कांटों का व्यवसाय कर लिया था। ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं। उक्त जॉन-ट्रैल का मत है कि प्रत्येक पदार्थ से रुपया निकल सकता है, यदि आपको यह ज्ञात हो कि किसको उसकी आवश्यकता है।[1]

व्यापारी अवसर का उपयोग इसी प्रकार करता है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि जो आगा-पीछा करता है वह चूक जाता है[2]: विचार दृढ़ करके जो भी 'हथियार' मिले उसको लेकर मैदान में कूद पड़ना चाहिए।

प्रबन्ध—प्रबन्ध के सम्बन्ध मे ऊपर भी बहुत कुछ कहा जा चुका है। कार्यालय के भीतरी प्रबन्ध के सम्बन्ध मे कुछ और बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि प्रत्येक व्यापार का एक निश्चित कार्यक्रम होता है, एक सुसगठित कार्य-प्रणाली होती है। उसमे अस्त-व्यस्तता होने से एकसूत्रता नही होती। संघ-शक्ति की दृढ़ता से ही सदा सफलता होती है। बड़े व्यापार को विभागो मे बाटकर योग्य व्यक्तियो

---

1. Everything is worth money if you know who wants it.
—John Traille,

2. He who hesitates is lost.

को उत्तरदायित्व देना चाहिए और उसपर विश्वास भी करना चाहिए। कार्यकुशल उपायज्ञ ही परिश्रमी लोगो से काम ले सकते हैं और प्रबन्धक की योग्यता इसी मे मानी जाती है कि वह तीन आदमियो से पूरे तीन आदमियो का काम ले सके।

कर्मचारियो के साथ सद्व्यवहार रखने से उनका पूर्ण सहयोग मिल सकता है। उनको झूठी आशा मे न रखकर योग्यता और परिश्रम के अनुसार सम्मानपूर्वक वेतन देना चाहिए। उनपर यह न प्रकट होने देना चाहिए कि उनके साथ आप कोई मेहरबानी कर रहे है। वेतन मे अना-वश्यक काट-कपट न करके यथासम्भव पुरस्कार देकर सबको उत्साहित करना चाहिए। छोटे व्यापार में अधिक विभाजन न करना ही ठीक होता है। प्रत्येक दशा मे कर्मचारियो में यह भाव भरना चाहिए कि वह उनका अपना काम है और यदि उनके द्वारा प्रस्तुत की हुई वस्तुओ का अच्छा आदर होगा तो लाभ में उनको भी हिस्सा मिलेगा। जहा पैसे के लिए ही सब एकत्रित होते है, वहा पैसे से ही सब सन्तुष्ट हो सकते है। छोटे से छोटे व्यक्ति को उपयुक्त कार्य मे लगाकर और उसको सन्तुष्ट बनाकर उससे लाभ लिया जा सकता है। व्यापार उसी प्रकार सहयोग से व्यव-स्थित होता है जैसे दोनो हाथो की उगलियो से गाठ बधती है।

कम से कम लागत से अधिक वस्तु निर्माण करना और अपव्यय को रोकना, यह भी प्रबन्ध-कुशलता का प्रधान अग है। सभी वस्तुओ का कही उपयोग करके उनकी व्यर्थता को बचाया जा सकता है।

प्रबन्ध ही के अन्तर्गत हिसाब-किताब और पत्र-व्यवहार को ले सकते हैं। आपका हिसाब-किताब ही आपके व्यापार का दर्पण है, इसको न भूलिए। उसका सुव्यवस्थित रहना और ठीक रहना नितान्त आवश्यक है। पत्र-व्यवहार तो व्यापार की जान है। पत्रो में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे स्पष्ट, सरल और यथार्थता से पूर्ण हो। व्यापार मे भावुकता का स्थान कही भी नही है; चाहे पत्र-व्यवहार हो या बातचीत का प्रसंग हो, इस बात का ध्यान रखिए कि कम शब्द और अधिक काम

—यही व्यापारिक क्षेत्र का सर्वमान्य सिद्धान्त है। व्यापार में उन्ही विचारों का मान होता है जो तर्कसम्मत और सार्थक हों।

मुनि की तरह ध्यान लगाइए—यदि आप व्यापार खोलकर बैठे हुए हैं तो दूरदर्शी बनिए, तत्काल लाभ की आशा न कीजिए, मुनि की तरह आशा-विश्वास के साथ धन की प्रतीक्षा कीजिए, साधना कीजिए। छाता कड़ी करके बैठिए, बडे-बडे आघात पड़ सकते है। जो भी बडे व्यापारी इस समय हैं वे यो ही नही बाजार में खडे हैं। भवसागर की बड़ी-बडी लहरें उनसे रोज टकराती है, परन्तु वे अपने आसन से डिगते नही। जो जितना बडा होता है उसको समय के उतने ही प्रबल धक्के लगते है। निरन्तर उद्योग से ही पैसे की धारा अखण्ड बनती है और वही व्यवसाय का प्रयोजन है। यदि आप एक बार भी परिस्थितियो से हार मानकर बैठ गए तो वे बड़ी निर्दयता से सपरिवार आपके ऊपर हमला करेंगी क्योकि उनकी आपकी शत्रुता तो प्रतिदिन चलती है।

राष्ट्र-सम्पत्ति की वृद्धिकीजिए—व्यापार से राष्ट्र-सम्पत्ति की वृद्धि कीजिए—व्यापार द्वारा जो सबसे बड़ा सार्वजनिक कार्य होता है वह यह है कि उससे देश-सेवा उच्चस्तर पर हो सकती है। इस बात को ध्यान मे रखिए कि वस्तुओ के बदले बाहर से जो रुपया देश मे पहुंचता है, उसी से राष्ट्रीय धन की वृद्धि होती है। अतएव ऐसी वस्तुए तैयार कीजिए जो विदेशो में बिक सकें। साथ ही, ऐसी वस्तुएं तैयार कीजिए जिनकी यहा माग हो और जो विदेशो से यहा आती हों। इस तरह राष्ट्र का धन सुरक्षित रहेगा।

२. यदि आप अधिकारी हैं

यदि आप किसी व्यापारिक सस्था अथवा किसी सरकारी पद के अधिकारी हैं तो इन बातो को ध्यान में रखिए।

नेतृत्व कीजिए—अधिकारी में एक नेता के सभी गुण होने चाहिए। आतक-बल से नही बल्कि अपनी योग्यता, अपने साहस और अपनी कार्य-कुशलता से लोगो को प्रभावित करके वशीभूत कीजिए, उसकी सहानुभूति प्राप्त कीजिए। विचारपूर्वक एक योजना बनाकर स्वय उसके अनुसार कार्य

करने की जिसमे क्षमता होती है वही दूसरो का नायकत्व कर सकता है। अतएव स्थिरमति से एक लक्ष्य बनाइए और दृढतापूर्वक उसी ओर चलिए। लोग उसके पीछे चलते है जिसके सम्बन्ध मे वे यह जानते हैं कि वह एक निश्चित दिशा मे जा रहा है और उस दिशा में जाना मगलमय है। पहले सबको अपना विचारानुगामी बनाइए, इसके बाद वे स्वत: आपके पदानुगामी होगे। इसी प्रकार उनका सहयोग प्राप्त होगा। अनुभवशून्यता और शक्तिहीनता का परिचय न दीजिए। हलकेपन और आत्महीनता का परिचय न दीजिए।

निष्पक्ष और विश्वासपात्र बनिए—आपके प्रति आपके आश्रितगण अपना विश्वास तभी दिखलाएगे, जब कि आप पक्षपात-रहित होगे, न्याय मे कठोर और दृढ होगे तथा सहज स्वभाव से सच्चे होगे। लोगो पर आपकी न्याय-परायणता, कर्तव्यनिष्ठा और बुद्धिमत्ता का प्रभाव पडना चाहिए। कुर्सी पर बैठ जाने से ही आप सबके हृदय-सिंहासन पर नही बैठ सकते।

गम्भीर, शान्त और रहस्यमय बनिए—काम मे, प्रबन्ध मे और कर्मचारियोके साथ व्यवहार में यथासम्भव गम्भीर और अविचल बनिए। मौन रहने से अधिकार बल बढता है। एक फ्रेंच विचारक (आन्द्रे मौरिस) ने अपने एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ[1] मे लिखा है कि अधिकारी को इतना गम्भीर रहना चाहिए कि एक हद तक उसके आश्रितो को उनका व्यक्तित्व रहस्यमय प्रतीत हो। जब तक घनिष्ठता नही होती तब तक दूरवाला व्यक्ति उच्च पदाधिकारियो को विलक्षण, अलौकिक समझता है और उनकी सत्ता को स्वीकार करता है। निकट होने पर वह 'घर की मुर्गी दाल बराबर' की उक्ति चरितार्थ करता है। 'अति परिचय ते होत है अरुचि अनादर भाय।' (वृन्द)

गम्भीर होने का यही अर्थ नही कि अधिकारी चुपचाप गौतम बुद्ध की मूर्ति बना रहे। उसका अर्थ यह है वह उच्छृङ्खल न हो, कान का कच्चा न हो, वाचाल न हो, रसिया न हो और भावुक भी न हो। जो व्यक्ति

1. The art of living.

चचल स्वभाव का होता है और क्षण-क्षण पर प्रसन्न-अप्रसन्न होता रहता है, उसकी प्रसन्नता को भी लोग भयकर मानते हैं :

क्वचिद्रुष्ट. क्वचित्तुष्टो रुष्टस्तुष्ट क्षणे क्षणे।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयकर ॥

स्वभाव और वाणी से सरल रहिए—कर्त्तव्य-पालन ही मे कठोर बनिए; स्वभाव और बातचीत से अपनी उद्दण्डता न प्रकट कीजिए। वेदकालीन ऋषि-मुनि भी भगवान् से यही प्रार्थना करते थे कि कठोर वचनवाला व्यक्ति हमारा प्रभु न हो : 'मा नो दु शस ईशत' (ऋग्वेद)। अपनी सज्जनता और सहृदयता पर किसी को सन्देह करने का अवसर न दीजिए। दूसरे के गुणो की मुक्तकठ से सराहना कीजिए और अपनी गुण-ग्राहकता को लोगो पर प्रकट कीजिए। लोगो की कठिनाइयों में व्यक्तिगत सहानुभूति प्रदर्शित कीजिए और व्यक्तिगत सकटो में आत्मीयता भी। पद-मद मदिरा से भी अधिक उन्मादक होता है। उन्मत्त होकर अपने सद्भाव, शील को न भूल जाइए। इस बात को याद रखिए कि आपके सहकारी भी मनुष्य हैं, उनके भी हृदय है, उनकी भी विवशताएं हैं और व्यक्तिगत रूप मे वे आपसे अधिक निर्बल हैं। उनको धमकी न देकर मनुष्यतापूर्वक उनसे कार्य लीजिए। उजाडने की अपेक्षा लोगो को बसाने का प्रयत्न कीजिए। शोषक न होकर आश्रितो के पोषक-पालक बनिए।

औरों से ऊपर रहिए—व्यक्तित्व में, वेश-भूषा मे, काम की जानकारी में मर्म समझने मे सबके आदर्श बनकर रहिए जिससे लोग आपका लोहा मान सके। व्यक्तित्व का प्रभाव तत्काल पडता है। वेश-भूषा के प्रभाव को इसी बात से समझिए कि एक साधारण व्यक्ति भी पुलिस का पहनावा धारण करते ही प्रभावशाली बन जाता है। जब तक आप काम के विशेषज्ञ न होंगे तब तक दूसरो के काम का निरीक्षण और नियन्त्रण कैसे करेंगे ? अधिकारी को अपने विषय का अधिकारी होना चाहिए। उसकी जानकारी में कुछ ऐसी बातें होनी चाहिए जो कि सर्वसाधारण

की जानकारी मे न हो। उसमे मन्त्र को गुप्त रखने की क्षमता होनी चाहिए। विलक्षणताओ से ही वह सबका आदर्श और पथ-प्रदर्शक बन सकता है। अपने विभाग के समस्त कार्यों का ठीक-ठीक विवरण जानकर और कार्य-प्रणाली को समझकर ही कोई अधिकारी अपने उत्तरदायित्व को सभाल सकता है। समय की पाबन्दी और अनुशासन-सम्बन्धी जिन नियमो का पालन आप दूसरो से कराना चाहते है, उनका पालन सर्वप्रथम स्वय कीजिए, जिससे लोग आपसे शिक्षा लें और आपकी कड़ाई पर आक्षेप न करें। इस सम्बन्ध मे हिटलर के अन्तिम दिनो का, सभवत: अन्तिम वाक्य याद रखिए। जिस समय बर्लिन पर गोले बरस रहे थे और जर्मनी की पराजय निश्चत हो चुकी थी, लोगो ने हिटलर को राय दी कि वह आत्मरक्षा के लिए वहा से चला जाए। हिटलर ने स्वाभिमानपूर्वक उत्तर दिया कि यदि मेरी मृत्यु हो जाती है तो उससे जर्मनी का गौरव बढेगा—क्योकि एक सिपाही होने के नाते मुझे स्वय अपनी अन्त तक बर्लिन की रक्षा करने की आज्ञा का पालन अवश्य करना चाहिए।"[1]

सर्वोपरि साहसी बनिए—भय से आत्मसम्मान नष्ट हो जाता है, ऐसा नेपोलियन का मत है।[2] एक अन्य किसी नीतिकार का मत है कि साहस द्वारा अपने से अधिक मनुष्यो की सख्या पर भी विजय प्राप्त होती है[3]। परिस्थितियो और आलोचनाओ से न घबड़ाइए। यह तभी सम्भव है जब कि आप अपने कर्त्तव्य मे स्थिर रहें।

कर्त्तव्य को करते समय आप निश्चय कीजिए कि आप विफल नही हो सकते। यह दृढ निश्चय आपको साहस देगा। साहसी ही बनिए, दुस्साहसी नही। निर्णय करने के बाद रुकिए नही, आत्म-शक्ति लेकर

---

1. If I die, it is for the honour of Germany. It is because as a soldier, I must obey my own command to defend Berlin to the last. —World Digest.

2. Fear destroys self-respect.

3. Courage overcomes numbers.

निश्चित मार्ग पर चल निकलिए। जिस क्षेत्र मे रहिए, उसमें अपने ढग के एक ही रहिए।

काम करना और लेना जानिए—जब तक आप स्वय काम करना न जानेंगे, तब तक दूसरो से ठीक काम न ले सकेंगे, और न उनको काम के लिए प्रेरित ही कर सकेंगे। काम लेना एक बडी कला है। उसके कुछ रहस्य ये है .

१. जो जिस कार्य के उपयुक्त हो उसको वही कार्य सौपना चाहिए। इस सम्बन्ध मे शुक्राचार्य की यह नीति मान्य है कि कोई ऐसा अक्षर नही है जिसका प्रयोग मन्त्र-रचना मे न हो सके, कोई ऐसा वृक्ष नही है जो किसी न किसी व्याधि की औषधि न हो, कोई ऐसा व्यक्ति नही है जो किसी न किसी कार्य के योग्य न हो —सबका सयोजक मिलना कठिन है :

अमन्त्रमक्षर नास्ति, नास्ति मूलमकौषधम्।
अयोग्य. पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥

साधारण व्यक्ति से भी कार्य लिया जा सकता है . 'जहा काम आवै सुई, कहा करै तरवारि।' कोई शरीर से दुबला पतला होकर भी बड़े काम का हो सकता है। शेखसादी ने कहा है कि अरबी घोडा अगर दुबला-पतला हो तो भी गदहो के पूरे अस्तबल से अच्छा है। वास्तव मे, किसी को काम देकर, समझकर उसके परिणाम को देखना चाहिए और तत्पश्चात् उसकी योग्यता-अयोग्यता का निर्णय करना चाहिए।

२. इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई बेकार न बैठने पाये। सुकरात ने लिखा है कि केवल वही व्यक्ति बेकार नही है जो बैठा रहता है बल्कि वह भी बेकार माना जाएगा जिसकी योग्यता का पूर्ण लाभ नही लिया जाता।[1]

३. यथासम्भव कार्य के सम्बन्ध मे लिखित और निश्चित आज्ञा

---

1. Not only he is idle, who is doing nothing but he too that might not be employed better. —Socyates.

देकर कर्मचारियो के काम पर नियमित नियन्त्रण रखना चाहिए। एक विलायती लेखक ने लिखा है कि मालिक की आख उसके दोनो हाथो से अधिक काम करती है।[1] आख के आगे काम अधिक होता है, इसको सभी मानेंगे। यदि आख के आगे भी गडबडी होती है और कोई जान-बूझकर नियमोल्लघन करता है तो उसके अपराध को प्रमाणित करके उसको अवश्य दण्डित कीजिए जिससे दूसरो को शिक्षा मिले। किसी के प्रति मन मे क्रोध बनाए रखने की अपेक्षा उसको तत्काल प्रकट कर देना अधिक अच्छा होता है। व्यास ने लिखा है कि पल-भर मे जल जाना देर तक सुलगने से ज्यादा अच्छा है :

क्षणार्द्धं ज्वलित श्रेयो न च धूमायित चिरम्। (महाभारत)

४. जान-बूझकर अपने सहयोगियो पर दोपारोपण न करना चाहिए। उनकी साधारण त्रुटियो को देखना ही न चाहिए। एक विदेशी नीतिज्ञ (फुलर) ने लिखा है कि यदि तुम स्वामी हो तो कभी-कभी अन्धे बन जाया करो।[2]

५ जिनसे आपको काम लेना है उनको यह सच्चा भरोसा दे रखिए कि उनके भविष्य का द्वार खुला है और वे अपनी योग्यता, कार्य-पटुता से आगे उन्नति कर सकते है। मनुष्य का जीवन सरस तभी बनता है जब उसके पास करने को कोई काम होता है और मन की आशा को टागने की कोई खूटी होती है। इस बात को याद रखिए कि 'बाधे बनिया बाजार नही लगता।' सबको उत्साहपूर्वक रखिए।

६. अपने आश्रितो की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लीजिए। उनके मन मे यह भ्रम न होना चाहिए कि मौके पर आप पिछड जाएगे और वे ही किसी त्रुटि के उत्तरदायी होगे।

७. अपने विशेष अधिकारो का प्रयोग बार-बार न कीजिए। यदि

---

1 The eyes of a master will do more work than both his hands

2. If thou art a master be sometimes blind

रोज आधी ही चले तो कुछ दिनो मे लोग उसको सहन करने मे इतने अभ्यस्त हो जाएगे कि वे उसको साधारण हवा ही समझने लगेंगे। लोगो को वेहया न बनने दीजिए।

८ युक्तिपूर्वक कही-कही झुक जाने से भी कार्यकर्त्ता लोग मोहित हो जाते हैं · 'सबहि नचावत राम गोसाईं, अपुवा रहत दास की नाई।' (तुलसी)। जहा किसी महत्कार्य को शीघ्र करना हो वहा उसी तरह झुक जाना चाहिए जैसे सुरसा के आगे हनुमान् झुक गए थे।

९ अधिकारी की प्रसिद्धि से कार्यकर्त्ता प्रभावित होते हैं। यदि आप यशस्वी, प्रभावशाली हैं तो लोग स्वभावत चेष्टा करेंगे कि वे आपके सुयोग्य सहकारी कहलाने का गौरव प्राप्त करें। इसलिए ऐसी कीर्ति रखिए कि आपके न रहने पर वह दूसरो की नसो में बिजली भर सके।

गुरुत्व ही पतन का कारण होता है—अधिकार ग्रहण करने पर इसको भी याद रखिए कि जो वस्तु भारी होती है वही पृथ्वी पर गिरती है। ऊची पहाडी पर से लुढकने का अधिक डर रहता है। वाल जब बहुत बढ जाते है, तो नाई की कैंची तैयार मिलती है। इसलिए सभलकर सावधानी से चलिए।

३. यदि आप कर्मचारी हैं

यदि आप कर्मचारी हैं तो उपयुक्त बातो मे से आत्मोपयोगी बातो के अतिरिक्त निम्नलिखित बातो को भी ध्यान मे रखिए

१. साधारण पद पर रहते हुए भी अपनी आकाक्षा को प्रबल रखिए और इस बात को ध्यान मे रखकर आत्मोत्थान का प्रयत्न करते रहिए कि ससार मे योग्यता के अनुसार अधिकार मिलता है, आध सेर के गिलास मे सेर भर दूध नही भरा जा सकता। प्रतिदिन उत्साहपूर्वक अपनी योग्यता को बढाइए, वही आपकी मूल सम्पत्ति होगी। कार्य-सम्बन्धी ज्ञान के अतिरिक्त अन्य उपयोगी ज्ञान का संचय भी करते रहिए। एक ही लकीर के फकीर न बने रहिए। बहुज्ञ होना लाभदायक

ही होता है। रोज़ अनुभव का संचय करते रहिए। अपनी स्मरण-शक्ति पर अधिक विश्वास न करके, अपनी नोट-बुक को काम मे लाइए।

२. इस लक्ष्य को सामने रखकर अर्थोपार्जन न कीजिए कि किसी तरह शाम को रोटी मिल जाए। दिन की सध्या को नही, वल्कि जीवन-सन्ध्या को अपना लक्ष्य बनाइए। यह कहना अनुचित न होगा कि अपना बीमा करा रखिए क्योकि पता नही कब आपकी जीविका-सन्ध्या या जीवन-सन्ध्या आ ही जाए। कुछ न कुछ बचाइए।

३. जितना आपको वेतन मिलता है, उससे अधिक कार्य करके दिखलाइए। अपने काम को पैसे से कम कीमती न वनने दीजिए। कार्य को सागोपाग पूर्ण कीजिए और प्रतिदिन वैसा ही कीजिए। ऐसा न हो कि कुछ दिन अच्छा काम दिखलाकर और अपने अधिकारियो का विश्वास प्राप्त करके वाद मे आप ढीले पड जाए। जब काम ही की कमाई आप खाते है तो उसको दूषित या खडित न कीजिए। अपनी वस्तु को पागल या पशु ही तोडते-फोडते है। कर्त्तव्य-पालन मे सच्चे रहिए। अपने गुणो को चमकाते रहिए। अग्रेजी मे एक कहावत है कि अपने तारो को चमकने दो।[1] आशा से अधिक आप अपनी सफलता दिखाएगे, तभी आपके नक्षत्र चमकेंगे। इस वात को याद रखिए कि कठिन परिश्रम की उतनी प्रतिष्ठा नही होती जितनी कि सफल परिश्रम की। सफल परिश्रम भी वही मान्य होता है जिसकी सफलता का क्रम न टूटे।

४. अपने को अपरित्याज्य अथवा किसी कार्य के लिए सर्वोपयुक्त न मानिए। ऐसा मानने से अभिमान वढता है और आप धोखे मे रहते है। यह मानकर कार्य कीजिए कि आपसे स्पर्द्धा करने वाले और लोग भी हैं और आपको अभी अधिक उपयुक्त बनना है। कार्य करने मे निश्चिन्तता और अनिश्चन्तता न होनी चाहिए। अपने ऊपर तथा दूसरो के ऊपर आवश्यकता से अधिक विश्वास न कीजिए। प्रतियोगिता के लिए अधिक आत्मबल का संचय करते चलिए।

---

1. Let your stars shine.

५. मिट्टी में बीज की तरह अपने काम आप समाइए। सफल होने का यही प्राकृतिक उपाय है। कुछ दिनो में आप शाखावान् हो जाएगे। स्पष्ट शब्दो मे, काम के समय काम की धुन रखिए। अपना सारा ध्यान उसी पर केन्द्रित कीजिए। काम में अपनी व्यक्तिगत बातो को अलग रखिए। दूसरों की व्यक्तिगत चर्चा से भी अधिक बचिए। 'काम से काम' यही सिद्धान्त बनाइए ; और सचाई, परिश्रम तथा एकाग्रता को सफलता का मूलमन्त्र जानिए। एक दिन में सफलता न मिलेगी, निरन्तर दैनिक अभ्यास से ही सफलता मिलती है, उन्नति होती है। कठिनाइयों को पीछे ठेलिए, शक्ति का उपयोग एव विज्ञापन कीजिए और काम मे रस लीजिए। इसी प्रकार आप पनप सकेंगे।

६. जहा आप काम करते हैं वहा के नियमो का ठीक-ठीक पालन कीजिए। जिसके नीचे हैं उसके प्रति कृतज्ञता का भाव रखिए, उसके हानि-लाभ को अपना समझिए; हिसाब-किताब मे सच्चे प्रमाणित होइए—आवश्यकता से अधिक काम के सिलसिले में भी खर्च न कीजिए; काम को लटकाइए मत, पेंच न मारिए, पुरस्कार के लोभ से कोई कार्य न कीजिए, मेहरबानी की आशा न कीजिए क्योकि काम ही के लिए आप वेतन पाते है, किसी की पीठ-पीछे निन्दा न कीजिए और विदा होते समय भी सद्भाव के साथ विदा लीजिए जिससे आगे का सम्बन्ध तो बना रहे। कृतघ्नता की प्रवृत्ति आत्मनाशी होती है।

७ किसी काम मे क्रिया-द्वेषी, हठी, दुराग्रही न बनिए और अपनी भूलो को तत्काल स्वीकार करके पूरी जिम्मेदारी लेने का साहस रखिए। अनुमान द्वारा नहीं, परीक्षा द्वारा यथार्थता को समझिए। यदि कोई कार्य आपसे असाध्य हो तो उसके करने का झूठा आश्वासन न दीजिए।

८. जो भी कार्य आपके जिम्मे हो उसमे अपनी प्रतिभा की झलक दिखाइए, शीघ्रातिशीघ्र उत्तम ढग से पूर्ण करके बुद्धिमत्तापूर्वक अपनी सेवाओं को प्रकट करते रहिए। कार्य की उपयोगिता को समझिए, योजना बनाकर उसको ठीक रीति से कीजिए। बीच-बीच मे मुरझाइए न; हरे-

भरे बने रहिए, नही तो फलिएगा कैसे ?

९. व्यवहार में सावधान रहिए। अपने से बडो को अग्निवत् मानिए। आवश्यकता पडने पर ही उनके निकट जाइए ; अन्यथा दूर ही रहिए। सहयोगियो के दृष्टिकोण का सम्मान कीजिए। उनसे पूछते रहिए, सम्मति लेते रहिए। यथासम्भव सर्वोपयोगी वनिए; प्रत्येक परिस्थिति में शिष्ट, सभ्य बने रहिए, ठडा लोहा गर्म लोहे को काट देता है। व्यवहार से अपने को शान्तचित्त, सद्गुणी और चतुर ही प्रकट कीजिए।

१० आवश्यकता से अधिक परिश्रमी और कार्य में सतर्क न वनिए। एक से स्वास्थ्य की हानि होती है, दूसरो से स्वार्थ की, क्योंकि इनसे कार्य भारस्वरूप हो जाता है। स्वास्थ्य और स्वार्थ को नष्ट करके रुपया वटोरने का अर्थ है अपना घर फूककर वैरागी होने के लिए राख वटोरना।

११. जहा रहिए वहा पेड़ की तरह अपनी जडें फैलाइए—अर्थात् नये-नये मित्र वनाइए और अपने पूर्व-परिचितो को भी अपने साथ काम में लगाने का प्रयत्न कीजिए। विपत्ति की आधी में वही जडे आपको समालेगी। धक्का खाकर उखड न जाइए। फिर पूर्ववत् खड़े हो जाइए। यदि आप भाग्यवादी है तो महापडित व्यास के इस कथन को याद रखिए कि जैसे अयाचित दु.ख आते रहते है, वैसे ही सुख आएगा, फिर दु ख से घवराना और सुख के लिए व्याकुल होना केवल अपनी दीनता दिखलाना है :

अप्रार्थितानि दु खानि यथैवायान्ति देहिनाम्।
सुखानि च तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ॥ (महाभारत)

१२ कार्य-सम्वन्धी ज्ञान के विशेषज्ञ होने के साथ अपनी लोकप्रियता वढाने के लिए किसी मनोरजक विषय में प्रवेश रखिए, जिससे आप काम के वाद लोगो को अपने मे आकर्षित कर सकें।

१३. उभयस्वामिक न वनिए अर्थात् एकसाथ ही दो समान अधि-

कारियो का आधिपत्य स्वीकार न कीजिए। आपके ऊपर जो अधिकारी है उसकी उपेक्षा न कीजिए। यदि सर्वप्रधान अधिकारी आपपर विशेष अनुग्रह रखता हो तो भी अपने ऊपर के अधिकारी का पूर्ण सम्मान कीजिए और किसी कार्य से ऐसा न प्रकट होने दीजिए कि आप सर्वप्रधान से सीधा सम्बन्ध किए हैं या करना चाहते है। बीच वाले अधिकारी की उपेक्षा बडी घातक होती है। इस सम्बन्ध मे हनुमान् का आदर्श मानिए। वे राम के विशेष कृपापात्र थे, फिर भी अपने स्वामी सुग्रीव को नही भूलते थे। लका मे अपना पराक्रम दिखलाकर वे अभिमान-मद से अपनी मर्यादा को नही भूले। उन्होने शत्रु के राज्य मे सिंहनाद करके राम की जय बोलते हुए कहा—रामचन्द्र मे रक्षित राजा सुग्रीव की जय हो, महा-शक्तिशाली राम की जय हो, महाबली लक्ष्मण की जय हो,

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबल ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालित ॥ (रामायण)

१४ यदि किसी काम में अपना भविष्य उज्ज्वल नही प्रतीत होता है तो आप विवश होकर उसी को न करते रहिए। बल्कि अपने लिए उप-युक्त अवसर और स्थान ढूढते रहिए। परन्तु कुछ दिन प्ररीक्षा और प्रतीक्षा करके तब स्थान परिवर्तन कीजिए। एक अनुभवी ने कहा है कि जो चक्कर नही काटता, वह दूर तक दौडता है।[1] इसका दूसरा अर्थ भी हो सकता है. जो इधर-उधर नही देखता चलता उसको लम्बी दौड लगानी पडती है। जो अर्थ आपकी परिस्थिति के अनुकूल पडे उसी को स्वीकार कीजिए।

४. यदि आप कार्यार्थी हैं

यदि आप बेकार हैं तो पहली आवश्यकता इस बात की है कि आप उदासीन न बनिए। उदासीनो का युग बहुत पहले ही समाप्त हो चुका है। यह आशावादियो का युग है। हतोत्साह होते ही आदमी की चेतना-शक्ति हत हो जाती है। जब मनुष्य अपने भविष्य को अधकारमय देखता है, तभी उसके मन मे आत्मघात की भावना अकुरित होती है। बेकारी की

1. He runs far who never turns.

दशा में ही आत्मविश्वास और आत्मशक्ति की सर्वाधिक आवश्यकता होती है, अन्यथा मनुष्य की कमर टूट जाती है, वह डगमगाने लगता है और अपने व्यक्तित्व को सस्ते मूल्य पर बेच देना चाहता है। बेकारी मे भय बढ़ जाता है।[1]

१. चित्त के भय और निराशा को निर्मूल कीजिए और सैकड़ो-हज़ारों उदाहरणों से सिद्ध इस शास्त्र-वाक्य में विश्वास कीजिए कि अध्यवसाय से कुछ भी असाध्य नही है: 'नाऽसाध्य तपसा किंचित्' (महाभारत)। इस बात में विश्वास कीजिए कि सांसारिक जीवन मे यह प्रमाणित हो चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वय ही अपनी रुपया बनाने की टकसाल है।[2] यदि आप यह सोचकर निराश हो कि आपकी आयु अधिक है, अतएव मौके आपके हाथ से बाहर निकल गए है तो यह स्मरण रखिए कि ससार मे चौसठ प्रतिशत लोगो ने पैंतालीस से पैंसठ वर्ष की आयु मे ही बडी-बड़ी सफलताए प्राप्त की है। जो उत्सुक हो वे अमरीका से प्रकाशित 'साइंस डाइजेस्ट' नामक बहु-प्रसिद्ध पत्रिका के नवम्बर, १९४६ के अक मे इसका विस्तृत विववरण देखे।

२. स्वावलम्बी बनने का सकल्प कीजिए और आशा-उत्साह के साथ कीजिए। कमज़ोर बैटरीवाली मोटर की तरह न बनिए कि जब स्त्री-बच्चे पीछे से आपको ठेले तभी आप रवाना हो। स्वय चेतिए। गृहमोही बनकर न बैठिए। ससार की बड़ी सम्पत्तियां, जैसे प्रकाश, हवा, रुपया, आपकी श्रीमती, बाहर ही से आती है; वे घर मे नही पैदा होती! अत-एव कर्मक्षेत्र में पधारने का निश्चय, दृढ निश्चय कीजिए। सजीव होते हुए स्थिर होना अप्राकृतिक कर्म है। पक्का निर्णय कीजिए कि आप समर्थ हैं, कुछ करके ही रहेगे। अपने सामने किसी उद्योगी महापुरुष का आदर्श रखिए और उसके जीवन-वृत्त से प्रेरणा लीजिए।

३. अपनी स्थिति को देखते हुए भविष्य की एक योजना बनाइए।

---

1. Fear increases in inactivity.
2. Every man is his own mint.

इस बात को ध्यान मे रखिए कि आपके पास क्या है या आप स्वयं क्या हैं—इन्ही में से एक आधार पर आपका अर्थागम निर्भर करेगा। यदि आपके पास धन नही है तो गुणो का सचय और विकास कीजिए। चरित्र स्वभाव को सुन्दर बनाइए क्योकि यही निर्धन के धन हैं। दूसरो को प्रभावित और अपने को ठीक-ठीक व्यक्त करने की कला का अभ्यास कीजिए। योग्यता प्राप्त कीजिए। जिस कला मे आपकी विशेष रुचि हो उसकी विशेष योग्यता प्राप्त कीजिए। अपने को उसी का विशेषज्ञ बनाइए। कोई भी उपयोगी ज्ञान या कौशल कर्मजीवी का मूल द्रव्य होता है। काव्य-कला नही, व्यवसायात्मक ज्ञान और व्यावहारिक कला को अपनाइए। किसी पद को लक्ष्य बनाकर अपने को उसके सर्वथा योग्य बनाइए और ऐसे ही काम को चुनिए जो श्रमसाध्य हो। सार-रूप में, इस विषय के एक सुप्रसिद्ध लेखक के शब्दो में जिस नवयुवक के पास धन नही है, उसका पहला व्यवसाय, धर्म या कर्त्तव्य यह है कि वह स्वय अपने व्यक्तित्व को अधिक से अधिक मूल्यवान् बनाए।[1]

यदि आप व्यापार करना चाहते है तो आत्म-सबल को मूलधन, बुद्धि को प्रबन्ध और हाथ-पैर को मजदूर बनाकर अपने कार्यालय की स्थापना करने की कल्पना कीजिए।

४. अधिक से अधिक परिचय बढाइए. वह आगे कार्य देता है। अपने से बड़ो की सगति कीजिए। सभा-सोसाइटियो मे भाग लीजिए, अवैतनिक रूप से दूसरो की सेवा करने में कभी न चूकिए, भाषण दीजिए, लेख लिखिए अथवा लोकप्रिय बनने का कोई भी गुण प्रकट कीजिए। राह पर चलते रहिए, कोई न कोई रीझनेवाला मिल जाएगा।

५. काम के लिए निकलिए। घर बैठे काम नही आ जाएगा। विदुला ने अपने आलसी पुत्र सजय को जो उपदेश दिया था उसको ध्यान में

---

1. The first business duty of every young man who is not rich is to put more and more value into himself

—Casson (How to Make More Money This Year)

रखिए। उसने कहा था कि जिन कार्यों का आरम्भ ही नही किया जाता, वे कभी सिद्ध नही हो सकते · 'अथ ये नैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते।' (महाभारत)

काम के लिए निकलने मे सकोच न कीजिए: 'जव नाचन निकसी बावरी तव घूघट कैसा ?' (कबीर)। हा, भिक्षुक वनकर न निकलिए। अपने को किसी का दासानुदास न मानिए। नौकरी के लिए जाने में भिक्षाटन की प्रवृत्ति रखना मूर्खता, कायरता है। अपने गुणो को उचित मूल्य पर विक्रय करने का भाव लेकर चलिए। यथासम्भव नियुक्त करने-वाले अधिकारियो का साक्षात्कार कीजिए। प्रार्थना-पत्र पर ही पूरा भरोसा न कीजिए। उससे आपकी योग्यता और आपके व्यक्तित्व का पूरा परिचय नही मिलता। इसीलिए प्रत्येक नियोजक प्रार्थी का साक्षात् दर्शन करना चाहता है। सामने जाने मे कापिए मत। यह न समझिए कि आप उससे ऋण या दान लेने गए है। यही समझिए कि आप अपनी योग्यता बेचने जाते है। सप्रभाव मिलिए। आत्मविश्वासहीन होने पर आप अपना बुरा प्रदर्शन करेगे।

अपने साथ और अपने प्रार्थना-पत्र के साथ दो-चार प्रतिष्ठित व्यक्तियो के प्रमाण-पत्र रखिए। वही आपके मामले में आपके वकील होगे। आत्मप्रशसा से अधिकारी प्रभावित न होगा, क्योकि वह आपसे भी चतुर होता है, तभी तो वह अधिकारी है और आप बेकार। प्रार्थना-पत्र मे स्वस्ति-वचन और भावुकता की इस तरह की बाते न लिखिए कि यदि आप हमे शरण मे ले लेंगे तो हम जन्म-जन्मान्तर मे परमपिता परमात्मा से आपकी दीर्घायु के लिए प्रार्थना करेंगे। उसमे अपनी योग्यता और अपने अनुभव का ही उल्लेख कीजिए और व्यावहारिक भाषा का प्रयोग कीजिए—अलकृत का नही।

६. कही विफल होने पर मिट्टी के ढेले की तरह गिर न पड़िए। गेंद की तरह उछलते रहिए। भाग्य का द्वार बार-बार खटखटाते रहिए। यह सोता भी होगा तो झुझलाकर ही सही, एक बार द्वार खोल

देगा। द्वार खुलते ही एक वार साधिकार भीतर घुस जाइए। गाधीजी ने लिखा है कि कैसा भी छोटा मौका मिले, उसको हाथ से जाने न देना चाहिए।[1] डिज़रायली ने लिखा है कि निरन्तर उद्योग करना ही कृतार्थता का मन्त्र है।[2]

अतएव पख फैलाकर उड़ते रहिए। नीति-वचन है कि बैठा हुआ गरुड़ भी बैठा रह जाता है, एक पद भी आगे नही बढता; और चलनेवाला चीटा भी कुछ समय में कई योजन दूर पहुच जाता है। योग्यता लेकर बैठे न रहिए। उसमे मोरचा लग जाएगा। इसको सत्य मानिए कि अधिकाश लोग कर्म-दोप के कारण नही वल्कि अपने अकर्म-दोप के कारण दुःख भोगते है। महाभारत मे कथित विदुला के इस उपदेश को कठस्थ रखिए: "तुम सेवको से हीन, अन्य के भोजन से पलनेवाले दीन, पुरुपार्थहीन पुरुपो की वृत्ति का अनुवर्तन न करो। जैसे पके फल के वृक्षो से पक्षीगण जीव धारण करते हैं, वैसे ही जिसके आश्रय मे अनेक प्राणी रहे, उसी का जीवन सफल है।"

---

1. No opportunity should be missed however trifling.
2. The secret of success is constancy to purpose.

५. बातचीत

वाणी-बल की महत्ता

किष्किन्धा के निकट वाक्-प्रज्ञ हनुमान् की बातो से मुग्ध होकर राम ने लक्ष्मण से यह कहा था . 'शब्दप्रपचरहित, पद और वर्णों के सन्देह-रहित, न बहुत शीघ्र, न बहुत विलम्बयुक्त, हृदयस्थ और कठगत (मध्यम) वाक्य, मध्यम स्वर मे वर्तमान है। सस्कारयुक्त, क्रमयुक्त, शीघ्रतारहित, विलम्बरहित, कल्याणी, मनोहर वाणी का उच्चारण करता है।···हृदय (अर्थात् सरस), कठ (अर्थात् ठीक से ध्वनित) और सिर (अर्थात् विचारपूर्ण) मे स्थित इस चित्रवाणी से किसका चित्त सतुष्ट नही हो सकता ?—खड्गधारी वैरी का भी हो सकता है !'

हनुमान् के वाग्वैभव से राम विशेष प्रभावित हुए थे और हम जानते है कि उसी के कारण राम-सुग्रीव की मित्रता स्थापित और दृढ हुई। सुग्रीव सौ चिट्ठिया लिखकर भी राम की वह मित्रता प्राप्त नही कर सकते थे जो उन्होने अपने वाक्पटु मत्री को भेजकर सहज में प्राप्त कर ली। इस घटना के बाद भी हम रामायण मे अनेक प्रसग ऐसे देखते हैं जहा हनुमान् की रणवीरता से ही नही, उनकी वाक्वीरता से अनेक कार्य सफल हुए है। महाबली रावण की लका में जाकर, वहा बन्दी होकर भी अकेले हनुमान् अपने वाणी-बल के प्रभाव से बचकर और प्रयोजन को सिद्ध करके वापस आ सके थे। बन्दी बनाए जाने पर उन्होने केवल अपनी वाणी-शक्ति का आश्रय लिया था। उसके द्वारा रावण के राजसम्मान पर आघात किए बिना उन्होने आत्मसम्मान की रक्षा की थी। रावण ने जब उनसे उत्पात करने का कारण पूछा तो उन्होने कहा कि मैं तो राज-दर्शन का इच्छुक था; साधारण अवस्था में आप तक

पहुचना कठिन था, इसलिए मैंने वन को विनष्ट किया, तदुपरान्त आपके युद्धाकाक्षी वीरगण मुझसे युद्ध के लिए आए और आत्मरक्षा के लिए मुझे लडना पडा। इस प्रकार मैं आपके दुर्लभ दर्शनो को प्राप्त कर सका। इसके बाद हनुमान् ने पुन विनम्र होकर कहा, "मैं राज-कार्य से यहा आया हू। आपके भाई वानरराज (सुग्रीव) ने आपका कुशल पूछा है और आपके हित के लिए एक सदेश कहलाया है···।" इस प्रकार अपनी शिष्ट और समयोचित वाणी से हनुमान् ने रावण को विशेष प्रभावित किया। सीता के समीप भी उन्होंने बुद्धिमत्ता से बातें करके उनके विश्वास और धैर्य को दृढ किया था। रावण की सबलता और राम की निस्सहायावस्था पर विचार करके जब सीता निराश थी तो हनुमान् ने उनको प्रबोधन देते हुए कहा, "हे देवी, वानराधिपति सुग्रीव करोडो वानरों सहित शीघ्र यहा आएगे। वे सब वानर मुझसे अधिक या मेरे समान हैं, मुझसे कम कोई भी नही है, जब मैं ही यहा चला आया तो उनका क्या कहना, काम करने के लिए छोटे ही भेजे जाते हैं, बडे नही 'नहि प्रकृष्टा. प्रेष्यन्ते, प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः।" इस प्रकार अपनी वाक्-पटुता से रामदूत ने अपने दोनो प्रयोजनो को सिद्ध किया—एक ओर तो उन्होंने राक्षसराज की नगरी मे प्रवेश करके राम और सुग्रीव के बल-वैभव का प्रदर्शन किया तथा प्रदर्शन के बाद भी अपने जीवन को सुरक्षित रखा और दूसरी ओर सीता का पता लगाकर उन्होंने उनसे राम का सन्देश ही नही कहा, बल्कि उनके संशय को मिटाकर उनके आत्मबल को भी सुदृढ किया। इससे राम का कार्य ही नही सफल हुआ, हनुमान् की प्रतिष्ठा भी शतगुणित हो गई। वे सफल होकर जब लौटे तो प्रतीक्षातुर वानरों ने उनको आंखों पर उठा लिया: 'हनुमन्तं महावेगं वहन्त इव दृष्टिभिः।' सबकी दृष्टि में हनुमान् का महत्त्व बढ गया।

वाणी-बल का प्रभाव बतलाने के लिए हमने ऊपर हनुमान् का उदा-हरण दिया है। वर्तमानकाल में भी हम देखते हैं कि राजनीति और व्यापार आदि की बड़ी-बड़ी समस्याएं बातों द्वारा सुलझाई जाती हैं। बड़ी-बड़ी

उलझनें जो लिखा-पढ़ी और युद्ध से भी नही सुलझती वे चतुर वाक्-विशारदो के मिलने-जुलने से तय हो जाती हैं। मनुष्य का सार्वजनिक जीवन बातों ही से चलता है। हम अपने दैनिक जीवन मे प्रत्यक्ष देख सकते है कि बातो से लोग कितने प्रभावित होते है। हास्य-विनोद के दो-चार वाक्य सुनकर लोग हसने लगते हैं, क्रोध-तिरस्कार के वचन सुनकर उबलने लगते हैं और आदर-सत्कार के शब्दो को सुनकर पिघलने लगते हैं। उन बातो से न तो किसी के शरीर पर चोट लगती है, न किसी को कुछ आर्थिक हानि-लाभ होता है : फिर भी उनका प्रभाव मनुष्य पर बहुत पडता है, यह स्पष्ट है। बातो द्वारा वशीकरण और उच्चाटन दोनो सिद्ध होते देखे जाते है। इसलिए शब्दो की मत्रशक्ति को कौन न स्वीकार करेगा? सुन्दर शब्दावली के प्रयोग से लोग एक-दूसरे के प्रेमपाश मे बंध जाते हैं। अच्छे वक्ता श्रोता को मत्रमुग्ध कर लेते है। इसके विपरीत कर्कश बातों से बड़े-बड़े कलह होते है, लोग बिना मारे ही मर जाते है और सुकुमार हृदय के व्यक्ति कभी-कभी आत्महत्या तक कर लेते हैं। मनुष्य पर बातो का उतना ही असर पडता है जितना पशु पर डडे का। इसका कारण यह है कि मनुष्य एक भावना-प्रधान जीव होता है। बातें उसके अन्तस्तल के स्वभाव एव ज्ञान को वहन करती है और श्रोता के भावना-क्षेत्र मे जाकर पैठ जाती हैं। वायु द्वारा जिस प्रकार किसी पुष्प का सौरभ एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचता है, उसी प्रकार वाणी द्वारा एक की भावना दूसरे के अन्तस्तल में सुगमता से पहुंच जाती है। मूलतः भावना-मय होने के कारण मनुष्य वाणी द्वारा संचालित भावो की चोट से आन्दोलित हो जाता है। यदि ऐसा न होता तो बातो की साधारण हवा से न तो कोई झूमने लगता और न कोई उद्विग्न होता। विचारवान् एव भावुक होने के कारण मनुष्य बातो के मर्म को ग्रहण करके अपने मर्म-स्थल में प्रभावित होता है। मनुष्यो ही मे जो मूढ और हतबुद्धि होते है, उनपर वाणी का कोई प्रभाव नही पडता।

मनुष्य के भीतर व्यक्तित्व की पहचान उसकी वाणी से ही होती है। ज्ञान, स्वभाव, चित्त-दशा विचारधारा सभी का पता वाणी से लगता है। जिस प्रकार घड़े को बजाकर देखा जाता है कि वह टूटा तो नही है, उसी प्रकार बातचीत से देखा जाता है कि मनुष्य का मस्तिष्क परिपक्व है या नही। वाणी से मनुष्य के अन्तस्तल की खिड़की खुल जाती है, उसके चरित्र की नाप मिल जाती है। लिखित भाषा उतनी प्रभावशाली नही होती। इसका कारण यह है कि लिखित भाषा के साथ स्वर नहीं संयुक्त रहता। स्वर मे स्वय एक शक्ति होती है। वह उन वायु-तरगो को आन्दोलित करता है जो हमारे शरीर को ही नही अन्तस्तल को भी स्पर्श करती है। उदाहरण के लिए वीणा या किसी वाद्य-यन्त्र के स्वर को लीजिए। उस स्वर में कोई अर्थ नही होता, फिर भी हृदय पर उसका प्रभाव पड़ता है। स्वर के साथ जब सार्थक वाणी का सयोग होता है तो भाव, जो वाणी के मूल तत्त्व होते हैं, विशेष उद्दीप्त हो जाते हैं। स्वर-सयुक्त होकर वाणी वायु-तरगो को आन्दोलित करती हुई अपने स्वाभाविक मार्ग—कान—से होकर श्रोता के अन्तस्तल मे जाती है, उसकी छाप गहरी पडती है। शब्दों में जो मत्र-शक्ति आती है, वह शब्द-रचना के साथ स्वर-सयोग से आती है। इस वैज्ञानिक सत्य को समझकर ही ऋषिगण स्तोत्रो को उच्च-स्वर से उच्चारित करने का विधान बता गए हैं। ध्वनि से सोता हुआ मनुष्य उठकर चैतन्य हो जाता है, फिर उसके भाव क्यो न जगेंगे? लिखित भाषा इस सहयोगी से वंचित रहती है। वह अस्वाभाविक रीति से ज्ञान-क्षेत्र मे प्रवेश करती है और उसको ग्रहण करने के पूर्व अपने भावो को उत्तेजित करना पडता है। स्वरयुक्त भाषा की तरह वह अपने ही आघात से श्रोता के भावना-भवन को नही खोल सकती। इसीलिए हम देखते है कि चिट्ठियो का उतना प्रभाव नही पडता जितना मिलकर बातें करने का। चिट्ठियो या लेखो के शब्द उतनी चोट नही कर पाते जितना भाषण, वार्तालाप के शब्द। इस रहस्य को दूसरे ढग से आप यो समझिए—कोई स्त्री देखने में या चित्र मे परम रूपवती हो सकती है, उसके रूप की ओर आप आक-

पित हो सकते हैं, परन्तु मिलने पर यदि कर्कशा निकली तो अपनी निराशा और वेदना को आप ही समझ सकते है। इसके विपरीत यदि कोई असुन्दर स्त्री मधुरभाषिणी हो तो सभवत. आप उसके रंग-रूप को उतना महत्त्व न देंगे। सुन्दर चित्र या आकृति-मात्र से जिस प्रकार व्यक्ति-विशेष की सरलता और कुटिलता का पता नही चलता, उसी प्रकार लिखित वाणी से भी भाव के उत्कर्ष का पूरा पता तब तक नही चलता जब तक पाठक मन मे स्वय उसके अनुसार अभिनय न करे। अतः हमे मानना चाहिए कि प्राण की शुद्ध सन्तति अर्थात् भाषा का जन्म प्राण-पत्नी के गर्भ से ही होता है। (सस्कृत में स्वर या वाणी को प्राण-पत्नी कहते हैं) स्वर से ही हमारे भाव सजीव बनते है और सजीव होकर वे विशेष प्रभावशाली भी होते हैं। लिखित रूप में भावो का स्मारक बनता है। जिसको देखकर लोग अपने भावो को जागरित करते हैं।

वाणी के महत्त्व को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से देखकर अब हमे उसकी कला पर विचार करना चाहिए। उसके प्रभाव के सम्बन्ध मे किसी को सन्देह नही हो सकता और इसमें भी किसी को भ्रम नही हो सकता कि सांसारिक व्यवहार का वही प्रमुख साधन है। व्यक्तिगत सफलता-विफलता बहुत अशो तक लोगो की वाक्पटुता या वचन-दरिद्रता पर अवलम्बित रहती है। अतएव अब हमे यह देखना चाहिए कि किन गुणो या विशेषताओ से वाणी-शक्ति का विकास होता है। दूसरे शब्दो में किस प्रकार मनुष्य अपनी इस शक्ति का उपयोग सफलतापूर्वक कर सकता है, या अच्छी बातचीत के ढंग क्या हैं और कैसे उनका उपयोग किया जा सकता है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि बातचीत करना या वाणी द्वारा भाव-व्यंजना एक बड़ी कला होती है। अन्य कलाओ की भांति वह अभ्यास से ही सिद्ध होती है। उसका अभ्यास केवल शब्द-कोष रटने से और व्याकरण कठस्थ करने से नही होता। बहुत-सी विद्याएं सीख लेने पर भी यह कला मनुष्य मे अपने-आप नही पैदा हो जाती। यह देखा गया है कि बड़े-बड़े

विद्वान् भी कभी-कभी वाणी द्वारा अपने ज्ञान का ठीक-ठीक विज्ञापन नही करते । इसके विपरीत परिमित ज्ञानवाले व्यवहारकुशल एव चतुर लोग जो कुछ जानते हैं, उसके आधार पर अपनी बुद्धि को सुन्दर ढग से व्यजित कर लेते है और अपने भावो के चेक को समाज के बैंक मे सफलतापूर्वक भुना लेते है । महाकवि भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' मे सत्य ही लिखा है कि विद्वानो मे वे ही सर्वोत्तम है जो अपने मानसिक भावो को वाणी द्वारा प्रकाशित करते है, उनमे उनका स्थान और भी ऊंचा होता है जो मनोगत गम्भीर अर्थों को चतुरतापूर्ण शब्दो मे व्यक्त करते हैं; किन्तु ऐसे लोग बहुत कम होते हैं !

> भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चिता,
> मनोगत वाचि निवेशयन्ति ये ।
> नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणाः,
> गम्भीरमर्थं कतिचित् प्रकाशताम् ।। (भारवि)

वास्तव में, सब अवसरो पर एक-सी वाणी बोलने का विधान नही बनाया जा सकता । स्थान, अवसर, प्रयोजन और व्यक्ति-भेद से वाणी के रूप मे भी भेद होता है; उसके शब्दो ही मे नही, उसके स्वरो मे भी भेद होता है । इसलिए गणित की तरह उसके सिद्धान्त निर्धारित नही किए जा सकते । उसके लिए मानव-स्वभाव का ज्ञान परिस्थितियो का ज्ञान और आत्मज्ञान भी आवश्यक होता है । शास्त्रीय ज्ञान से उसका विशेष सम्बन्ध नही है क्योकि वह एक व्यापारिक कला है जो चन्द्रकला की तरह बदलती रहती है । वह देश-काल और विषय के अनुसार बदलती है ।

यह सत्य है कि सभाषण के सम्बन्ध मे कुछ निश्चित नियम नही बनाए जा सकते, फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जो सामाजिक बातचीत में ध्यान रखने योग्य हैं । उनका अभ्यास और यथाअवसर उपयोग वाणी को बल देता है । भावो की स्पष्ट और सार्थक व्यंजना के लिए उनका आश्रय लेना आवश्यक होता है । सक्षेप मे, हम आगे उनपर विचार करेंगे ।

मानसिक संयम और योग्यता

वाणी बुद्धि का ही एक अवयव है अतएव विचारो के अनुसार ही उसका रूप बनता है। कंठ कितना भी मधुर हो, यदि उसमें से विचार-युक्त वाणी नही ध्वनित होती है तो वह व्यर्थ है। कुशल वक्ता वही हो सकता है जो अच्छा विचारक हो, जो अपने मस्तिष्क-पट पर अच्छे भाव-चित्र बनाने मे प्रवीण हो और जो सूक्ष्म दृष्टि से तत्त्व को ग्रहण करने में समर्थ हो। विचारो की प्रौढता, स्पष्टता, क्रमबद्धता, सजगता, गभीरता और सरसता तथा ओजस्विता के अनुरूप ही वाणी का शरीर बनता है। एक अग्रेज विद्वान् ने लिखा है कि शब्द विचारो के 'लेबल' (नामांकित पत्र) होते है।[1]—अर्थात् जिस प्रकार किसी शीशी या पार्सल पर लगे हुए 'लेबल' से पता चलता है कि उसमे क्या वस्तु हैं, उसी प्रकार शब्दो से पता चलता है कि मस्तिष्क के विचार क्या है और कैसे हैं। वाक्य-दृढ़ता या वचन-अस्थिरता से मानसिक दृढ़ता तथा विचार-अस्थिरता का पता चलता है। टूटे-फूटे वाक्यो से मानसिक दीनता का ज्ञान होता है। वाणी-बल को सुदृढ बनाने के लिए पहले विचार-बल को बनाना आवश्यक होता है। सुलझे हुए विचार होने से वाणी भी सुलझी हुई होती है। मस्तिष्क में यदि सन्देह, दुर्भाव या अहकार रहता है, तो वचनो मे भी वही झलकता है। विचारो की सरलता और स्पष्टता से ही वाणी सरल एव स्पष्ट होती है और यह स्मरण रखना चाहिए कि सर-लता और स्पष्टता ही उसके विशेष गुण होते है। संयत और सुबोध न होने से उसकी सार्थकता नष्ट हो जाती है।

इसलिए पहले अपने ज्ञान-केन्द्र को सुदृढ कीजिए; कल्पना-शक्ति, विवेचन-शक्ति और स्मरण-शक्ति को सबल एव सजग कीजिए। प्रत्येक विषय को सुनकर उसके मर्म को समझकर, उसपर तर्क-बुद्धि से, न्याय-बुद्धि से विचार करने का अभ्यास कीजिए। जो भी विषय हो उसपर निश्चयात्मक मति से विचार करके, यथार्थता को ध्यान मे रखकर तब

---

1. Words are the labels of thought.

उसके प्रयोजन को और परिणाम को देखिए। आपका ज्ञान-क्षेत्र जितना विस्तृत होगा और उसी के अनुसार आपका दृष्टिकोण जितना व्यापक होगा, उतना ही आपका व्यवहार-क्षेत्र भी व्यापक होगा। बहुज्ञ होकर आप अनेक क्षेत्रो में प्रवेश करके अनेक विषयो पर वार्तालाप कर सकेंगे, जिसके कारण आपका प्रभाव भी व्यापक रहेगा। अतएव जीवन-सम्बन्धी ज्ञान का सचय उपयोगिता की दृष्टि से करना आवश्यक है। उस ज्ञान की यथार्थता का अनुमान करके सार-मात्र को ग्रहण कीजिए और निस्सार को भूल जाइए।

मन में सन्देह, निराशा, असहनशीलता और आत्म-असमर्थता के जो दुर्विचार हो उनको निर्मूल करके तब योग्य वक्ता बनने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि मन में सन्देह रहेगा तो प्राय. आप सन्देह-ग्रस्त वाणी ही बोलेंगे और आपमें तथा आपके श्रोता में सहृदयता की भावना उत्पन्न नही होगी। निराशा लेकर बातें करने मे आप सफलता न प्राप्त कर सकेंगे और अंधेरे मे यथार्थ को टटोलते फिरेंगे। असहनशील होने पर दूसरों का यथार्थ वाणी को आप नही सह सकेंगे और किसी बात पर तर्क-वितर्क न कर सकेंगे। अपने को असमर्थ मान लेने पर आप अपने विचारो को स्वतत्रतापूर्वक नही व्यक्त कर सकेगे। आत्मविश्वास पहला गुण है जो किसी कुशल वक्ता में होना चाहिए। जब आप किसी से मिलते हैं तो यह विश्वास मन मे रखिए कि आप तुच्छ नही हैं, आप उसको प्रभावित करेंगे और सफल होगे। यदि आत्मविश्वास हिल जाएगा तो जो कुछ मस्तिष्क मे होगा वह भी समय पर भूल जाएगा और सम्भवत· आप हकलाने लगेंगे अथवा वहा से किसी तरह जान छुडाकर भाग निकलने के लिए छटपटाने लगेंगे। आत्मविश्वास से ही दृढता आती है, और हमे नेपोलियन का यह मत ध्यान में रखना चाहिए कि दृढता सब कार्यों में सफलता देती है।[1]

जब आप किसी से मिलते हैं तो आत्मविश्वास के साथ दूसरो पर भी विश्वास कीजिए—इस बात का विश्वास कीजिए कि वे भी विचारवान् है और विचारो द्वारा प्रभावित हो सकते हैं—इस बात का

1. Firmness prevails in all things —Napoleon

विश्वास कीजिए कि वे भी बुद्धि रखते हैं, इसलिए आप बनावटी बातें करेंगे तो वे उसको भाप सकते हैं—और इस बात का विश्वास कीजिए कि वे भी उतने ही भावुक हो सकते है जितने कि आप है। अतएव अपने मन मे उनके लिए तथा उनके विचारो के लिए स्वागत का स्थान बनाकर तब बातें कीजिए। यदि आप स्वय सकीर्ण विचारो के होगे तो उनके विचारो को स्थान कहा देंगे ? इसलिए विचार-क्षेत्र को खुला रखिए, अर्थात् सुनिए सबकी, चाहे करिए मन की। पहले से ही किसी के सम्बन्ध में दुर्विचार ले कर न मिलिए। बुरे आदमी के प्रति भी सद्भाव लेकर बातचीत करने से सदा सफलता मिलती है। दुर्भाव रखने से मनुष्य दूसरो के दुर्गुण ही देखता है जिससे उसको कोई लाभ नही होता। अंग्रेजी के एक विचारवान् लेखक ने कहा है कि अपने मन मे कम दोष होने से ही हमारी परछिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति कम होती है। हम दूसरो पर दोषारोपण तभी करते हैं जब स्वय हमारी ही मनोवृत्ति दूषित होती है।[1]

इसलिए पहले अपने स्वभाव को शुद्ध करना आवश्यक है। साथ ही अपने स्वभाव को नियन्त्रण मे रखना भी आवश्यक है। यदि आप मे झूठ बोलने या बातो को अतिरंजित करने का स्वभाव होगा तो आपकी बातें हल्की हो जाएगी। उस दशा मे आप तिल का ताड बना लेगे और स्वय विवेक न कर सकेंगे कि यथार्थ क्या है। नेपोलियन ने लिखा है कि जो व्यक्ति सीधी बात को घुमा-फिराकर कहने का और अनुचित रीति से सफलता प्राप्त करके प्रसन्न होने का आदी हो जाता है वह उचित-अनुचित में कठिनाई से भेद कर सकता है अर्थात् वह वचनवक्रता से कार्य-सिद्धि करने का व्यसनी हो जाता है।[2]

ऐसा स्वभाव बनाकर आप दो-चार स्थानो पर बातें करने मे भले ही

---

1. The fewer faults we possess ourselves the less interest we have in pointing out the faults of other people.

2 The man who habituates himself to the distortion of truth and to exultation at the success of injustice will at last hardly know right from wrong. —Napoleon.

सफल हो जाए, किन्तु बाद में आपकी बातो की असत्यता प्रमाणित होने पर समाज में उनका मूल्य घट जाएगा। बातो को मनोरजक बनाना आवश्यक है किन्तु झूठ के लेप से नही। विचारो के स्वाभाविक सौंदर्य, शब्दो के सौंदर्य और स्वर के आकर्षण से उनको भूषित करना अधिक अच्छा होता है।

स्वर पर अधिकार

ज्ञान, विचार और स्वभाव के अतिरिक्त अपने स्वर पर ध्यान दीजिए। बाजा बेसुरा रहने से गानेवाला ठीक नही गा सकता। स्वर से ही वाणी के विचार में बल आता है। उसी के अनुसार वाणी ओजस्विनी, मधुर, हृदयहारिणी या प्रभावशालिनी बनती है। उसी से मनुष्य की आत्मशक्ति का पता चलता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो यही है कि बीमारी मे अशक्त होने पर बीमार का स्वर मन्द पड जाता है। स्वस्थ रहने पर ठनकने लगता है। स्वर के उतार-चढाव से शब्दो के अर्थ और वक्ता के अभिप्राय में भेद पड जाता है। स्वर पर अधिकार रखने से ही विचारो का ठीक-ठीक विज्ञापन होता है।

यह आवश्यक नही कि अपनी शक्तिमत्ता दिखलाने के लिए चिल्लाकर बोला जाए। गला फाड़कर चिल्लाने से वीरता का बोध नही होता। बच्चे और अशक्त लोग ही प्राय. चिल्लाते हैं। चिल्लाना असमर्थता का द्योतक होता है। स्वर का उच्चारण स्पष्ट और कर्णश्रव होना चाहिए। उसमें गम्भीरता होनी चाहिए, पर कर्कशता नही, ओजस्विता होनी चाहिए, पर सुकुमारता के साथ। उसको वही तक उठाना चाहिए जहां तक उसकी स्वाभाविकता विनष्ट न हो। उसको इतना गिराना भी न चाहिए कि आधी बात मुह मे रह जाए। उच्चारण की स्पष्टता और कर्णप्रियता वाणी के विशेष गुण है। अस्पष्टता और कर्ण-कटुता उसके प्रधान अवगुण हैं। शब्दोच्चारण से न तो शब्दो की तोप दागिए और न ओले बरसाइए। विचार के अनुसार ही उसको सुकुमार, गम्भीर, तीव्र या मन्द बनाइए। स्वर पर जिनका अधिकार

नही रहता। वे विनय की बातें करते समय भी ऐसे प्रतीत होते हैं मानो किसी को डाट रहे हो। यह स्मरण रखिए कि स्वर की मिठास या कटुता से प्राय. लोग दूसरो की दृष्टि मे प्रिय या अप्रिय बनते हैं :

भले-बुरे सब एक सौ जब लौ बोलत नाँहि ।
जानि परत है काक पिक ऋतु बसन्त के माँहि ॥ (वृन्द)

शब्द और व्याकरण

शब्द ही वाणी के हाथ-पैर होते है। शब्दो का पर्याप्त ज्ञान होने से ही उनके द्वारा भावों की ठीक-ठीक व्यजना हो सकती है। ठीक समय पर ठीक भाव के लिए ठीक शब्द तभी मिल सकता है जब आपका शब्द-ज्ञान, अर्थ-ज्ञान और शब्द-संग्रह विशाल हो। इसमें असावधानी होने पर आप कुछ का कुछ कह सकते है और बार-बार आपको अपनी ही बात की भाषा ठीक करनी पड़ेगी। शब्दो पर जिनका अधिकार नही होता उन्ही को बार-बार कहना पड़ता है कि मेरा अभिप्राय यह नही था। ठीक अर्थ को व्यजित करनेवाले शब्दो का ज्ञान होने से मनुष्य अपनी वाणी को सार्थक बना सकता है और ठीक निर्णय पर पहुच सकता है। उसी प्रकार शब्दो के ठीक अर्थ जानने से वह दूसरो के अभिप्राय को ठीक-ठीक समझ सकता है। शब्द-सामर्थ्य मनुष्य का विशेष गुण माना जाता है। यह देखा गया है कि जो लोग उच्च पद पर होते है उनका शब्द-संग्रह साधारण लोगो से अधिक होता है। दूसरे शब्दो मे, आत्मोन्नति के लिए अधिक शब्दो का ज्ञान आवश्यक है। बिना उसके मनुष्य अपने को ठीक-ठीक व्यक्त नही कर सकता और न दूसरो पर अधिकार ही जमा सकता है।

शब्द-सग्रह के समान ही उनका चुनाव और उनकी रचना भी आवश्यक है। कोष रहना आवश्यक नही है, उसके उपयोगी और प्रचलित शब्दो का ज्ञान होना आवश्यक है। शब्दों के चुनाव और उनके द्वारा वाक्य-रचना से व्यक्ति की सुरुचि, सज्ञानता का पता चलता है। अच्छे कवि के केवल सुन्दर शब्दो के चुनाव और उनकी क्रमबद्ध रचना या शैली से ही भावों की तीव्रता बढाकर उनको सजीव बना देते है। जब

शब्दो का चुनाव ठीक नही होता और मनुष्य उनको एक शृंखला में नहीं बाघ पाता, तभी वह शब्दो का घटाटोप खड़ा करता है या शब्द-कुठार चलाता है। किसी से बात करते समय इसका ध्यान रखिए कि आप मछली फसाने नही, एक विचारवान् जीव को वशीभूत करने निकलते है। कोई बुद्धिमान् शब्द-जाल मे नही फसता। कठिन शब्दो की झड़ी लगाने से भी कोई प्रभावित नही होता। सरस एव सरल शब्दो में व्यजित अकाट्य तर्क द्वारा ही दूसरो को प्रभावित या पराजित किया जा सकता है। उसी वक्ता की वाणी का प्रभाव पडता है जो थोड़े शब्दो मे अधिक से अधिक विचार भर सकता है। शब्दो की सख्या भावो की सख्या से सदैव कम होनी चाहिए। और उनसे भावो की एकता और क्रमबद्धता ही प्रकट होनी चाहिए वास्तव मे, उपयुक्त अवसर के लिए उपयुक्त शब्दो का चुनाव करके सारयुक्त वाणी बोलने से ही सफलता मिलती है। निरर्थक शब्दो से विषय उन्ही में खो जाता है और श्रोता को कभी इतना अवकाश नही रहता कि वक्ता के लिए बैठकर नीर-क्षीर-विवेक करे।

शब्दो मे आप सरल, मर्मस्पर्शी और विचारोत्तेजक शब्दों का चुनाव कीजिए और उनको यथास्थान प्रयुक्त करने की योग्यता प्राप्त कीजिए। जिस भाषा मे आप बोलते हैं, उसी के शब्दो का व्यवहार कीजिए। भाषा की वर्णसंकरता उसके प्रवाह को नष्ट कर देती है। शिष्ट और संयत शब्दावली मनुष्य मे बडप्पन को बढाती है। गन्दे शब्दो से अपना मुह पहले गन्दा होता है, दूसरे का चाहे हो या न हो। भारती का कण्ठहार उज्ज्वल शब्द-रत्नो से ही बनता है। शब्द-योजना से व्याकरण का ध्यान भी वाणी को स्वस्थ बनाता है। इसपर विशेष लिखने की आवश्यकता नही है, क्योकि यह सभी जानते है कि व्याकरण के बिना भाषा का सगठन ठीक नही हो सकता और वह उच्छृङ्खल हो जाती है। शुद्ध और मुहावरेदार भाषा अधिक हृदयहारिणी होती है।

मानव-स्वभाव का ज्ञान

विचार, स्वर और शब्द से अलकृत भाषा भी यदि श्रोता के स्वभाव

के विपरीत होती है तो वह उसपर प्रभाव नही डालती। जैसे, नायिका के हावभाव का वर्णन किसी रसिक को प्रिय लग सकता है। किन्तु किसी कामकाजी को महा अप्रिय लगेगा। उसको उसकी अपेक्षा बाजार-भाव की चर्चा अधिक प्रिय लगेगी। लोगो की रुचि जानकर, उनकी परिस्थिति को ध्यान में रखकर उनके अनुकूल बातचीत करने से साधारण बातें भी उनको प्रिय लगती हैं। इसलिए अन्तर्वेदी अर्थात् मर्मज्ञ बनिए।

यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक एक व्यक्ति एक अंश तक स्वार्थी और स्वाभिमानी होता है। सबका अलग-अलग दृष्टिकोण होता है। आप सबसे यह आशा नही कर सकते कि वे आपकी बातो को वेदप्रमाण मानकर शिरोधार्य कर लें। उनका विरोध करते हुए भी यदि आप उनको अपनी बातो से जीतना चाहते है तो आपको उनके स्वभाव और उनके व्यक्तित्व का ध्यान रखना पडेगा। मानव-स्वभाव का ज्ञान अनुभव से ही हो सकता है। कुछ अन्य आवश्यक बातो का उल्लेख हम नीचे करेंगे।

छोटे मुह वडी बात न कीजिए—आत्मविश्वास और स्वाभिमान रखते हुए भी अपनी वास्तविक स्थिति का ध्यान रखिए और अपनी मर्यादा का ध्यान रखिए। उससे भी अधिक दूसरे की पद-मर्यादा और आत्मसम्मान का ध्यान रखिए। आत्मशक्ति के अनुसार ही अपना विज्ञापन करना शोभा देता है। अनधिकार-चेष्टा अप्रिय लगती है।

मैं-मैं न कीजिए—बहुत-से लोग अपने ही विषय मे इतने अनुरक्त हो जाते हैं कि वे हर बात मे अपनी ही चर्चा करते है और आदतवश 'मैं' शब्द का प्रयोग अधिक करते है। 'मैंने किया', 'मैंने कहा', आदि उनकी बात-बात में रहता है। दूसरो के सम्बन्ध मे वे बात नही कर सकते और करते भी हैं तो दोषारोपण के साथ। ऐसा स्वभाव होने पर बातो से वे दूसरो को धराशायी बनाने के आदी हो जाते हैं। और आत्म-प्रशसा की बौछार करने लगते हैं। इसी को लक्ष्य करके एक विलायती विद्वान् (ई० एफ० यीस्ट) ने कहा है :

You may have become a knocker and unconsciously slipped into the habit of finding fault It is also easy to acquire the 'I' habit and to become self-centred and to incessantly talk about your own affairs.

इसका भावार्थ ऊपर दिया चुका है। सभ्य समाज में अधिक 'मैं-मैं' करना वकरीपन या विल्लीपन का द्योतक होता है। दूसरो को उनके विषय मे अधिक वोलने का अवसर देना वातचीत का सुन्दर ढग है। आपकी लीला आपके लिए रामलीला हो सकती है, पर दूसरो की दृष्टि मे वह एक नाटक से भी कम मूल्यवती होगी। अतएव अपनी ओर किसी को विशेष आकर्षित करने के लिए अधिक वातचीत उसी को करने दीजिए। और आप उसके ठीक विचारो को उत्तेजित कीजिए। दूसरे जैसा अपने को समझते है, उनको वैसा ही वताना वाक्पटुता है और वैसा ही वताकर उन्हे अपनी ओर आकर्षित करना व्यवहार-कुशलता है। उनको गिराकर और उनकी छाती पर भार-रूप होकर काम निकालने का प्रयत्न न कीजिए। वचनवीर सदा कायर गिने जाते हैं।

नाक में दम न कीजिए —किसी वात को वार-वार घोटकर दूसरो के गले में उतारने का प्रयत्न न कीजिए। उससे सुननेवाला ऊब जाता है और उसको वातो का भयकर अजीर्ण हो जाता है। एक वात को वार-वार दुहराने से विचार-सकीर्णता का पता चलता है। जो वडे वक्की होते है वे प्राय: झक्की और शक्की होते है।

आग लगाकर कौतुक न देखिए—किसी के विचारो को भड़काकर अथवा दो आदमियो में भेद डालकर स्वयं अपना काम निकालने की चेष्टा न कीजिए। विना वेतन के अपने को किसी का जासूस वनाना महा-मूर्खता है। इधर की वात उधर लगाने से स्थायी लाभ नही होता, उलटे आत्मसम्मान घट जाता है।

आकाश के तारे न तोड़िए —वातचीत में कल्पना-प्रसूत वातों का विशेष आश्रय न लीजिए। पैर को जमीन पर रखकर ऐसी वातें कीजिए

जो सम्भव हो। बोलते-बोलते हवा में न उड जाइए, नही तो जिसके पास आप बैठे होंगे वह आपसे बहुत दूर हो जाएगा। बढ-चढकर बातें करने से तुच्छता प्रकट होती है।

अपनी निन्दा-स्तुति न कीजिए—यदि आप अपनी प्रशंसा करेंगे तो सर्वप्रथम तो कोई इसपर विश्वास न करेगा क्योकि नीच से नीच भी आत्मप्रशसा करता है। दूसरे, कोई इसमे रस न लेगा क्योकि अपने मुख से अपनी प्रगसा दूसरो को स्वभावतः प्रिय नही लगती। यदि आप मूर्खतावश या चालाकी से अपनी निन्दा करेंगे तो लोग समझेंगे कि जब यह स्वय अपने को इतना बुरा समझता है तो वास्तव में न जाने कितना बुरा होगा। निन्दा और स्तुति वही है जो दूसरो के मुख से निकले। अपने हाथ से अपने सिर पर फूल चढ़ाने या जूता मारने का प्रयत्न क्यो करें ? यह अस्वाभाविक है।

सिद्धान्तवादी न बनिए—छोटी-छोटी बातो को भी सिद्धान्त मानकर काठ की तरह जड़ न बनिए। शब्दो द्वारा अपने सिद्धान्तो का विज्ञापन करके उनकी ओट मे बैठनेवाले लोग प्राय. सिद्धान्तो पर दृढ नही रहते। सिद्धान्तो का पालन कर्म से होता है वचनचातुरी से नही। दूसरो के न्याय-सम्मत विचारो के अनुसार अपने विचारो में परिवर्तन करने की गुजाइश रखकर तब लोगो से विचारो का आदान-प्रदान कीजिए। ढोग और पाखड मे सफलता नही मिलती।

काटने मत दौड़िए—कोई अप्रिय प्रसंग उपस्थित होने पर भी यथासभव रसना की सरसता को विनष्ट न कीजिए। तुलसी की इस उक्ति को याद रखिए :

तुलसी मीठे वचन तें सुख उपजत चहुँ ओर।
वसीकरण इक मत्र है, परिहरु वचन कठोर॥

कबीर का भी एक उपदेश स्मरण रखने योग्य है :

ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपो सीतल होय॥

प्रज्ञाभिमानी और प्रतिकूलवादी होने से बचे रहिए। मूर्खता और दुष्टता के अतिरिक्त इन्ही दो कारणो से लोग अनर्गल प्रलाप करते हैं। विचारहीन लोग ही बहुवक्ता होते है।

न्यायाधीश या समालोचक न बनिए—बातचीत मे न तो जज की तरह नपे-तुले शब्दो मे फैसला देने की मनोवृत्ति रखिए और न समालोचक की तरह दूसरो की छानबीन करने की। उससे बातचीत की स्वाभाविकता नष्ट हो जाएगी। कोरे उपदेश से किसी पर प्रभाव नही पडता। अभियोगजनक या आक्षेपजनक वाणी सदा असह्य होती है। महामहोपदेशक बनने का प्रयत्न भी न कीजिए।

ज्ञान को कण्ठस्थ रखिए—दीर्घसूत्री बनकर बातें करने न बैठिए और न पुस्तको के भरोसे रहिए। ज्ञान तो वही है जो आवश्यकता पड़ने पर अवतरित होने के लिए कण्ठ मे आ जाए। यदि ऐसा न होगा तो आप समय पर अपने मत की पुष्टि न कर सकेंगे। सुन्दर सूक्तियां और प्रामाणिक वचन कण्ठस्थ रहने से समय पर बड़ा काम देते है। वे ही आपके वकील हो जाते हैं।

मौलिकता और सामयिकता का ध्यान सदैव रखिए—सफल वक्ता होने के लिए प्रत्युत्पन्नमति, कुशाग्रबुद्धि और प्रतिभाशाली होना आवश्यक है। नई सूझ का सभी सम्मान करते हैं। उधार लिए हुए विचारो का प्रभाव विशेष नहीं पड़ता। सामयिकता का ध्यान रखना तो आवश्यक है; क्योकि :

नीकी पै फीकी लगे, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस सिंगार न सुहात॥ (वृन्द)

समय की सूझ ही तो सफलता की कुंजी है। प्रसग के अनुसार भाषा के रूप में अन्तर पड जाता है। जहा काव्य की चर्चा हो वहां अलकारयुक्त और भावुकतापूर्ण वाणी ही सर्वप्रिय मानी जाती है। जहां राजनीति का प्रसग हो वहा युक्तिपूर्ण और व्यापार तथा काम-काज में

नपी-तुली खरी बातो का ही मान होता है। वहा गोलमोल बातो से काम नही चलता।

सप्रयोजन और सप्रभाव बोलिए—जो कुछ भी आप बोलिए किसी उद्देश्य को सामने रखकर तर्क-सम्मत वाणी मे बोलिए। जिस प्रकार वकील अपने मामले को तैयार करके अपने पक्ष के समर्थन मे सावधानी से बोलता है, उसी प्रकार आप अपने विषय को तैयार करके गौरवपूर्ण ढग से व्यक्त कीजिए। न घबराइए, न छटपटाइए और न निराशावादी बनिए। अन्त तक स्थिरमति से आशावन्त बनकर वाक्शक्ति का प्रयोग कीजिए और तथ्य को तर्कपूर्ण शब्दावली मे सामने रखने का प्रयत्न कीजिए। अपने विषय पर अधिकारपूर्वक किन्तु विनययुक्त भाषा मे बोलिए। विनययुक्त भाषा का अर्थ 'हे-हे' करना नही, बल्कि शिष्टतापूर्वक बोलना है। बातचीत मे शिष्टाचार और वेश-भूषा का भी बडा प्रभाव पडता है। वकील की तरह या बनिये की तरह एक-एक शब्द तौलकर बोलिए। शीघ्रता से शब्द-प्रयोग करना प्राय· हानिकर होता है। अपने मत के समर्थन के लिए वकील ही की तरह प्रमाण दीजिए और ध्यान रखिए कि स्वयं आप ही के बयान से आपकी बात कही खडित न हो। सामाजिक वाक्पटुता के सभी गुण भी वकीलो से न लीजिए। उनकी तरह मनगढन्त बातो का सहारा लेना प्रतिष्ठा-नाशक हो सकता है। उनके जिरह करने के गुण को भी अपनाना ठीक नही। बातचीत मे पहेली बुझाना उसकी धारा को रोक देता है। वकीलो की तरह बात का बवडर भी न खड़ा कीजिए। हां, सतर्क उन्ही की तरह बनिए।

धारा-प्रवाह बोलिए—किसी विषय में निश्चित मत स्थापित करके जमकर बोलिए और शीघ्र न उखडिए। धारा-प्रवाह का यह अर्थ नही कि आप बडबडाने लगें और वाणी के प्रवाह में विषय, व्याकरण सब बह जाए। उसका अर्थ है विचारो की शृड्खला को जोड़े रखना और एक निश्चित दिशा मे आगे बढना।

चित्रवाणी बोलिए—चित्रवाणी का यह अर्थ नही है कि आप आंख-

भौंह मटकाकर नाटकीय ढंग से बात करें। इस अध्याय के आरम्भ मे हनुमान् की वाणी के सम्बन्ध में हमने रामायण का जो अश उद्धृत किया है उसमे चित्रवाणी का उदाहरण मिलेगा। चित्रवाणी का अर्थ है अपने भावो और उद्गारो को स्वाभाविक एव मनोरंजक ढंग से व्यक्त करना; वाणी के साथ-साथ आकृति और अग-चेष्टाओ की अनुकूलता अर्थात् भाव को सचित्र बनाना। आकृति, गति, चेष्टा, बातचीत, नेत्र तथा मुख के विकारो से मन की बात ठीक-ठीक प्रकट होती है।

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मन ॥

वाणी को सरस बनाने के लिए उसके विषय मे रस लीजिए और यथासभव नीरस और अनावश्यक चर्चा से बचिए। हसकर, उपमाए देकर, कल्पना से रजित करके कलापूर्ण ढग से व्यक्त की हुई भाषा विशेष प्रभावशालिनी होती है। शील और सौजन्य तो स्त्री की लज्जा और सदाचार की तरह भाषा के स्वाभाविक आभूषण होते है। हास्य-विनोद और भावुकता से भी वह सचित्र बन जाती है। किसी सुन्दर कला मे रुचि रखने से भी उस विषय मे वक्ता सुन्दर ढग से बातें कर सकता है। चित्र-वाणी का प्रयोजन यह है कि श्रोता वर्णित विषय को अपने कल्पना-नेत्र से भी देख ले :

तै बरनें निज बैनन सो सखि।
मैं निज नैनन सो मनु देखे॥ (मतिराम)

गुण-ग्राहक बनिए—स्वय गुणी होकर भी दूसरो के गुणो का सम्मान कीजिए। पूजा करते समय जिस प्रकार आप जूते उतार देते हैं, उसी प्रकार दूसरो से बाते करते समय दूसरो के दोष जो आपके मस्तिष्क के पैर में धारित हों, उनको उतार दीजिए। मक्षिकावृत्ति लेकर आप केवल दूसरो की मवाद ही पा सकेंगे, किन्तु भ्रमरवृत्तिधारी होने पर आप मधु का सचय कर सकेंगे। निन्दक का कही सम्मान नही होता। जिससे आप बाते करते हैं, उसकी बातो से भी सार अंश को ग्रहण कीजिए और यथाअवसर

उसकी प्रशसा हृदय खोलकर कीजिए। प्रशसात्मक शब्दो मे कजूसी न कीजिए। आपकी प्रशसा से दूसरे को आत्मसतोष होगा और वह आपको गुणज्ञ समझेगा। इस प्रकार दोनो एक-दूसरे की तरफ आकर्षित रहेगे और तभी प्रयोजन सफल होगा। प्रशसा के पुल न बाधकर स्वाभाविक रीति से दूसरे पर यह प्रकट कीजिए कि आप उसकी बातो के मर्म को समझ रहे हैं। उसके अनुकूल बनकर आप अपने भी सुझाव दीजिए जिससे कि वह समझे कि उसकी बातें आपके भावो को जगा रही है। वह कोई हित की बात कहे तो तत्काल धन्यवाद देने मे न चूकिए। कोई आपका उपकार करे तो यथाशीघ्र उसके प्रति विनम्रतापूर्वक कृतज्ञता प्रकट कीजिए। दूसरे यदि अपने सम्बन्ध मे कोई बात करते हो तो उपेक्षा न करके उसमे अपना व्यक्तिगत अनुराग प्रकट कीजिए और बोलनेवाले को उत्साहित कीजिए, उसकी उचित आकाक्षाओ को अधिक प्रबल बनाइए। लोगो से सहमत और एकमत होने की चेष्टा कीजिए, लेकिन औचित्य और प्रयोजन तथा परिणाम को ध्यान मे रखकर। किसी के सिद्धान्तो पर तथा लोकप्रथा और धर्म पर शब्द-बाण न चलाइए। सहानुभूति प्राप्त करने के लिए दूसरो के साथ सहानुभूति प्रदर्शित कीजिए। सहनशील होकर ही आप गुणग्राही और लोकप्रिय हो सकते है।

हितकर वाणी बोलिए—बातचीत मे सत्य का ध्यान रखना आवश्यक है, किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह कठोर सत्य न हो। जहा कठोर सत्य कहने की विवशता हो और न्याय का प्रश्न हो वही अप्रिय सत्य भी कहना चाहिए अन्यथा अपने तथा दूसरो के हित को ध्यान मे रखकर बोलना ही सत्य का सच्चा स्वरूप होता है। इस विषय मे आप मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की इस सम्मति को ध्यान में रखिए, जो उन्होने वनगमन के समय सुमन्त्र को दी थी। राम जब रथ मे बैठकर अयोध्या से जाने लगे तो राजा दशरथ अधीर होकर रथ के पीछे दौडे और दूर से चिल्लाकर सुमन्त्र को आज्ञा देने लगे कि रथ को खड़ा कर दो, किन्तु राम ने आज्ञा दी कि रथ तेज करो। सुमन्त्र को धर्म-

सकट मे पड़े देखकर राम ने कहा कि लौटने पर यदि राजा तुमसे रुष्ट होकर पूछे कि राजाज्ञा का पालन क्यो नही किया तो कह देना कि रथ के चलने के शब्द के कारण आपका कहना सुनाई नही पडा – हम (झूठ बोलने के लिए) इस हेतु कहते है कि दु ख को बहुत काल तक रखना पाप का मूल होता है।

इस नीति को ध्यान मे रखकर प्रियवक्ता बनिए, पर अत्यधिक नही। अत्यधिक प्रियवक्ता होने से झूठा होना पडता है और 'प्रियवादी भवति धूर्त्तजन.।' यथासम्भव सत्य को भी विनम्रतापूर्वक ही बोलिए और अवसर देखकर झुक भी जाइए। अकडे रहने से पेड की तरह आधी मे टूटने का डर भी रहता है। दूसरो का प्रबल वेग देखकर झुकना भी सीखिए क्योकि उनका वेग शान्त होने पर आप फिर खडे तो मिलेंगे। स्वयं झुककर दूसरों पर विजय करना[1] आजकल की एक विशेष युक्ति मानी जाती है।

अनुभवहीनता न प्रकट कीजिए—किसी बात में दूसरो पर यह न प्रकट कीजिए कि आप बिलकुल कोरे हैं। यदि कोरे हो तो यथासम्भव मौन रहिए (मौन सर्वार्थसाधनम्) और दूसरे को अपना ज्ञान उगलने दीजिए। उसकी बातो मे से आपकी बातो के लिए सामग्री मिल जाएगी। बीच-बीच मे उससे सहमत होते रहिए। यदि आप विशेष बुद्धिमान् है तो आदर्शवादी नहीं बल्कि यथार्थवादी बनकर बातें कीजिए अन्यथा आपके ज्ञान की शुष्कता और निरर्थकता प्रकट होगी। दूसरे पर अपनी बुद्धि की सर्वमान्यता प्रकट न कीजिए। विचारो का स्वतन्त्र आदान-प्रदान कीजिए, पर अपने सभी रहस्यो को खोलकर दूसरो के सामने न रखिए। इस सम्बन्ध मे एक अनुभवी लेखक ने लिखा है कि दूसरों से बुद्धिमान् बनो किन्तु उनको अपनी बुद्धि की थाह मत लेने दो।[2]

बातचीत करते समय आप दूसरों की बातो से ही नही उनकी आकृति

1. Stoop to conquer.
2. Be wiser than other people but do not tell them so.

आदि से भी उनके मर्म को न तोड़िए और चुपचाप उनके अभिप्राय को समझकर सावधान होकर बातें कीजिए। शब्दो ही से किसी के सम्पूर्ण भाव की गहराई न नापिए। शेक्सपियर ने लिखा है कि शैतान अपना काम निकालने के लिए धर्मशास्त्र का पाठ भी कर सकता है।[1] अतएव बातो मे विशेष न फसिए। दूसरो के मस्तिष्क को पढिए और उसके अनुसार बातें कीजिए।

बातो में उलझने या झगड़ने से भी अनुभवहीनता प्रकट होती है। प्रायः वही लोग झगडते है जिनमे तर्क-बुद्धि नही होती अथवा जो असहिष्णु होते हैं। विरोधी के साथ भी तर्क कीजिए और उसको यह विश्वास दिलाइये कि आप उसकी बात के तथ्य को समझकर तर्क कर रहे हैं। वह आपकी गुणग्राहकता पर अवश्य रीझेगा। किसी साधारण विषय मे अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर चौकने से आपका छोटापन सिद्ध होगा। गोल्डस्मिथ का यह कथन याद रखिए कि छोटी वस्तुए उन्ही को महान् लगती है जो स्वय छोटे हैं।[2]

बडो से मिलिए—यथासभव अपने से बडो मे प्रविष्ट होने का और उनसे बाते करने का सौभाग्य प्राप्त कीजिए। मूर्ख के साथ सम्पूर्ण जीवन बिताने की अपेक्षा अनुभवी व्यक्ति के साथ एक घटा बिताना अधिक फलदायक होता है। अपने से बडो से मिलने पर शिष्टाचार का ध्यान रखिए, उनकी प्रतिष्ठा का ध्यान रखिए, उनके साधारण निवेदन को भी उनकी आज्ञा मानिए और मिलने के बाद उनकी बातो को बाटते न घूमिए। उनको आप जो भी वचन दें उसका अक्षरशः पालन कीजिए। बातचीत मे और उसके बाद भी न तो उनकी बात को काटिए और न उसको खाली होने दीजिए। उनको सिर और आखो पर रखिए।

व्यक्तित्व से प्रभावित कीजिए—व्यक्तित्व मे बड़ा आकर्षण होता है। जब आप किसी से मिलते है तो अपने व्यक्तित्व को उद्दीप्त करके

1. The devil can cite scripture for his purpose.
2 Little things are great to *little* men.

मिलिए। इसी को व्यक्तिगत आकर्षण-शक्ति[1] कहते हैं। व्यक्तित्व की सौम्यता और शील-सुजनता तथा मनोहर वाणी से सभी वश में हो जाते हैं। मिलने पर निर्भय रहिए; आंख से आंख मिलाकर और समय-समय पर श्रोता को उसके नाम या उसकी पदवी से सम्बोधित करके बातें कीजिए। इससे आपके व्यक्तित्व का ठीक विज्ञापन होगा। श्रोता का कम से कम समय लीजिए और प्रथम परिचय में दस मिनट से अधिक समय न लीजिए। उन दस मिनट में कोई स्वार्थ की चर्चा न कीजिए, नव-परिचित के ही सम्बन्ध में पूछताछ कीजिए। पूर्व-परिचित से मिलने पर भी उनके स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में कुशल-प्रश्न तो पूछ ही लीजिए। यथासम्भव लोगों के घर पर मिलिए; कार्यालय में काम से ही मिलिए। जहां भी मिलिए वहां कातरोक्तियां न सुनाइए। बिना अधिक भूमिका बांधे हुए मूल विषय पर यथाशीघ्र पहुंचिए और उस विषय में यदि कोई न कोई नई बात सूझती है तो उस सूझ का श्रेय स्वयं न लेकर दूसरों को लेने दीजिए। उससे आपका बड़प्पन ही प्रकट होगा। अपने मुख से दूसरों को श्रेय देकर भी दूसरों के मन के सारे श्रेय के भागी आप ही होंगे।

यदि आप किसी पद पर हों तो अपने व्यक्तित्व को सर्वसुलभ न बनाइए। उस दशा में अधिक घुलना-मिलना नहीं, बल्कि अधिक गम्भीर बने रहना ही आपके अधिकार को दृढ़ करेगा। सुप्रसिद्ध लेखक बर्नार्ड शॉ ने अपने विषय में लिखा है कि मैं बहुत बोलता हूं, धीर-प्रकृति होकर शक्तिमान् बनने का प्रयत्न मैंने कभी नहीं किया।[2]

मौन रहने से और वचन-गम्भीरता से निश्चित ही अधिकार-शक्ति बढ़ती है।

ध्यान से सुनिए—ध्यान से सुनना भी अच्छी बातचीत का एक प्रधान अंग है। कभी-कभी स्वयं बोलने की अपेक्षा दूसरों की बातें ध्यान से सुनना

---

1. Personal magnetism

2. I talk a great deal. I have never set up to be a strong silent man. —G. B. Shaw.

अधिक प्रभावोत्पादक होता है। दूसरो को रिझाने की यह सर्वोत्तम युक्ति है। अग्रेजी मे किसी की एक छोटी-सी कविता है जिसमें इस कला की महत्ता वतलाई गई है। वह यह है :

"दूसरो को रिझाने का उपाय जानते हो ? वहुत सरल है—उनकी वात को ध्यान से सुनो, मुग्ध होकर, सरल बनकर, सूक्ष्मता और साव-धानी से सुनो; समझदारी के साथ आश्चर्यचकित होकर, वाक्पटुता या चाटुकारिता के साथ सुनो, इस प्रकार की मनोहर ढग की वातचीत में उनको अपार आनन्द मिलेगा अर्थात् इस प्रकार वे आपकी ओर अत्यधिक आकर्षित होगे।"[1]

इसमें सन्देह नही कि पर-सतोषण के लिए दूसरो की वातो को मत्रमुग्ध होकर सुनना सर्वोत्तम साधन है। किसी अहकारी से पाला पडने पर इसी साधन का प्रयोग कीजिए। उस प्रसग मे यह भी ध्यान मे रखिए कि सुननेवाला भी मूर्ख और अनुदार बुद्धि का न हो।

वातचीत के प्रभाव, उपयोग और ढग के सम्बन्ध मे यही कुछ मुख्य वातें हैं। देश, काल और पात्र के अनुसार ही निर्णयात्मक बुद्धि से इस शक्ति का प्रयोग करना उचित है। मानव-जीवन मे वातो का वडा महत्त्व है, क्योंकि प्रत्येक विषय मे सव यही देखते है और जानना चाहते है कि लोग क्या कहते है।

---

1. Would you know the way to woo him ?
   It is simple— listen to him !
   Listen graciously and sweetly,
   Listen subtly and discreetly,
   Listen with intelligence,
   With wide-eyed awe and eloquence,
   He'ld find endless fascination,
   In such brilliant conversation !

६. व्यवहारकुशलता

किसी विषय का विषयी या विशेषज्ञ होने की अपेक्षा व्यवहारज्ञ या उपायज्ञ होना अधिक सांसारिक सफलता देता है। विद्या-वारिधि होकर भी यदि कोई व्यवहार-चतुर न हो तो उसकी विद्वत्ता घर ही मे रखी रह जाती है। इसके विपरीत विद्याशून्य होकर भी मनुष्य यदि व्यावहारिक बुद्धिवाला होता है तो वह अपनी साधारण योग्यता से भी बडा काम निकाल लेता है और लोकप्रिय बन जाता है। सारा संसार व्यापार व्यवहार के आधार पर चलता है।

व्यवहार-ज्ञान की कोई एक रूपरेखा नही बनाई जा सकती। स्थान, कार्य, परिस्थिति, काल और व्यक्ति-भेद से उसकी कला मे अन्तर पड जाता है। जो बात एक स्थान पर अनुचित एवं अधर्म मानी जाती है, वह दूसरे प्रसंग में उचित, अतएव कर्त्तव्य बन जाती है। दैनिक जीवन मे सत्य से बढकर कोई धर्म नही है, परन्तु राजनीति तथा व्यवसाय में युक्तिपूर्ण व्यवहार ही सर्वमान्य है। युक्ति के साथ कुछ छल अवश्य मिश्रित रहता है। शुक्राचार्य ने लिखा है कि युक्ति प्रायः छलयुक्त होती है: 'युक्ति छलात्मिका प्रायः।' और यह भी लिखा है कि जहा युक्ति-शक्ति दोनों संयुक्त रहती है। वहा चारो ओर से विजय मिलती है:

यत्र नीतिबले चोभे तत्र श्रीस्सर्वतोमुखी। (शुक्रनीति)

इसलिए यह नही कहा जा सकता कि शुद्ध सत्य ही एकमात्र व्यावहारिक धर्म है। कहीं-कहीं युक्ति द्वारा ही सत्य-धर्म की रक्षा होती है। कृष्ण के जीवन-चरित्र से यह बात ठीक-ठीक समझी जा सकती है। जो कृष्ण महाभारत के आदि मे अर्जुन को गीता-धर्म का उपदेश देते थे, वही परिस्थितिवश अर्जुन से विजय-लाभ के लिए कहते थे कि तू अब

धर्म को त्याग दे : 'धर्ममुत्सृज पाण्डव ।' (द्रोण पर्व) । इससे यह प्रमाणित होता है कि समयानुकूल कल्याणकारी आचरण ही श्रेष्ठ व्यवहार-धर्म है । बृहस्पति ने कहा है कि केवल प्राचीन शास्त्रो के आधार पर अपने कर्त्तव्य का निर्णय नही करना चाहिए, युक्तिहीन विचारो से धर्म-हानि होती है, अर्थात् कर्त्तव्य का निर्णय नही होता :

केवल शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः ।
युक्तिहीने विचारे तु धर्महानिः प्रजायते ।। (बृहस्पति)

दूसरे शब्दो मे कोरे आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी होना चाहिए, धर्मावतार न बनकर समय-चतुर (अवसरवादी) बनना चाहिए । समय-चतुर वह है जो इस बात को जाने कि कब, कहा और किसके साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए ? वह व्यवहार युक्तिपूर्ण होकर भी जब नैतिकता पर अवलम्बित रहता है तभी सफल होता है । सत्य-पक्ष की दृढता के बिना केवल बुद्धिकौशल या उपाय से विजय नही होती । जिससे अन्त मे सत्य की प्रतिष्ठा हो, वही श्रेष्ठ युक्ति है और वही मानव-धर्म है ।

इस विषय को विशेष विस्तार न देकर हम जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे व्यवहृत आचार के मूल सिद्धान्तो की ओर सकेत करेंगे । उनसे यह विषय अधिक स्पष्ट हो जाएगा और यह भी ज्ञात होगा कि कहा शुद्ध सरल आचरण ही व्यवहार-धर्म है और कहा युक्तिपूर्ण आचरण सत्य धर्म की मर्यादा को बचाता है ।

१. गृह-नीति

घर एक ऐसा स्थान है जहा पर शुद्ध सत्य-अहिंसा-विश्वास-समन्वित व्यवहार ही सुखदायी होता है । पारस्परिक सद्भाव और सद्व्यवहार से ही घर स्वर्ग हो जाता है । दाव-पेंच, कलह, छल-कपट से वही नरक हो जाता है । गृह-नीति-सम्बन्धी इन मुख्य बातो पर ध्यान दीजिए :

१. परिवार किसी एक का नही, प्रत्येक पारिवारिक प्राणी का होता है । अपने घर में सब बादशाह होते है, सब अपने अधिकारो की रक्षा चाहते हैं । उस स्वराज्य में कोई अपमानित या तिरस्कृत नही होना

चाहता। बाहर के अपमान लोग सह लेते हैं, परन्तु अपने घर में घरवालों द्वारा किया हुआ अपमान नहीं सह सकते। बाहर निर्धन होकर रह सकते है, परन्तु भाई बन्धुओ के बीच में निर्धन बनकर कोई नही रहना चाहता: 'न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्।' मानव-स्वभाव ऐसा ही होता है। इसीलिए घर के छोटे से छोटे प्राणी की मान-रक्षा स्वार्थपूर्ति होने से वह सतुष्ट रहता है और गृह सुसगठित रहता है। उपेक्षा, अन्याय से भीतर-भीतर विष फैलता है। पारस्परिक सहानुभूति, त्याग और प्रेम-व्यवहार से ही गृह-मर्यादा स्थापित रहती है।

कम से कम आजकल घरो मे भी प्रजातन्त्र होना चाहिए। किसी एक की स्वेच्छाचारिता या निरकुशता से घर का वातावरण पुराने हैदराबाद जैसा हो जाता है। गृह-स्वामी अब पत्नी को गृह-दासी बनाकर नही रख सकता। यह समानाधिकार का युग है। समय-परिवर्तन से स्वाधिकार और स्वतन्त्रता की भावनाए समस्त वायुमण्डल मे भर गई हैं। अतएव किसी एक व्यक्ति का स्वच्छन्द शासन या अत्याचार दूसरो पर न होना चाहिए और सर्वसम्मति तथा पारस्परिक सहयोग से ही घर का शासन चलाना चाहिए। घर मे कोई तुच्छ प्राणी नहीं होता। घर के छोटे प्राणियो का सहयोग भी नितान्त आवश्यक होता है, क्योकि चाणक्य के मत से, भूसी के बिना चावल नही उग सकते: 'तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुला:।'

२ गृह-प्रजातन्त्र का एक मुखिया अवश्य होना चाहिए। नीति का वचन है कि जिस कुल मे सभी अभिमानी नेता हो अथवा सभी अभिमानी हो या सब महत्त्व की इच्छा रखते हो, वह कुल नष्ट हो जाता है:

सर्वे यत्र विनेतार सर्वे यत्राभिमानिन.।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति कुलं तदवसीदति॥

मुखिया का अर्थ पुलिस-कप्तान नहीं है। बहुत-से गृहपति या पिता पुलिस-कप्तान जैसे लगते हैं। उनको चौबीसो घण्टे कोप का प्राकृतिक बुखार चढा रहता है। वे आतक-बल से सबपर प्रभुत्व रखना चाहते है,

अहकार प्रदर्शित करते हैं और घर मे एक-दूसरे के पीछे जासूस लगाकर सबका भेद लेना चाहते है। घर में ऐसा सरकारी ढग का मुखिया न चाहिए, वहा तो सत्य-अहिंसा और सेवा-भाव को अपनानेवाला अनुभवी नेता चाहिए, अर्थात् गृह-पालक को ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे लोग स्वाभाविक रीति से उसके पड़प्पन का सम्मान करें। घर मे फौजी व्यवहार की क्या आवश्यकता ? वहा उद्दण्डता या सशय का वातावरण बनाना घर को कवायद का मैदान या खुफिया पुलिस का दफ्तर बनाना है। पिता के लिए एक सस्कृत शब्द 'क्षातु' है जिसके अर्थ में ही उसका धर्म इगित है। पिता अर्थात् गृहाध्यक्ष की शोभा और शक्ति उसके सहनशील एव क्षमावान् होने मे ही है। उसके साधु-व्यवहार से गृह-निर्वाह होता है और अहकारात्मक व्यवहार से गृह-दाह।

३. घर के तीन प्रकार के मुख्य प्राणियो के साथ तीन प्रकार का व्यवहार करना पडता है। बच्चो के साथ शुद्ध स्नेह और सरलता का व्यवहार करना उचित है। शास्त्र के मत से पुत्र-तीर्थ सब तीर्थों मे श्रेष्ठ माना गया है। स्त्रियो के सम्बन्ध में शास्त्र का मत है कि उनका अपमान होने से घर में लक्ष्मी नही ठहरती। उन्हें हिन्दूशास्त्र गृह-लक्ष्मी मानता है। तीसरे प्रकार के मुख्य प्राणी वृद्ध-जन हैं। वृद्धो के साथ व्यवहार मे बहुत सावधान रहना चाहिए क्योकि अशक्तता के कारण उनके स्वभाव मे नीरसता, निराशा, युवको के प्रति द्वेष-भावना, उत्साहहीनता रहती है; अतएव वे ससार को इन्ही दृष्टिकोणो से अपनी थकी हुई आखो से देखते हैं। उनके साथ युवको का दृष्टिकोण प्राय. नही मिलता। इस विषमता को देखकर ही सम्भवत: प्राचीन मनोवैज्ञानिको ने यह विधान बनाया था कि निश्चित आयु के बाद वे जगल-निवासी हो जाए। अब यह सम्भव नही है। गृह-शान्ति के लिए यही आवश्यक है कि वृद्धो के साथ उचित व्यवहार किया जाए। अग्रेजी की इस कहावत को याद रखना चाहिए कि बुढापा दूसरा बचपन है।[1]

---

1. Old age is second childhood.

४. गृह-व्यवहार में अतिथि-सत्कार का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। उससे घर की प्रतिष्ठा और मर्यादा बढती है। चाणक्य ने एक श्लोक में लिखा है कि 'आइए, यहा विराजिए, यह आसन है, बहुत दिनो के बाद दिखलाई पडे, क्या नई बात है, बाल-बच्चो-सहित कुशल से तो है ? मैं आपके दर्शन से बहुत प्रसन्न हुआ—इस प्रकार जो घर आए हुए का आदर से स्वागत करता है, उसके घर नि.शक मन से जाना चाहिए।' सद्गृहस्थ का यही श्रेष्ठ धर्म है कि वह घर पर आए हुए छोटे व्यक्ति को अपना बड़ा माने। वामन भी यदि अतिथि होकर आए तो उसको विराट् समझना चाहिए।

२. मित्र-नीति

१. मित्रता के व्यवहार मे यह स्मरण रखना चाहिए कि मित्रगण एक-दूसरे के गोद लिए बन्धु होते है। अतः परस्पर बन्धुवत् व्यवहार ही उचित है। पराये को अपना बना लेने मे मनुष्यता की बडी भारी विजय होती है। वह तभी सिद्ध होती है जब परस्पर सद्भावना, सवेदना प्रकट होती रहे और दोनो ओर का स्वार्थ दबा रहे। समस्वभाववालो की ही मित्रता टिकती है।

२. सहसा न तो किसी को मित्र बनाना चाहिए और न किसी का मित्र बन जाना चाहिए। बहुत-से लोग सामने स्वार्थवश मित्र और पीठ-पीछे महास्वार्थवश या स्वभाववश शत्रु का आचरण करते है। अग्रेजो की इस नीति को याद रखना चाहिए कि प्रकट शत्रु, सदिग्ध मित्र से अच्छा होता है।[1] रूप और मीठी बातो के धोखे में भी न पडना चाहिए। तुलसी की यह उक्ति प्राय. चरितार्थ होती है: 'मन मलीन तन सुन्दर कैसे। विष रस भरा कनक घट जैसे॥' इसलिए पहले परिचित बनना चाहिए, फिर परस्परज्ञ, तब सुहृद्। सबको अतरग मित्र मानकर मित्रोचित व्यवहार करना घातक होता है। जो केवल समय और स्वार्थ के साथी होते हैं, उनसे बुद्धिमान् लोग दूर रहना पसन्द करते है। वही मित्र श्रेष्ठ होता है

1. An open enemy is better than a doubtful friend.

जो सम्पत्ति-विपत्ति मे एक-सा व्यवहार करे। विपत्ति के दिनो में जो मित्रता जमी रहती है वही चिरस्थायी होती है। तुलसी ने कहा है कि संकट ही में मित्र की परीक्षा होती है: 'आपतिकाल परखिये चारी। धीरज धरम मित्र अरु नारी ।।"

३. विद्वानो के मत से अच्छे मित्र के ये लक्षण है: वह अपने साथी को अपराध करने से रोकता है, उसको हितकर कार्य मे लगाता है, उसकी गुप्त बातो को छिपाता है, उसके गुणो का ढिढोरा पीटता है, विपत्ति मे साथ नही छोड़ता और समय पडने पर आर्थिक सहायता भी करता है:

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गत च न जहाति, ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिद प्रवदन्ति सन्तः ।।

किसी का सहृदय मित्र बने रहने के लिए इन गुणो को अपनाना चाहिए। एक मित्र को दूसरे पर इतना विश्वास होना चाहिए कि वह परस्पर वैदिक ऋषियो की भाषा मे साभिमान यह कह सके कि तुम्हारे जैसे व्यक्ति का मित्र कभी विनष्ट नही होता: 'न रिष्येत्त्वावतः सखा।'

४. एक-सी स्थिति अथवा एक-सी विषम स्थिति मे रहनेवाले व्यक्तियो मे प्राय. अधिक घनिष्ठता और पारस्परिकता होती है। काग्रेसवालो की जेल-मित्रता इसका स्पष्ट उदाहरण है। गाढ़े दिनो की मित्रता प्राय. खण्डित नही होती। इसलिए किसी के हृदय पर पूर्ण विजय करनी हो तो उसके दु.ख के दिनो में उसकी सहायता करनी चाहिए। वही मनुष्यता जागती है और जब मनुष्यता जागती है तो निश्चय ही एकात्मता होती है।

५ मित्रता करना सरल है, परन्तु उसको निभाना कठिन है। निभाने के लिए कुछ विशेष बातों पर ध्यान देना चाहिए। पहली बात तो यह है कि किसी मित्र से अनुचित लाभ लेने का दुष्प्रयास न करना चाहिए। आपस मे लेन-देन का व्यवहार पारस्परिक स्नेह को कम करता

है। देनेवाला बडा बन जाता है और लेनेवाला छोटा। इस प्रकार समानता का भाव नष्ट होने से मित्रता का तराजू ऊपर-नीचे होने लगता है। दूसरी बात यह है कि मित्रो के व्यक्तिगत जीवन मे हस्तक्षेप न करना चाहिए और न किसी अवसर पर उनका उपहास ही। मित्र होने के कारण कोई अपना व्यक्तित्व नही खो देता। इसके अतिरिक्त स्वय अधिकाधिक सहनशील होना चाहिए। जल्दी भड़कनेवाले लोगो की सगति किसी को प्रिय नही लगेगी। किसी विषय मे दुराग्रह वा छल-कपट करके अथवा दम्भ दिखलाकर मित्र को वशीभूत करने का प्रयास न करना चाहिए।

कैसा भी मित्र हो, उससे अत्यधिक आशा नहीं की जा सकती। सबसे स्वतन्त्र स्वार्थ और सबकी स्वतन्त्र विवशताएं होती हैं। सज्जन से सज्जन मित्र भी एक सीमा तक ही अपने स्वार्थ का त्याग कर सकता है। अतएव अपनी मित्रता को किसी के लिए भारस्वरूप न बनाना चाहिए। शास्त्र का यह कथन एक अश तक मान्य है कि मित्र का भी अत्यधिक विश्वास न करना चाहिए क्योंकि मित्र के भी मित्र होते हैं, जिनसे वह गुप्त भेद प्रकट कर सकता है अथवा कभी स्वय वैरी होकर उन बातो का दुरुपयोग कर सकता है।

६. मित्रता में छोटे-बड़े का ध्यान नही होता, परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि कोई मित्र उच्च-पदाधिकारी हो जाए और आप बाबू ही बने रहे तो भी उसके साथ समानता का दावा करें या उसके बल पर स्वय ऐंठने लगें। इस सम्बन्ध में अग्रेजी की यह नीति मान्य है कि उच्च-पदस्थ मित्र को अपना खोया हुआ मित्र समझना चाहिए।[1] सभी तो नही खो जाते, परन्तु अधिकाश व्यक्ति पद-मद में उन्मत्त होकर या बहकर अवश्य खो जाते हैं। यदि सज्जनतावश ऐसे लोग मित्र बने रहें, तो भी उनके बल पर स्वय बलान्ध न होना चाहिए। चिकित्सक के भरोसे कोई जानबूझकर विष थोडे ही खाता है! पर-बल से कोई स्वयं बलवान् नही बनता।

---

1. A friend in power is a friend lost.

७. मित्रता के व्यवहार में सदैव सतर्क रहना चाहिए। थोड़े संशय से भी उसका मूल नष्ट हो जाता है। बार-बार मिलने-जुलने से ही वह जीवित रहती है। परन्तु बहुत मिलने-जुलने से भी वह फीकी पड़ जाती है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्।'

३. लोक-नीति

लोक मे व्यवहारकुशलता की सर्वाधिक आवश्यकता होती है, क्योंकि वहां पर भिन्न-भिन्न स्वभाव और श्रेणी के व्यक्तियों के सम्पर्क मे रहना पड़ता है। लोक-व्यवहार-सम्बन्धी कुछ मुख्य-मुख्य बातें ये हैं :

१. शिष्टता ही लोक-व्यवहार की आत्मा होती है। शिष्टाचार और सौजन्य के प्रदर्शन से मनुष्य का बड़प्पन प्रकट होता है। इस संबध में हमे राम-रावण-युद्ध के बाद की एक घटना याद आती है। रावण रणभूमि में पडा था; राम ने लक्ष्मण से कहा, 'राक्षसराज लोक-नीति का और राजनीति आदि का प्रकाण्ड पडित है, उससे मृत्यु-पूर्व कुछ उपदेश ग्रहण कर आओ।' लक्ष्मण रणस्थली में जाकर उसके सिरहाने खड़े हो गए। रावण के पूछने पर उन्होंने अपने आने का कारण बतलाया। नीतिज्ञ रावण ने स्वाभिमानपूर्वक कहा, 'तुम राजपुत्र होकर भी लोक-शिष्टाचार नहीं जानते; शिक्षा की भिक्षा मांगनेवाला शिक्षक के सिर पर नहीं, उनके पैर के पास खड़ा होता है और जब तक तुम लोक-मर्यादा का पालन नहीं करते तब तक मैं तुम्हे ज्ञानदान नहीं दे सकता।' लक्ष्मण तत्काल सचेत हो गए और उसके पैरो के पास विनम्रतापूर्वक खड़े हो गए। रावण ने उनको उपदेश दिया कि कभी किसी कार्य को वादे पर न टालना।

शिष्टाचार का पालन बडो के साथ ही नहीं, छोटो के साथ भी उतना ही आवश्यक है। सुप्रसिद्ध विद्वान् कार्लाइल ने लिखा है कि छोटो के साथ सद्व्यवहार करके ही बडा आदमी अपने बड़प्पन को प्रकट करता है।[1]

---

1. A great man shows his greatness by the way he treats little man. —Carlyle,

इस सम्वन्ध मे हमे राम का आदर्श सामने रखना चाहिए। राम अपने व्यवहार में कभी मर्यादा का उल्लंघन नही करते थे। उदाहरणार्थ वे विभीषण के भाग्य-विधाता थे, परन्तु रावण की मृत्यु के वाद जब सीता को अशोकवन से लाना था तो उन्होंने हनुमान् से कहा कि राजा विभीषण की आज्ञा लेकर लका मे प्रवेश करो और सीता को लाओ। साथ ही उन्होने विभीषण से निवेदन किया कि सीता को लाने की अनुमति दीजिए। लका-विजेता राम के लिए यह सब आवश्यक नही था, परन्तु विजयी होकर भी वे अपनी स्वभावसिद्ध शिष्टता की मर्यादा को कैसे त्यागते !

२. सामाजिक जगत् में कही भी अन्धा न वनना चाहिए, न स्वार्थान्ध होना चाहिए, न मदान्ध और न धर्मान्ध। जिसको रतौन्धी होती है उसको आकाश के नक्षत्र भी नही दिखलाई पडते। अपने को दूसरो की परिस्थिति मे रखकर उनके दृष्टिकोण से भी किसी वस्तु को देखना चाहिए। सार्वजनिक वातो में व्यक्तिगत वातो का समावेश न करना चाहिए। अपनी दृष्टि में लोकाचार यदि मिथ्याचार समझ पडे, तो भी उसको सदाचार ही मानना चाहिए। कितना भी शुद्ध लोकाचार हो, व्यक्तिगत दृष्टि से वह कुछ कृत्रिम होता ही है। समाज की रुचि के अनुकूल अपने को वनाना पडता है।

३. समाज मे अपनी शान्तिप्रियता ही प्रकट करनी चाहिए। वाणी-व्यवहार से ऐसा न प्रकट होना चाहिए कि लोग हमे नारद का वंशधारी समझें। लोकप्रियता से लोक-सम्पत्तियां सुलभ हो जाती हैं : 'जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः।' (भारवि)।

४. व्यवहार मे अपने स्वाभिमान और दूसरों के मानापमान का भी ध्यान रखना चाहिए। गांधीजी के इस उपदेश को ध्यान मे रखना चाहिए कि विना अपनी स्वीकृति के कोई व्यक्ति आत्मसम्मान नही गवाता।[1]

---

1. No person loses honour or self-respect but by his consent. —Mahatma Gandhi.

कोई ऐसा कर्म न करना चाहिए जिससे अपनी हसी हो अथवा दूसरो का मान-मर्दन हो। हास-परिहास, चाल-ढाल, रहन-सहन, वेश-भूषा सभी से अपना गौरव प्रकट करना चाहिए। यदि कोई सुपात्र हुए बिना ही चाहता है कि लोग उसका अभिनन्दन करें तो ऐसा नही हो सकता। लोग उसी के आगे नतमस्तक होते हैं, जिसको वे अपने से योग्य और सबल मानते हैं। मिथ्याभिमान से अपना अपमान होता है।

५. समाज में निर्बलों का मान सदैव रक्षणीय है। मुख्यतः स्त्रियों पर आख और हाथ उठाना असम्यता है। स्त्रियो के साथ दारुण व्यवहार भी समाज मे असह्य होता है। वाल्मीकि का मत है कि सज्जन लोग स्त्रियो पर कभी अत्याचार नही करते। लक्ष्मण जब सुग्रीव पर भयकर कोप करके किष्किन्धा मे पधारे थे तो सुग्रीव को यही नीति याद आई थी। उसने तारा से कहा कि तुम्ही आगे जाकर मिलो क्योकि तुम्हारे जाने से लक्ष्मण जैसे नर-श्रेष्ठ का क्रोध शान्त हो जाएगा: 'नहि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम्।' उसका अनुमान सत्य निकला।

६. यदि कही क्रोध करने की आवश्यकता पडे तो वहा अपनी तेजस्विता का ही विज्ञापन करना चाहिए, उच्छृङ्खलता का नही। नीतिवाक्य है कि अपना तेज प्रकट करते रहना चाहिए; काठ की अग्नि का सब उल्लघन करते है, परन्तु जलती हुई आग की उपेक्षा कोई नही करता। इसलिए शक्ति की अग्नि को प्रकट करते रहना चाहिए, परन्तु सप्रयोजन और सद्विचार के साथ। अनुचित क्रोध जो हठ, दुराग्रह या दु.शीलता से जन्मता है वह आत्मनाशी होता है। बार-बार कोप करने से वैर-भाव दृढ होता है: 'वैर प्रीति अभ्यास वश, होत होत ही होत।'

७. समाज में सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति कही न मिलेगा। अतएव यथा-संभव परछिद्रान्वेषण न करना चाहिए। गुणग्राहक स्वय गुणी गिना जाता है। दूसरो के सद्गुणो से अपना लाभ लेना चाहिए, उसके दुर्गुण

उसी के पास रहने देने चाहिए। सबसे सुन्दर उपदेश यह है कि लोक-सुधारक बनने से पहले अपने सिद्धान्तो का स्वय प्रयोग करके अपना सुधार करे। स्वय बिगडा हुआ सुधारक या सज्जनवेशी दुर्जन मान नही पाता।

८. व्यवहारकुशल वही माना जाता है जो पर-स्थिति और परि-स्थिति को ठीक-ठीक पढ लेता है, दूसरो के मनोभाव को शीघ्र ताड लेता है और समयानुकूल सहानुभूति, हर्षशोक-उद्‌गार प्रकट करके आत्मीयता स्थापित कर लेता है। वह न तो विरुद्ध-धी (उलटी-बुद्धि-वाला) होता है और न द्विजिह्व (दो तरह की बातें करनेवाला)। मन, कर्म, वचन से एक रूप प्रकट होना ही सज्जन का लक्षण है 'मनस्येक, वचस्येक, कर्म-ण्येक महात्मनाम्।' बहुरूपिये के कृत्रिम भाव-प्रदर्शन का कुछ भी मूल्य नही है।

९. सामाजिक व्यवहार मे इन दोनो का त्याग करना चाहिए : झूठे वादे करना, किसी को धर्म-सकट मे डालना, चालाकी से काम निकालना, अपनी पहुच के बाहर की किसी वस्तु को पाने का दुस्साहस और लोभ। इनके अतिरिक्त दो बड़े सामाजिक अपराध है, जिनसे प्रत्येक चतुर व्यक्ति को बचना चाहिए। प्रथम है कृतघ्नता अपराध ; द्वितीय ईर्ष्या। नेपो-लियन कृतघ्नता को सबसे बड़ा सामाजिक अपराध मानता था। ईर्ष्या के लिए किसी पाश्चात्त्य विद्वान् ने कहा है कि यदि किसी को दण्ड देना हो तो उसको किसी से ईर्ष्या करना सिखा दो।

१०. मौन रहने से समाज में गम्भीरता प्रकट होती है, परन्तु किसी अनीति को देखकर चुप रहने से आत्मदीनता व्यक्त होती है और स्वयं दोषभागी होना पड़ता है, क्योकि 'मौन सम्मतिलक्षणम्।' अतएव बात-चीत की तरह मौन बनने मे भी सावधान रहना चाहिए। अपने व्यक्तिगत कष्टो के सम्बन्ध में यथासम्भव अवश्य मौन रहना चाहिए, क्योकि :

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखै गोय।
हँसिहै लोग जहान के बाँटि न लेहै कोय॥

✓ नीतिकारों का मत है कि धन का नाश, मन का दुःख, घर का दुश्चरित, ठगी और अपमान—ये बातें बुद्धिमान् दूसरों से न कहे :

✓ अर्थनाश मनस्ताप, गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनं चाऽपमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥

गुप्त बातों के सम्बन्ध में शास्त्र का यह कथन सर्वथा मान्य है कि उनको छः कानो में पड़ने से बचाना चाहिए : 'षट्कर्णं वर्जयेत्सुधीः।'

४. व्यवसाय-नीति

कार्यवश सप्रयोजन जो व्यवहार किया जाता है, उसके लिए निम्न-लिखित कतिपय बातो पर ध्यान देना चाहिए :

१. काम को (आतुर मति से) सहसा न करे; बिना विचारे काम करना घोर आपत्तियो का स्थान है; विचार कर काम करनेवाले को गुणग्राहक सम्पत्तिया स्वीकार कर लेती हैं :

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदा पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिण गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥ (भारवि)

२ कार्य में समय का सदैव ध्यान रखना चाहिए। कोई भी कार्य हो, वह नियत समय के पूर्व ही तैयार मिलना चाहिए। समय पर न पहुंचने से रेल ही नही, भाग्य या सिद्धि की रेल भी छूट जाती है।

३. कार्य-सिद्धि के लिए किसी से मिलना हो तो नियत समय पर ठीक वेशभूषा मे जाना चाहिए। मिलने पर पहला प्रभाव अधिक से अधिक गहरा डालना चाहिए। झेंपू या उद्दण्ड न बनकर प्रगल्भता, साहस और वेग (Push) का परिचय देना चाहिए। विषयानुकूल भाव-प्रदर्शन, वाक्य-प्रयोग और अग-चेष्टा दिखलाकर मिलनेवाले को प्रभावित करना चाहिए। अपने को सब प्रकार से मनोज्ञ बना रखना चाहिए।

४. नैषधकार के इस मत को न भूलना चाहिए कि बुद्धिमान् लोग तालाब और हृदय की गहराई को जानकर ही उसमे पैठते है :

ह्रदे गभीरे हृदि चावगाढे शसन्ति कार्य्यावतरं हि सन्त.।

मानव-स्वभाव का पारखी तत्काल दूसरो के मन को पढ सकता है

ओर वही कार्य मे सफल होता है। अतएव जिससे मिलना है, उसकी थाह लेकर तब आगे बढना चाहिए। उसकी मन.स्थिति को समझकर तब तर्क-आक्रमण करने मे सफलता मिलती है अन्यथा अधेरे मे टटोलना पड़ता है।

५. प्रत्युत्पन्नमति होने का परिचय देना, सुननेवाले के प्रति सहज उत्सुकता प्रकट करना, रचनात्मक सुझाव देना, कोमल भाषा में कठोर तर्क देते हुए एकमत होने की चेष्टा दिखलाना, अपने मत का युक्ति-सम्मत समर्थन करना, दूसरे को अपना दृष्टिकोण ठीक-ठीक समझा देना और उसकी बातो को ध्यान से सुन-समझकर सप्रभाव शीघ्रतर उत्तर देना —यही व्यवहार-पटुता प्रकट करते है। समझाने का अर्थ यह है कि आपकी बुद्धि जिस दिशा मे दौड़ती हो, उसी दिशा में समझनेवाले की विचारधारा भी प्रवाहित हो चले। अपने काम के लिए दूसरे की बुद्धि ही तो सच्ची व्यवहार-चातुरी है।

६ वार्तालाप में स्पष्टवादिता और उक्ति-पटुता का आश्रय लेना चाहिए, चाटुकारिता और हठवादिता का नही। वार्तालाप या व्यवहार से कोई ऐसा छल न प्रकट होना चाहिए। जिसके प्रकट होने पर आगे नीचा देखना पड़े। व्यावसायिक चातुर्य (Tact) एक सीमा तक ही आवश्यक होता है। महंगी चीज को सस्ती प्रमाणित करके बेचना छल नहीं है, परन्तु नकली चीज को असली कहना छल है। ऐसा छल पचता नही। यथार्थता का ध्यान सर्वत्र रखना चाहिए।

७. काम से मिलने पर मनोरजन की बातें न करके कार्य-सिद्धि के लिए ही अवसर का उपयोग करना चाहिए। सबसे बड़ी बुद्धिमानी तो इसमे है कि मनोरजन के प्रसग को भी व्यर्थ न जाने दें और उससे काम बना लें। एक बार में सफलता न मिले तो हतोत्साह न होकर दुबारा 'चढ़ाई' करनी चाहिए। निराश होकर किसी से सम्बन्ध-विच्छेद करना मूर्खता है। अंग्रेज़ी में कहावत है कि पहाड़ को समतल बनाकर पार करने

की अपेक्षा उसको चढकर पार करना अधिक सुगम है।[1]

८. व्यवसाय में सघर्ष से सदैव बचना चाहिए। ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि न तो दूसरे की बात कटे, न अपनी। 'बात का खाली होना' सम्मान के विरुद्ध पडता है। बात बिगडने पर भी उसको सुलझाने का ही प्रयत्न करना चाहिए। आख निकालने या लाल-पीले होने से व्यवहार में कटुता आती है। कहा भी है कि जिसके पास क्रोध हो उसको शत्रु की कमी कैसे हो सकती है। क्षणिक उत्तेजना मे न पडकर दूरदर्शिता से काम लेना चाहिए।

९. पत्रव्यवहार मे विशेष सतर्कता की आवश्यकता होती है। किसी विषय मे अपने मत को निश्चित करके वकील-बुद्धि से शब्दो को तोलकर नव सक्षिप्त पत्र लिखने चाहिए। कार्य-सम्बन्धी पत्रो मे साहित्य-शैली अनर्थकारी होती है। ऐसा न लिखना चाहिए कि पढने वाला खोदे पहाड और पाए चुहिया।

सक्षेप मे यही समझना चाहिए कि युक्तिपूर्ण स्पष्ट व्यवहार से ही कार्यक्षेत्र मे सफलता मिलती है। कार्यक्षेत्र में व्यवहार-निपुण होना महत्त्व प्राप्त करने का सीधा मार्ग है।

५. मूर्ख-नीति

मूर्ख के साथ व्यवहार करना सबसे कठिन है, क्योकि वह अपनी ही बात सुनाता है और दूसरे की सुनता भी है तो कुछ का कुछ समझकर अर्थ का अनर्थ करता है। नीतिकारो ने लिखा है कि मूर्ख की कोई औषधि नही : 'मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।' उपाय से उसके स्वभाव को नही बदला जा सकता, क्योकि वह तपाए पानी की तरह फिर ठडा हो जाता है। सुनते हैं, एक गुरु ने अपने एक मूर्ख चेले को एक बार बताया था कि सिर पर पगडी बाधने से मनुष्य का सम्मान बढता है। गुरु-वचन सुनकर चेला कार्यवश बाजार को चला। रास्ते मे उसे ध्यान आया कि वह पगडी बाध लेता तो सब उसकी बड़ी आवभगत करते। सो, पास मे

---

1. It is easier to climb a mountain than to level it.

अन्य वस्त्र न होने के कारण उसने अपनी धोती खोलकर सिर पर बाध ली और नग्न होकर वह यह विश्वास लेकर चला कि अब जो देखेगा वही उसको महामहोपाध्याय समझेगा। कथा के तात्पर्य को समझिए। मूर्ख को सिखाने मे भी अपनी और उसकी बुद्धि का लोप होता है।

सबसे बडी व्यवहारकुशलता इसमे है कि मूर्ख को छेडा न जाए। अग्रेजी मे एक कहावत है—साड की अगाड़ी, घोडे की पिछाडी और मूर्ख के चारो ओर से बचना चाहिए। मूर्ख को वश मे करना हो तो उसको कुछ खिला-पिला देना चाहिए, या उसके मनोरजनार्थ कोई मीठी कथा सुना देनी चाहिए। उसके मन के अनुकूल कुछ कर देने से भी वशीकरण होता है। परन्तु इसने आत्मप्रतिष्ठा के नष्ट होने का भय रहता है। ऐसे व्यक्तियो से अलग रहने ही में बुद्धिमानी है। कीचड़ लगाकर उसको धोने की अपेक्षा उसको न छूना ही अच्छा है।

मूर्खों की एक अर्धशिक्षित श्रेणी भी होती है। उस श्रेणी के व्यक्ति साधारण ज्ञान से अहकार-विमूढ हो जाते हैं। भर्तृहरि ने लिखा है कि मूर्ख को रिझाना सहज है, विद्वान् को प्रसन्न करना बहुत ही सहज है, परन्तु अल्पज्ञान से अपने को महाज्ञानी समझनेवाले को ब्रह्मा भी नही समझा-बुझा सकते :

अज्ञ' सुखमाराध्य. सुखतरमाराध्यते विशेपज्ञ.।
ज्ञानलवदुर्विदग्ध ब्रह्मापि त नर न रञ्जयति।। (नीतिशतक)

ऐसे व्यक्तियों के अहकार का पोपण करके उनको गद्गद बनाकर ही काम निकाला जा सकता है।

६. असाधारण नीति

मानव-समाज मे सब साधु नही रहते, मायावी और दुष्ट भी रहते है और उन्ही का यहा बहुमत है। धूर्त जन्तुओ (मनुष्यो) को महात्मागण योग तथा आत्मशक्ति से भले ही वश मे कर ले, परन्तु प्राय: वे युक्ति से ही वश मे होते है, इसलिए बुद्धिमानो को राजनीति, कूटनीति और दण्ड-नीति आदि का आश्रय लेना पड़ता है। सब एक स्वभाव के नही होते,

अत. एक ही युक्ति से वश मे नही होते । परिस्थितियो के अनुसार कालज्ञ, युक्तिज्ञ और मर्मज्ञ लोग भिन्न-भिन्न उपायों से उनको वश मे रखते हैं। प्रसगवश इस सम्बन्ध की कुछ उपयोगी बातें हम यहां देते है।

१. महामुनि व्यास का कथन है कि अधिक सरल न बनो ; जाकर वन-तरुओ को देखो; वहां सीधे पेड़ कटे हुए और टेढे पेड़ खडे हुए मिलेंगे :

नात्यन्त सरलैर्भाव्य गत्वा पश्य वने तरून् ।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति नीरुजः ।।

तुलसी ने इस बात को इस ढग से कहा है :

टेढ़ जानि वन्दइ सब काहू ।
बक्र चन्द्रमहिं ग्रसइ न राहू ।।

राम भी जब साधु-भाव से समुद्र को पार करना चाहते थे तो समुद्र उनको मार्ग देने को तैयार नही था । तब राम ने अपना क्षमाभाव त्याग-कर धनुष-बाण उठाया और और कहा—असमर्थ समझनेवाले जन के ऊपर क्षमा करने को धिक्कार है : 'असमर्थं विजानाति धिक् क्षमामीदृशे जने' (रामायण) । समुद्र तत्काल विनीत हो गया। हैदराबाद और भारत सरकार के विषय में भी यह बात सत्य हुई ।

शॉ ने गाधीजी की हत्या के बाद कहा था कि परम सज्जन होना भयावह है ।[1] कम से कम साधारण समाज मे बहुत सीधा बनना कष्ट-प्रद होता है। दुष्ट लोग सरल व्यक्ति को मेमना समझते है और मेमने के पीछे भेड़िये स्वभावतः लग जाते है । प्राचीन ऋषि-मुनियो को राक्षस-गण घेरे रहते थे, परन्तु धनुर्धारी राम-लक्ष्मण के नाम से भी दूर भागते थे । यह स्मरण रखना चाहिए कि 'सीधे का मुह कुत्ता चाटे ।'

२. महाकवि भारवि ने लिखा है कि वे मूढ निश्चय ही पराभव को प्राप्त होते है जो मायावियो के साथ मायावी नही बनते :

---

1. It is dangerous to be too good.

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। (किरातार्जुनीय)

३. पचतन्त्रकार ने लिखा है कि उत्तम को प्रमाण करके, शूर शत्रुओ मे भेद-भाव पैदा करके, नीच को दे-दिलाकर और समान पराक्रमवालो के साथ युद्ध करके विजय प्राप्त करे :

उत्तम प्रणिपातेन, शूर भेदेन योजयेत्।
नीचमल्पप्रदानेन, सम शक्तिपराक्रमैः॥

४. कालिदास का मत है कि केवल नीति का आश्रय लेना कायरता है और केवल शक्ति का प्रयोग करना पशुता है :

कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम्।

५ महाभारत मे लिखा है कि जब तक अवसर न आए, शत्रु को कन्धे पर उठाकर रखना चाहिए; समय आने पर उसको वैसे ही पटककर फोड डाले जैसे पत्थर पर पटककर घड़ा फोडा जाता है :

वहेदमित्र स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्यय।
अथैनमागते काले भिन्देद् घटमिवाश्मनि॥

सिह भी पिछडकर छलाग भरता है परन्तु सर्वत्र पिछडना भी ठीक नहीं होता है। जहा शत्रु द्वारा हानि की आशका हो, वहा पहले ही आक्रमण कर देने मे बुद्धिमानी होती है। इसीलिए नीतिकारो का मत है कि आक्रमण ही सर्वोत्तम निवारण है।[1]

६. कौटिल्य-अर्थशास्त्र में लिखा है कि अपने गुणो द्वारा शत्रु के दोषो को और अपने सद्गुणो से उसके गुणो को ढक देना चाहिए :

परदोषान्स्वगुणैश्छादयेद् गुणान् गुणद्वैगुण्येन।

७. कालिदास ने रघुवश मे लिखा है कि शत्रु के छिद्र अर्थात् दोष या कमज़ोरी को देखकर उसी पर आघात करने से विजय मिलती है : 'जयो रन्ध्रप्रहारिणाम्।'

८. पचतन्त्र का मत है कि बुद्धिमान् लोग नाश करने के योग्य शत्रु

1. Offensive is the best defence.

बढ़ाते है क्योंकि गुड से वृद्धि को प्राप्त हुआ कफ अपने-आप आसानी से निकल जाता है। हिन्दी की एक कहावत है कि 'जो गुड दीने ही मरै, क्यो विष दीजै ताहि।'

९. अग्रेजी मे एक कहावत है कि जब 'चूहा बिल्ली का उपहास करे तो समझना चाहिए कि पास ही में कोई बिल भी होगा।'[1]

१०. जहा अकारण अत्यन्त आदर हो वहा परिणाम मे दु ख होने की शका करनी चाहिए, क्योंकि बिना प्रयोजन कोई चाटुकारिता का प्रदर्शन नही करता .

अत्यादरो भवेद् यत्र, कार्यकारणवर्जित.।
तत्र शका प्रकर्त्तव्या, परिणामेऽसुखावहा ॥

११. शेखसादी ने कहा है कि नाज़ उसी पर कर जो तेरा खरीदार हो। यह सत्य है कि क्योंकि 'अन्धे आगे नाचते कला अकारथ जाये।'

१२. अपने स्थान पर दृढ रहनेवाला सदा बलवान् होता है। घर के पालतू कुत्ते मे भी शेर का साहस होता है। पानी मे रहने पर मगर हाथी तक को खीच लेता है, परन्तु उसके बाहर वह कुत्तो से भी तिरस्कृत होता है।

१३ एक विलायती विद्वान् (फ्रैंसिस मीहन) ने अपने एक सुप्रसिद्ध ग्रथ ('दि टेम्पल ऑफ दि स्पिरिट'—मानस मन्दिर) में संघर्ष के कारणो का विवेचन करते हुए लिखा है कि देशो में, जातियो मे और वर्गों मे होनेवाले नाशक सघर्षो के मूल का पता लगाओ तो तुम्हे ज्ञात होगा कि सारी कटुता को फैलानेवाला कोई एक ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्ति है जिसके भीतर विरोधी मानसिक वृत्तियो का भयकर सघर्ष चल रहा है। वह अपनी अन्तर्व्यथाओ से पीड़ित होगा; अपने मानसिक द्वन्द्व पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ होगा, क्षुब्ध अहकारग्रस्त या भावोन्मत्त होगा; उसकी आत्मा भीतर ही भीतर पीडित होगी। इसलिए वह भीतर के विष से बाहर के वातावरण को दूषित करता है, अपनी कटुता को बाहर

1. When the mouse laughs at the cat there is a hole

फैलाता है, अपने स्वभाव की शंका और घृणा को दूसरो मे फैलाता है, जिसके परिणामस्वरूप बाहर कलह होती है। हम लोग ऐसे व्यक्ति को उठाने का और उच्चस्थान प्राप्त करने का अवसर देते है और प्रभाव-शाली पदो पर बैठे रहने देते हैं और उसके बाद आश्चर्य करते है कि विचारवान् मानव-वर्ग शान्तिपूर्वक क्यो नही रहता। एक के साथ दूसरे का सघर्ष चलता रहता है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति अपने ही साथ सघर्ष करता रहता है।[1]

ऐसे व्यक्ति जो मानसिक द्वन्द्व को सयमित करके आत्मविजयी नही होते, समाज मे निश्चय ही द्वन्द्व भावना फैलाएगे। आन्तरिक अशान्ति को मिटाकर ही बाहर शान्ति की स्थापना की जा सकती है।

१४. राष्ट्र-प्रतीक पं० जवाहरलाल नेहरु ने ७ सितम्बर, १६४८ को भारतीय पार्लियामेण्ट में हैदराबाद के सम्बन्ध में बोलते हुए कहा था कि मेरी राय मे जब कठिन परिस्थिति सामने हो तो उससे दूर भागना सबसे बडी गलती है, क्योंकि साधारणतया अपने स्थान पर जमे रहने वाले की अपेक्षा भागनेवाला अपने को उसी खतरे के सामने डाल देता है जिससे वह बचना चाहता है।[2]

१५ अपने अधिकारो के लिए सदैव चिल्लाना चाहिए। बिना चिल्लाए बच्चे को मा का दूध भी नही मिलता। कम से कम राजनीतिक क्षेत्र मे चिल्लाने से ही कष्ट दूर होते हैं। हरेक गवर्नमेण्ट ऊचा सुनती है क्योंकि वह ऊचाई पर बैठती है। चिल्लाना चाहिए परन्तु मनुष्य की तरह; गधे, सियार, कुत्ते, कौवे की तरह नही।

---

1. Men are at war with one another because each man is at war with himself.

2. I think that when we have to face a serious situation nothing can be worse than running away from it, because a person who runs away exposes himself to that very danger more than the person who sits or stands normally of course.

नीति-सार

एक श्लोक में एक नीतिकार ने सम्पूर्ण व्यावहारिक ज्ञान का सार भर दिया है। उसका कहना है कि मित्र को सरल व्यवहार से, शत्रु को युक्ति से, लोभी को धन से, स्वामी को कार्य से, विद्वान् को आदर से, युवती को प्रेम से, बन्धुओ को समानता के व्यवहार से, महाकोपी को विनय से, गुरु को अभिवादन से, मूर्ख को कहानिया सुनाकर, विद्वान् को विद्या से, रसिक को सरसता से और सबको शील से वश मे करो :

मित्रं स्वच्छतया रिपुं नयबलैर्लुब्ध धनैरीश्वर
कार्येण द्विजमादरेण युवतिं प्रेम्णा समैर्बान्धवान्।
अत्युग्रं स्तुतिभिर्गुरु प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुध
विद्याभिः रसिक रसेन सकल शीलेन कुर्याद् वशम् ॥

७. आपका रूप कैसा है ?

अग-प्रत्यंग की वनावट का प्रभाव दूसरो पर पडता है, इसको कौन अस्वीकार करेगा ? मनुष्य का व्यक्तित्व उसके अंग-प्रत्यग से स्वतः वोलता है। सुन्दरी स्त्री प्रमाण-पत्र लेकर नही घूमती; उसका रूप स्वयं दूसरों को आकर्पित कर लेता है। किसी सुडौल और सुदृढ शरीरवाले व्यक्ति के प्रथम दर्शन से ही लोग उसकी सत्ता को मानने लगते हैं। अतएव यह मानना पड़ता है कि शारीरिक वनावट में मनुष्य का व्यक्तित्व आभासित होता है।

इस विपय का विवेचन करने से पूर्व हमे यह जान लेना चाहिए कि हमारा रूप वास्तव मे वैसा ही नही होता जैसा कि हम अपने विपय में कल्पना किए रहते हैं। मनुष्य अपने मनोभावो के अनुरूप अपने शरीर के रूप की एक मिथ्या धारणा वना लेता है और समझता है कि सव उसको उसी रूप मे पहचानते है। वह दर्पण के सामने भी अपना भावना-रंजित रूप देखता है प्रेमासक्त होने पर वह नारद की तरह वन्दर का मुख रखते हुए भी अपने को रूपवान् समझता है। प्रेम मे निराशा होने पर वह अपने सुन्दर शरीर को भी भद्दा मान लेता है। वास्तव में, वह अपनी आकृति नही, वल्कि छायाकृति देखता है। यह कल्पना कर लेता है कि हम ऐसे लगते होगे और साथ ही यह सोचता है कि ऐसे लगते तो अच्छा होता। इस परिस्थिति मे उसका रूप कम से कम उसकी दृष्टि में विचित्र हो जाता है। दूसरो की दृष्टि मे वह वैसा वाहर से है, वैसा ही लगता है, परन्तु अपनी दृष्टि मे वह चित्त-वृत्ति के अनुसार कुछ का कुछ प्रतीत होता है। मानसिक द्वन्द्व के कारण वह अस्वाभाविक चेष्टाएं भी करता है, और इस भ्रम मे रहता है कि सव सूक्ष्म दृष्टि से घूर-घूरकर उसी को

देखते रहते हैं। इसलिए वह अपनी कल्पित शारीरिक त्रुटियों को छिपाने की चेष्टा करता है।

मन की रूपरेखा का प्रभाव पडता है। मन मे नारीत्व की भावना रहने से पुरुष नारीवत् आचरण करके सोचता है कि सब उसको सुन्दर स्त्री समझ रहे है। वह सुन्दरी तो नही, हिजडे जैसा लगता है। बहुत-से लोग मूछो को ऐंठते हुए अपने वीर-रूप की कल्पना करते हैं, पर दूसरो की दृष्टि में विदूषक जैसे लगते हैं। मनोबल क्षीण होने पर मनुष्य अपने सुदृढ शरीर को भी अशक्त मान लेता है। इसी तरह रहन-सहन का प्रभाव पड़ता है। कपडे गन्दे होने पर मनुष्य सभ्य समाज मे अपने को छोटा मानने लगता है। भव्य प्रासाद में रहने वाला नाटा भी अपने को बहुत बडा समझता है। फर्स्ट क्लास का यात्री अपने को थर्ड क्लास-वालों की दृष्टि मे बहुत बड़ा आदमी मान लेता है। कही जीतने पर ठिगना आदमी भी अकड़कर चलता है और सोचता है कि सब उसके महान् रूप को देख रहे है।

डॉक्टर शिल्डर नामक सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक का कहना है कि मानसिक संघर्ष की अवस्था में मनुष्य को अपने ही शरीर का वजन कुछ का कुछ जान पडता है। प्रसन्नता मे लोग अपने ही शरीर को हलका समझते है और सोचते हैं कि सब हमें हलका ही समझ रहे हैं। चिन्ताग्रस्त होने पर शरीर भारी लगता है, परन्तु दूसरो की दृष्टि में तो वैसा ही रहता है। उच्चपद पर रहनेवाला कभी अपने आकार की छोटाई को नही समझता। हट्टा-कट्टा चपरासी अपनी दृष्टि मे अपने को झुका हुआ, दबा हुआ तथा अपने से दुर्बल साहब को भी बहादुर और भीमकाय समझता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य की चित्तवृत्तिया उसके ज्ञान-तन्तु को आन्दोलित कर देती हैं और उन्ही के अनुसार मनुष्य का अपना मनोनिर्मित रूप अपनी आखो के आगे दिखलाई पड़ता है।

जब अपने विषय मे मनुष्य अपनी एक धारणा बना लेता है तो वह उसी के अनुरूप आत्म-व्यजना भी करता है। वह अनायास नाना चेष्टाओ

से अपने को सुधारने का प्रयत्न करता है। किसी की गर्दन से अपनी गर्दन को लम्बी समझकर वह बाहर निकलने पर अपनी गर्दन को दबाए रहता है और सोचता है कि उसके कल्पित अवगुण को लोग भाप न पाएंगे। पर उसका कृत्रिम रूप विचित्र बन जाता है। स्वर के विषय में भी ऐसी ही भ्रान्ति होती है। बहुत-से लोग अपने स्वर को कर्णप्रिय समझते हैं, पर दूसरो के सुनने मे वह कर्कश लगता है। यह वैज्ञानिक सत्य है कि हमारी अपनी ध्वनि अपने कानों में जैसी सुनाई देती है, वैसी दूसरे के कानो मे नही। हम अपनी सुनी हुई ध्वनि के आधार पर अपने व्यक्तित्व का मिथ्या रूप अपने मन मे बना लेते हैं। बहुत-से लोगो की परीक्षा करके अमरीकन डॉक्टरो ने देखा है कि वे पहले-पहल ग्रामोफोन पर अपनी आवाज सुनकर चौंकते हैं और कहते है कि उनकी आवाज ऐसी नही है। बहुत-से लोग अपनी फोटो पहले-पहल देखकर चौकते हैं क्योंकि वे जैसा अपने को कल्पित किए रहते हैं उससे भिन्न रूप चित्र में देखते हैं। अधिकाश नये लोग चित्र खिचाते समय मूर्ख बन जाते हैं क्योंकि वे अपनी किसी कल्पित कुरूपता को दबाने या छिपाने का प्रयास अवश्य करते है और वैसी दशा मे उनकी आकृति विकृत एवं अस्वाभाविक हो जाती है।

इस मनोवैज्ञानिक रहस्य को समझकर तब हमें अपने या किसी अन्य के सत्य-स्वरूप को देखना चाहिए। अनुमानित रूप प्रायः सत्य नही निकलता; सत्य वह है जो प्रत्यक्ष हो। प्रत्यक्ष रूप मे शरीर के कुछ लक्षण होते है, जिनका प्रभाव दूसरो पर पड़ता है। हम अपने को कैसा भी मान लें, हमारा रूप दूसरो की दृष्टि मे वैसा ही होता है, जैसा कि अंग-प्रत्यंग से झलकता है।

अपने कल्पित रूप को भूलकर उन सामुद्रिक लक्षणो पर विचार करना चाहिए, जिनसे वास्तविक व्यक्तित्व प्रकट होता है। इनमें से जो लक्षण न हो, उनको यथासम्भव धारण करना चाहिए। इनको जानने से मुख्य लाभ यह है कि हम दूसरो को उनकी आकृति या शरीर-रचना

से ठीक-ठीक पहचानकर व्यावहारिक सफलता प्राप्त कर सकते है। आगे इस उद्देश्य से हम शारीरिक लक्षणों का सक्षिप्त उपयोगी विवरण देते है:

उत्तम शरीर के मुख्य लक्षण

सामुद्रिक-शास्त्र के अनुसार स्वस्थ और सुन्दर शरीर में ये लक्षण मिलते है:

१. शरीर के पांच अग दीर्घ होते है—बाहु, नयन, कुक्षि, नासापुट, वक्षस्थल।

२. चार अंग ह्रस्व होते हैं—ग्रीवा, कान, पृष्ठदेश, जघा।

३. छः अग उन्नत होते है—नाक, नेत्र, ललाट, दन्त, मस्तक, हृदय।

४. पांच अग सूक्ष्म होते है—अगुलिपर्व, दन्त, केश, नख, चर्म।

५. सात अग लाल होते है—करतल, पदतल, नख, तालु, जिह्वा, अधर और नेत्र।

६. ये तीन गम्भीर होते हैं—स्वर, बुद्धि, नाभि।

७. तीन विस्तीर्ण होते है—वक्षस्थल, मस्तक, ललाट।

वाल्मीकीय रामायण मे सर्वसुलक्षणयुक्त राम के सम्बन्ध में नारद के मुख से कवि ने इस प्रकार कहलाया:

विपुलासो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः।
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः॥
आजानुबाहु. सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः।
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्॥
पीनवक्षो विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥

—राम बडे कन्धोवाला, बडी भुजाओंवाला, शख के समान ग्रीवा-वाला, बड़ी ठुड्डीवाला, चौड़ी छातीवाला, विशाल धनुष को धारण करने-वाला, छिपी हुई हंसली से युक्त और शत्रुओ का दमनकर्ता है। उसकी भुजाए घुटनों तक लम्बी है, सिर सुन्दर है, मस्तक सुन्दर है और वह शुभागमनशील है। उसके अग न बहुत छोटे हैं, न बहुत बड़े। प्रत्येक अंग

अच्छी तरह विभक्त है । शरीर का वर्ण स्निग्ध है और वह तेजस्वी है। उसका वक्षस्थल स्थूल है, नेत्र विशाल हैं । वह शोभायुक्त शुभ लक्षणो से सयुक्त है ।

शरीर के ये प्रधान लक्षण हैं, जिनकी ओर आपका ध्यान चला ही जाता है । आप सामुद्रिक-शास्त्र के परिचित हो या न हो, इनमे से बहुत-से लक्षण जिस व्यक्ति मे मिलते हैं वह आपको प्रिय लगता है। उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है। आप चुपचाप उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होते है । इनमे से बहुसख्यक लक्षण जन्मगत होते हैं, और यही यह मानना पडता है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का बहुत बडा अश जन्मगत होता है । 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की उक्ति यही चरितार्थ होती है । इसी जन्मगत व्यक्तित्व को अग्रेजी मे Prepossessing Personality अर्थात् सहज व्यक्तित्व कहते है ।

इन लक्षणो को ही सर्वस्व मानना भूल है । सबमे ये लक्षण नही मिल सकते क्योकि सभी पुरुषोत्तम नही होते। हाँ, ऐश्वर्यशाली पुरुषो मे इनमे से अनेक लक्षण उनके शरीर मे मिलते हैं और जब आपको ऐसा लक्षण-युक्त पुरुष मिले तो उसकी व्यक्तिगत महिमा मे विश्वास कीजिए। किन्तु पूर्ण विश्वास करने के पूर्व उसकी और बातो पर भी विचार कर लीजिए क्योकि सभव है उसने अपने साथ ही विश्वासघात किया हो। प्रकृति ने उसे सुन्दर रूप और व्यक्तितत्व दिया हो, किन्तु उसने अपने चरित्र से अपना मार्ग बदल दिया हो। चन्द्र मे जैसे आप कलक देखते हैं, वैसे ही इन अगो मे भी कलक देख लीजिए। इस सम्बन्ध मे एक बात और समझने की है। यदि आपके शरीर में ये लक्षण नही मिलते तो अपने को अधम मानकर आप निराश न हो जाइए। यदि आपका मन बलवान् हो, आपकी बुद्धि सचेत हो, तो आप साधारण अगो से भी निश्चय ही महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। साहसी व्यक्ति मामूली लाठी से भी जगली जीवो का सामना कर लेता है। शरीर से बलवान् किन्तु मन से अशक्त प्राणी यदि कधे पर तोप रखकर भी जाए तो वह दूर से ही किसी

जीव का चीत्कार सुनकर अचेत होकर गिर पडेगा। अतएव मन की प्रवलता की परीक्षा और बुद्धि-वल को परीक्षा पहले कीजिए और शरीर के वाह्य लक्षणो को ही कसौटी न मानिए।

शरीर के भिन्न-भिन्न अगों से मानव-व्यक्तित्व की गहराई का पता कहा तक चलता है, इसपर कुछ लिखकर तव हम मनोभावो के पढने की प्रणाली पर विचार करेंगे। जिस प्रकार एक आख या एक कान न रहने से आपका व्यक्तित्व भिन्न ज्ञात होता है, उसी प्रकार शरीर के विशेष अंगो पर कुछ लक्षणो के रहने या न रहने का असर पड़ता है।

१. सिर

सवमे प्रथम हम सिर को लेते है। 'सिर वडा सरदार का, पैर वडा गवार का।'—यह उक्ति आपने अवश्य सुनी होगी। इसमे यथार्थता है। शरीर के हिसाव से यदि मनुष्य का सिर छोटा, कगारू जैसा होता है तो वह मूर्ख गिना जाता है। सिर सुन्दर, सुडौल, और वड़ा होने से अवश्य ही मनुष्य प्रतिभाशाली होता है, चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या न हो। वडे सिर वाले को आप सज्जन मान लें, यह आवश्यक नही है। उसकी बुद्धि किसी भी दशा मे तीव्र हो सकती है। वह दुष्टता करने लगेगा तो उसमें भी अच्छा बुद्धि-प्रयोग दिखाएगा। उसकी बुद्धि तो वन्दूक की तरह होती है, जिसे वह सिपाही की तरह भी प्रयोग कर सकता है और डाकू की तरह भी। इसी प्रकार ऐसे व्यक्ति को आप सुखी भी मान लें, यह आवश्यक नही। वड़ा सिर लेकर भी यदि कोई वद्धकोष्ठता का रोगी हुआ तो उसका सिर तो भारी हो ही जाएगा। इतना ही मानिए कि वडे सिर-वाला वडा दिमाग रखता है। उसमे विचार-शक्ति एवं तर्क-शक्ति होती है।

दूरदर्शी और विचारवान् का सिर लम्वा होता है। ऐसे सिरवाला मेवावी, गम्भीर, कतिकामी और तत्त्वपारखी होता है, तथा साथ ही विद्यानुरागी भी। लोकमान्य तिलक का सिर ऐसा ही था। ऐसे व्यक्ति कल्पना-प्रेमी भी होते हैं। इसलिए विपरीत दिशा मे जाने पर वे सदेह-

ग्रस्त और भयशील भी हो जाते हैं।

अहंकारी का सिर पीछे की ओर विशेष लटका रहता है। सिर के पीछे का हिस्सा नोकदार होने से आदमी वक्र-स्वभाव का, दोनो ओर उभरा होने से भावुक, रसिक और प्रेरणात्मक बुद्धिवाला होता है।

गोल सिर जो कच्छप की पीठ की तरह से उन्नत रहे, प्रशस्त माना जाता है। ऐसे सिरवाले पुरुषार्थी, स्वावलम्बी, निर्भीक, उर्वर मस्तिष्क-वाले और कष्ट-सहिष्णु होते हैं। स्वामी दयानन्द और ईश्वरचन्द्र विद्या-सागर के सिर ऐसे ही थे।

बहुत छोटे सिरवाला प्रमादी, प्रलापी, आलसी, मूर्ख या कजूस होता है। बेडौल सिरवाला अविवेकी, चचल, कापुरुष और चाटुकार होता है।

सिर के बालो से भी मनुष्य की परीक्षा होती है। कोमल और चमकदार बालो से भीतर की सुकुमारता और स्वास्थ्य की कान्ति प्रस्फुटित होती है, रूखे या कडे बालो से भीतर की अस्वस्थता और शुष्कता।

उन्नत और ताम्रवर्ण केशवाले प्रायः उन्मादी और भ्रमण करने के व्यसनी होते है। घुघराले बालोवाले प्रायः हरएक चीज ऐसी ही पसंद करते हैं जो गोल हो, मुड़ी हुई या पेंचदार हो—ऐसे लोग गोल चश्मा लगाना पसन्द करेंगे, पहाडी छडी, तिरछी नोकवाले जूते या कलीदार कुरते के शौकीन होगे। उनकी चाल भी लहराती हुई होती है, बोल-चाल भी नमक-मिर्च लगी हुई और लिखावट भी गोल-मोल। इनको सीधे चलने को कहिए तो एक फर्लांग जाने पर थक जाएगे। यों घूमने-फिरने को कहिए तो शहर की सारी गलियो के चक्कर लगा आएगे। घुघराले बालवाले विलासी ही होते हैं, ऐसी बात नही है। वे व्यसनी अवश्य होते हैं—वह व्यसन चाहे विद्या का हो या कला का अथवा किसी दुराचार का। विद्या-व्यसनी होने पर ये लोग उपन्यास, कहानी, नाटक तथा रहस्यवाद की कविता के अनुरागी होते हैं। कला-प्रेमी होने पर

सभी कलाओ मे अच्छी प्रतिभा प्रदर्शित करते हैं। सगीत, साहित्य मे इनकी अच्छी गति होती है। विलासी होने पर ये सबसे निर्लज्ज और दुस्साहसी हो जाते हैं। पुरुषार्थ-सम्बन्धी काम ऐसे लोग कर सकते हैं। घर की अपेक्षा बाहर ये अधिक स्फूर्तिवान् रहते है।

खड़े बालोंवाले अक्खड़ होते हैं। ऐसे लोग कारणवश मुख से मधुर हो सकते है पर प्रकृति से क्रूर, दंभी या आत्माभिमानी होते हैं।

२. मुख-मडल

मनुष्य की सबसे अच्छी परीक्षा मुखाकृति से होती है। मनुष्य का सारा इतिहास, चरित्र और स्वभाव उसके मुख पर अकित रहता है। इनको प्राचीन काल से केवल भारतीय तत्त्वज्ञ ही नहीं, पाश्चात्त्य विद्वान् और लौकिकज्ञ भी मानते आ रहे हैं। मुख-मडल की बनावट से हमारे स्थायी व्यक्तित्व का पता चलता है; उसके प्रकृति-विकृत होने से हमारे चरित्र, स्वभाव और मनोदशा का। आपने सुना होगा कि कुछ लोग किसी की आकृति देखकर उसके चित्त का सारा हाल भांप जाते है। इसमें सचाई है। मनुष्य अपने को वाणी द्वारा तथा व्यवहार द्वारा छिपा सकता है, लेकिन चेहरे द्वारा नही। बहुत कम लोग ऐसे है जो हृदय के भाव को चेहरे पर नही प्रकट होने देते, किन्तु उनके स्थायी भाव तो व्यजित हो ही जाते हैं। किसी की मुखाकृति को आप उसके व्यक्तित्व का दर्पण मान सकते हैं, लेकिन कही-कही सावधान भी रहना पडता है। कुछ लोग चेहरे से भोले-भाले होकर भी हृदय से कुटिल होते है। वे इसका अभ्यास किए रहते है कि उनके भावो की छाप उनके मुख पर न पडे। अभ्यास से ऐसा हो भी जाता है। पर सौ में नब्बे व्यक्तियो का वास्तविक रूप उनकी आकृति से जान सकते है। मुख-मडल के भिन्न-भिन्न अंगो से मानव-परीक्षा इस प्रकार होती है।

१ ललाट— जिसका ललाट उन्नत और विशाल होता है वह मेधावी, कुशाग्रबुद्धि, विचारशील, उन्नतिशील, यशस्वी, प्रभावशाली और विश्वासयोग्य होता है। मस्तक अर्द्धचन्द्र-सा हो और कान्ति विशिष्ट हो

तो वह व्यक्ति तेजस्वी, सयमी तथा आत्मविश्वासी होता है; अनेक रेखाओ से भरा हो तो चतुर, चिन्ताशील, किसी मानसिक वेदना से ग्रस्त अथवा दार्शनिक होता है ; निस्तेज, छोटा और अन्दर की ओर घसा हो तो वह व्यक्ति मूर्ख अथवा विलासी या दभी होता है। मस्तक बहुत छोटा, ऊपर से बालो के छप्पर से छाया हुआ-सा हो तो वह व्यक्ति लापरवाह, विनोदी, मानापमान के भाव से प्रमुक्त होगा। यदि ऊपर की ओर उठा और नीचे की ओर दबा हो तो वह मनुष्य मन्दबुद्धि, आलसी, मुसीबत का मारा हुआ-सा होगा। प्रशस्त ललाटवाला उदार, शान्त, विनयी और व्यापारकुशल होता है।

२ नेत्र—आत्मा का सच्चा प्रतिबिम्ब आखो में दिखाई पडता है । आपने तरह-तरह की आखो की प्रभावशालिता के विषय में कुछ न कुछ सुना होगा। किसी न किसी की आखें ऐसी लगती हैं मानो अभी बोल देंगी। किसी की आखें भरी हुई पिस्तौल जैसी लगती है और किसी की आखें शराब की बोतल जैसी। किसी की आखो से करुणा टपकती है, किसी से दया, किसी से स्नेह, किसी से क्रोध, किसी से सरलता और किसी से हृदय की चंचलता। मा की ममता जैसी चीज कई आखो से टपकती है, तेजस्वी पुरुष का तेज उसकी आखो से चिनगारी की तरह निकलता है। आखो मे विचित्र आकर्पण-शक्ति होती है, विचित्र प्रभावोत्पादक शक्ति होती है, और एक मनुष्य के सारे व्यक्तित्व को खोलकर सामने रख देने की प्राकृतिक क्षमता होती है।

खिले हुए कमल जैसी बडी और स्वच्छ आखे सर्वोत्तम होती हैं। उनमे स्वाभाविक सरसता, कान्ति और सरलता हो तो ऐसी आखोवाला व्यक्ति सुखी, कीर्ति-प्रेमी, उदार, सहृदय और प्रभावशाली अवश्य होता है। वह प्रेमी, रसिक और विद्याप्रेमी विशेष होता है। लोभी की आखें धंसी हुई और तीक्ष्ण तथा चचल होती हैं। अहकारी की दृष्टि फैली हुई या फटी हुई-सी भारी और विशेष लाल होती है। दार्शनिक की आखें बड़ी किन्तु पलको से दबी हुई, और मद्यप की आखें प्राय: छोटी और

झुकी हुई होती हैं। मूर्ख की आखें प्राय: उल्लू की आखो की तरह गोल होती हैं। धूर्त की आखें बिल्ली की तरह भूरी होती हैं। चचल हृदयवाले की आखें चाहे वडी हो या छोटी, स्थिर नही रहती। ऐसे व्यक्ति की पलकें जल्दी-जल्दी चलती है। भयाकुल, क्षुधातुर और श्रमाकुल व्यक्ति की आखें ऐसी लगती है मानो गिर पडेगी। कवि और वेदनाग्रस्त व्यक्तियो की आखे तैरती हुई-सी प्रतीत होती है। चालाक, दुरात्मा और अविश्वस्त व्यक्ति की आखें फीकी, छोटी कौडी जैसी, प्राय ऊची नीची होती हैं। जिसके दोनो नेत्र वहुत छोटे और अन्दर को बहुत धस गए हो तो वह मनुष्य दूसरो की सम्पत्ति पर गुप्त दृष्टि डालने वाला और रहस्यमय जीवन व्यतीत करनेवाला माना जाता है। जिसकी आखें एक-दूसरे के निकट होती हैं, वह सामुद्रिक मत से चालाक, धूर्त और उचक्का होता है। जिसकी आखें ऊपर को उठी हुई-सी लगती हैं वह पुण्यवान्, कवि या किंकर्तव्यविमूढ अथवा असमर्थ होता है। सीधे आदमी की दृष्टि सीधी और कुटिल की कुटिल होती है। भीरु, अपराधी और सकोची स्वभाव वाले की दृष्टि झुकी रहती है तथा क्रोधी की वक्र।

, जो जितना गम्भीर होता है उसकी पलकें उतनी ही कम चलती है। कुछ देर गम्भीरावस्था मे बैठकर आप स्वय इसकी परीक्षा कर सकते है। गम्भीर व्यक्ति की दृष्टि भी अधिक स्थिर होती है। वहुत पलकें भाजने वाला झेपू, अस्थिर और दुर्बल हृदय का होता है। दभी, अहकारी और शठ की भौहे धनुष की तरह चढी रहती है। विचारक की भौंहे घनी और अपनी पूरी लम्बाई में वाल-चन्द्रवत् रहती हैं। भाग्यहीन की दोनो भौंहे मिली रहती हैं। पतली पलकोवाला तीव्र बुद्धि, लम्बी पलकोवाला कवित्वशक्तिपूर्ण होता है।

सक्षेप मे, ऐसी आंखें जो कमलवत् या हरिण-नेत्रवत् हो, जिनका प्रान्त-भाग लाल हो, जो स्निग्ध हो और जिनका भ्रू-भाग उन्नत तथा विस्तृत हो, विशेष प्रभावशाली होती हैं। ऐसी आखे जो मार्जारवत् हों, वक्र हो, जिनका भ्रू-भाग अर्द्धचन्द्रवत् या बहुत भिन्न हो या असम हो

तो वे अशुभ होती हैं। रक्त-प्रान्त की लालिमा से मनुष्य की श्री व्यजित होती है।

३. कान—क्रोधी के कान खिंचे से रहते है, सावधान व्यक्ति के खड़े रहते हैं। गृहमोही के कान भी खडे मिलते हैं। शंकाकुल व्यक्ति के कान बाहर निकले हुए-से और उभरे हुए प्रतीत होते है। मूर्ख और भीरु प्राय: लम्बकर्ण होते हैं तथा चोर के कान चूहे की तरह होते हैं। जो बहुत चौकन्ना रहता है, उसका कान खरगोश की तरह होता है। बुद्धिमान् का कान नीचे की ओर खिंचा हुआ-सा मिलेगा। छोटे कानवाला कृपण और तस्कर तथा फैले हुए कानवाला धनी और उदार होता है। नोकदार कानवाला क्रूर, और मासल कानवाला सुखी एव स्वस्थ होता है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि कान केवल ध्वनि-ग्रहण का ही कार्य नही करते उनका बुद्धि से बहुत निकट सम्बन्ध है। शरीर की इन्द्रियों में कान ही बुद्धि के सर्वाधिक समीप है। कानो से कुछ नसें सीधे बुद्धि-स्थल तक जाती हैं। जब आप किसी विषय में चिन्तालीन होते हैं तो स्वभावत: हाथ को कान पर रखकर सिर एक ओर को झुका लेते है, उससे बुद्धि पर विशेष दबाव पडता है। विद्यार्थियो के कान खीचते ही उनकी बुद्धि सजग और सावधान हो जाती है। आधुनिक वैज्ञानिको का कथन है कि कान की जड के पीछे मटर के बराबर दो ग्रन्थिया है, वही मनोभावो को उत्पन्न और ग्रहण करती है। उनके अनुसार हृदय से नही बल्कि उक्त मर्मस्थलो से भावो की सृष्टि होती है। जो भी हो, कानो की बनावट से मनुष्य की आन्तरिक प्रबलता का पता चलता है। ढीले और झूलते हुए कानो से मनुष्य का बकरीपन अवश्य प्रकट हो जाता है।

४. कनपटी—जिसकी कनपटी उभरी रहती है वह व्यक्ति अध्ययन-शील, संयमी, विचारवान् और यशोभिलाषी माना जाता है। दबी हुई कनपटीवाला भोगी, धनलोलुप, चिन्ताग्रस्त और दुस्साहसी होता है।

५. नाक—नाक द्वारा आदमी को पहचानना सबसे आसान है, क्योंकि वह सबसे आगे रहती है और किसी प्रकार न ढकी जा सकती है

और न हिलाई-डुलाई जा सकती है। वह अशोक के शिला-स्तम्भ की तरह खडी ही रहती है।

जिसकी नाक तोते की तरह होती है, वह कुशाग्र-बुद्धि, चतुर और राजनीतिज्ञ होता है। दीर्घ नासिकावाला गम्भीर, कार्यकुशल और आत्मविश्वासी होता है। जिसका अग्रभाग कान्तियुक्त हो वह तेजस्वी, प्रबल आत्मशक्ति-समन्विन, सयमी, उत्साही और भाग्यशाली होता है। जिसका नासाग्र निस्तेज होता है वह प्रतिभाशून्य, सयमहीन, शुष्क और प्रभावहीन होता है। यदि नाक लम्बी हो और सिरे पर कुछ उठी या मुडी हो तो वह व्यक्ति विवेकी और निरीक्षक होता है। यदि सिरे पर झुकी हो या ऊपर को बहुत उठ गई हो तो वह व्यक्ति चतुर और विनोदी होगा। यदि बीच मे नाक दबी हो तो वह व्यक्ति जड होगा। चपटी नाकवाला कजूस होता है। फैली हुई नाक वाला लोभी, फूली नाकवाला क्रोधी, कामुक तथा दभी होता है। गोल और चपटी नाकवाला परधन इच्छुक, वक्र नासिकावाला क्रूर, स्थूल नासिका, अर्थात् शूकर जैसी नाक-वाला परछिद्रान्वेषी, निन्दक, आलसी, अल्पबुद्धि और गन्दे तथा मन्द स्वभाव का होता है। पतली नाकवाला चोर होता है और समोसे जैसी नाकवाला ऐसा विमूढ 'जिन्हहिं न व्यापै जगत्-गति।

६ मुख—प्रफुल्लित कमल जैसा मुख मनुष्य का आत्मिक सौंदर्य प्रकट करता है। सुन्दर, सुडौल, सम और कोमल मुखवाला ऊची मनो-वृत्ति का एव प्रसन्न स्वभाव का होता है। बहुत बडे मुहवाला दुःखी, भिक्षुक-वृत्तिवाला एव मूर्ख होता है। गोल मुहवाला शठ, विषम मुख-वाला मुख-चपल और निकले हुए मुखवाला महामूर्ख होता है।

लाल होठोवाला व्यक्ति गुणी, मृदु और सुकुमार होता है। पतले होठोवाला बक्की, झक्की और शक्की होता है। बहुत सूक्ष्म होठोवाला दरिद्र एव लोभी, विवर्ण होठोवाला अल्पधी एव सतप्त होता है? वक्र होठोवाला वक्र-बुद्धि होता है; मोटे होठोवाला आलसी, नासमझ, क्रोधी व महाकायर और व्यसनी होता है। दोनो होठो का स्वाभाविक ढग

से मिलना शुभ माना जाता है। यदि वे मिलकर अन्दर की ओर घसते हुए-से दिखाई पड़ें तो वैसा व्यक्ति चुप्पा, रहस्यमय और भीरु होगा। यदि वे मिलकर चोच जैसे निकले हो तो वैसा व्यक्ति अस्थिरमति, विवेकहीन, वक्की तथा चाटुकार होगा। यदि नीचे का होठ ऊपरवाले का ढक्कन जैसा लगे तो वैसा व्यक्ति दभी, पाखण्डी और स्वार्थी होगा। यदि ऊपरवाला नीचेवाले के ऊपर छप्पर की तरह लटका रहे तो वह व्यक्ति हास्य-विनोदशून्य, रसिक तथा विवेकवान् और शान्त होगा। जिसके होठ सूखे हो वह हृदय से शुष्क व भीरु अवश्य होगा। जिसके होठ वक्र दिशा मे मिलते हो वह चालाक होगा, जिसके दोनो अधर दोनो ओर कानो पर ऊपर को मुड जाए वह हठी, दभी और क्रूर होता है।

७. दाढी-मूंछ—दाडी-मूछ को लोग पुरुपत्व का परिचायक मानते हैं। जिस पुरुप के दाढी-मूछ जमे ही नही तो उसे धूर्त या नपुसक मानिए। उसके स्वभाव मे चचलता, भीरुता और अविवेक होगा। ऐसा पुरुप अपने को स्त्रियो से भी निर्बल समझेगा। यदि वहुत कम वाल हो तो उनके स्वभाव मे नारी-स्वभाव के लक्षण मिलेंगे। वहुत-सी स्त्रिया भी ऐसी मिलती है जिनके श्मश्रु-देश मे बाल होते है। उन्हे सस्कृत में पोंटा या नरमानिनी कहते है। ऐसी स्त्रिया पुरुषो की सी चेष्टा करती हैं और क्रूर स्वभाव की होती हैं। पाश्चात्त्य कामशास्त्रियो का कथन है कि स्त्रियो मे कामेच्छा प्रवल होने से तथा निरतर अतृप्त रहने से उनके मुख पर वाल निकल आते है। ऐसी स्त्रिया स्वभावतः चिडचिडी और दु.शील हो जाती है।

नोकदार मूछोंवाले वीर स्वभाव के होते हैं। खुशामदी, कजूस, कायर और निर्वीर्य की मूछें तराजू के पलडे की तरह लटक जाती है। नुकीली, स्निग्ध, कोमल और नत दाढी-मूछ को लोग अशुभ मानते हैं। दाढी-मूछ से वहुत अच्छी मनुष्य-परीक्षा नही हो सकती, क्योकि उन्हें इच्छानुसार भी इधर-उधर किया जा सकता है अथवा मुख-देश से विल-

कुल निर्वासित किया जा सकता है।

८ गाल—बहुत फूले हुए गालवाला आदमी या तो भोदू होता है या विनोदी या व्यसनी अथवा आलसी। फूले हुए गाल होने पर भी हसते समय जिसके गाल मे गड्ढे पड जाते है, वह उद्योगी, रसिक, तीक्ष्ण-बुद्धि और आत्मविश्वासी होता है। बहुत छोटे या बहुत बडे गालवाले आत्म-शक्ति से हीन और परावलम्बी होते हैं। मासल और कोमल गालोवाले सुकुमार मनोवृत्ति के होगे तथा पतले और घसे हुए गालोवाले चिन्तन-शील, परिश्रमी, यशोभिलाषी, नारी-प्रेमी और कठोर, कर्कश, उद्दड तथा दृढ साहसी होगे।

९. दात—दातो से अन्दर की विद्युत् का पता चलता है। दांतो के चमकदार होने से ज्ञात होता है कि उस व्यक्ति के शरीर में तेज है। धुधले होने से आन्तरिक मलिनता स्पष्ट होती है। मोती जैसे, बिजली जैसे, कुद जैसे धवल और आभाप्रद दात सुन्दर स्वास्थ्य के द्योतक होते हैं। बडे दातोवाले प्राय. सुखी, प्रसन्नचित्त, सरलहृदय और बुद्धिमान् तो अवश्य ही होते है। दातो की पक्तिया घनी और सम होना शुभ है। वक्र दन्त-वाला हिंसा-बुद्धिवाला तथा बहुत छोटे दातवाला धूर्त, चाटुकार और विश्वासघाती होता है। बहुत बडे दातोवाला अकर्मण्य, मूर्ख और मारा-मारा फिरनेवाला होता है। असम तथा बिखरे हुए दातोवाला उच्छृखल होता है। बगल के दातो के ऊपर एक नोकदार दातवाला कुशाग्रबुद्धि और शीघ्र-चेतन होता है। निस्तेज दातो वाले को सदा उत्साहहीन और भीतर से बुझा हुआ मानना चाहिए।

१०. ठुड्डी—विशेष चतुर की ठुड्डी नोकदार होती है। जिसकी ठुड्डी भरी और निकली रहती है वह आनन्दी जीव होता है। छोटी ठुड्डीवाला गृहमोही, कजूस, स्वार्थी और उद्दण्ड होता है। पतली ठुड्डी-वाला प्रेमी और रसिक तथा चौडी ठुड्डीवाला उदार एव आवश्यकता से अधिक विनम्र होता है। बड़ी ठुड्डीवाला साहसी, कर्मकुशल एव विश्वासी होता है।

आकृति-परीक्षा

सम्पूर्ण मुख-मण्डल को देखकर किसी के विषय मे बहुत कुछ सरलता से जाना जा सकता है। किसी की आकृति मे भोलापन देखकर उसके स्वभाव की निष्कपटता का अनुमान सहज ही में हो जाता है। चेहरे पर सौम्यता देखकर सज्जनता का, रूक्षता देखकर कठोरता का, कोमलता देखकर सरलता का और वक्रता देखकर कुटिलता का ज्ञान देखने-मात्र से ही हो जाता है। चेहरे की स्वच्छता से स्वास्थ्य का पता तो लगता ही है, मन की स्फूर्ति का आभास भी मिलता है। मनुष्य के सभी गुणो की आभा उसकी आकृति मे मिलती है। शरीर का सारा तेज मुख-मण्डल से व्यक्त होता है। आपने प्राचीन चित्रो मे देखा होगा कि महापुरुषो और देवताओ के सिर के चारो ओर एक प्रकाश-मण्डल बना रहता है, उसे अग्रेजी मे 'Aurora' कहते हैं। यह प्रभा-मण्डल केवल कल्पना से नही बनाया जाता। वास्तव मे, तेजस्वी पुरुषो के रक्त से एक प्रकार की आभा स्फुटित होती है जो कई फुट तक वायु-मण्डल पर अपना विशेप प्रभाव रखती है। प्रत्येक वस्तु जो चमकती है वह अपनी आभा फेंकती है। वह आभा मनुष्य की अन्तर्ज्योति से निकलती है। महात्मा गाधी के मुख पर जो तेज था, वह सर्वविदित है। मालवीयजी को जिन्होंने देखा है, वे भी उस तेज से परिचित होगे। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी के मुख-मण्डल पर तेज देखकर आप उसकी तेजस्विता और प्रभावशक्ति को सहज मे समझ सकते हैं। सयमहीन व्यक्ति के चेहरे पर कभी तेज की झलक न मिलेगी। आत्मतेज—मनस्वी, गभीर, सयमी और शान्त मनुष्यो की आकृति मे ही मिलता है।

जिसका चेहरा उभरा हुआ होता है वह यशोभिलापी और क्रियाचतुर होता है। जिसका अन्दर धसा हुआ होता है वह दुष्ट, कृपण, छली, चिन्ताशील, मनहूस और नाना दुर्गुणसम्पन्न कहा जाता है। लटके हुए चेहरेवाला उदास और मलिन स्वभाव का तथा पर-द्वेपी होता है। सरल हृदयवाले का मुख सदैव ऐसा लगता है मानो वह मुस्करा रहा है।

निश्छल स्वभाववाले हसमुख होते है। चपल एव उत्साही मनुष्य लम्बे मुहवाले होते है। बड़े मुहवाला दु खी, दु खदायी और अपघातक कहा जाता है। गोल मुहवाला उल्लू होता है तथा साथ ही शठ भी। छोटे मुंहवाले छोटी तबीयत के, कायर तथा कामी होते हैं। बहुत बडे मुखवाला होने से विपत्तिभोगी, चौकोर होने से महाधूर्त और चौकन्ना एव नत होने से अपराधी होना सूचित होता है। गिलहरी जैसा छोटे मुखवाला कृपण होता है और हर काम को बचा-बचाकर करता है। 'बृहत्-सहिता' में लिखा है कि जिनके मुख गाय, वृष, सिह या गरुड़ की तरह प्रतीत होते है, वे बुद्धिमान्, चैतन्य, मनस्वी, तेजस्वी तथा उन्नतिशील होते है। बन्दर, भैसा, सूअर या बकरे जैसे मुखवाले क्रम से उच्छृ खल, बुद्धू, नीच और निर्बल होते हैं। गर्दभ-मुख मे गर्दभ के सभी लक्षण रहते हैं।

निश्चिन्त रहनेवाले, सम्पन्न, शातचित्त और आत्मविश्वासी के मुख पर झुरियां नही मिलती। कष्ट-सहिष्णु, परिश्रमी, चिताग्रस्त या धन-हीन के मुख पर रेखाए मुख्यत: व्यक्ति-विशेष के परिश्रम, अभ्यास और चितनशीलता का परिचय देती हैं। सर्वांगसुन्दर मुखवाला रसिक, भोगी, कला-सगीत-प्रेमी और जनानुरागी होता है। विकृत मुखवाला प्रपची, कटुभाषी तथा नाना विकार मन में लिए रहता है। मुख के रग से नही, उसके गठन और उसकी स्वाभाविकता एव समता से मनुष्य के व्यक्तित्व का पता चलता है। बुद्धिमान् का आप रग नही देखते। यदि किसी के चेहरे का ऊपरी भाग सकीर्ण और पीछे की ओर झुका हो और गाल तथा ठुड्डी का भाग विस्तीर्ण तथा आगे की ओर निकला हो तो आप भाप जाएगे कि वह दभी, महालोलुप और निकम्मा है।

मुख की आकृति की बनावट से लोग सदा से प्रभावित होते आए हैं। इग्लैण्ड की रानी एलिजाबेथ कहा करती थी कि किसी का सुन्दर मुख सबसे सुन्दर प्रशसा-पत्र है।[1] इग्लैण्ड के विश्वमान्य कवि शेक्सपियर ने भी एक पात्र के मुख से इसी बात को ध्वनित करते हुए कहा है कि मैं

1. A good face is the best letter of recommendation

तुम्हारे चेहरे को सम्मान, सत्यवादिता और अनुराग का एक मानचित्र मानता हूं।[1]

चेहरे की बनावट से मनुष्य-स्वभाव और चरित्र की बनावट अवश्य झलकती है, लेकिन कभी-कभी धोखा भी हो जाता है। इसलिए मुखाकृति देखकर ही किसी को सज्जन-दुर्जन न समझना चाहिए। अभ्यास से और नाना वस्तुओ के प्रयोग से लोग तरह-तरह के मुह बना लेते है। अंग्रेजी में अभी हाल मे एक अच्छी पुस्तक निकली है; उसका नाम है, 'आइडिया हैव लेग्स' अर्थात् विचारो में बढने की शक्ति होती है। उसमे लिखा है कि इस समय के सुप्रसिद्ध वक्ता चर्चिल ने अपने युवाकाल मे वर्षो तक सामने शीशा रखकर मुह बनाने का अभ्यास किया था। किसी भाव को व्यक्त करते समय आकृति की बनावट कैसी होनी चाहिए, इसका अध्ययन करके उसने यथाअवसर अपने मुह को वैसा ही बनाना सीखा और तब वह सफल वक्ता बन सका। ऐसे धूर्तराज और भी मिल सकते है। जो अपने व्यक्तित्व को छिपाकर कृत्रिम व्यक्तित्व प्रकट करें।

सम्भवत उक्त ग्रंथ मे ही या अन्यत्र कही, हमने इटली के सुप्रसिद्ध मुसोलिनी के सम्बन्ध मे पढा है कि उसने लोगो को प्रभावित करने के लिए एक विचित्र प्रकार का अभ्यास किया था। किसी से बातचीत करते समय वह अपनी आकृति मे ऐसा परिवर्तन कर लेता था कि लोग उसी के वश मे हो जाते थे। यह परिवर्तन वह केवल नेत्रो के सहारे करता था आखो को दीर्घाकार बनाकर वह पुतली के सहारे काले गोले को नेत्र-मडल के ठीक बीचोबीच अवस्थित कर देता था। इससे काले भाग के चारो ओर सफेद भाग का एक मडल घिर जाता था और अधिक देर तक इसी प्रकार एकटक देखने पर सामने बैठनेवाला एक प्रकार से मेस्मेराइज्ड (मोहित) हो जाता था। मुसोलिनी ने भी शीशे के सामने कुछ दिनों मे इसका अभ्यास कर लिया था।

---

1. In the face I see the map of honour, truth and loyalty.
—Shakespeare.

इस तरह के और भी कलाकुटिल मिल सकते है जिनकी मुखाकृति से सहसा धोखा हो सकता है , पर नव्वे प्रतिशत आदमी चेहरे से प्रकट हो जाते हैं। सोते समय उनके चेहरे को देखकर उसकी ठीक-ठीक परीक्षा हो सकती है , अथवा जब वे हसते हो तो ध्यान से उनके चेहरे को देखिए। उस दशा मे उनकी बनावट खुल जाएगी। बहुत-से ऐसे लोग मिलेंगे जो हंसते हुए भी रोते-से प्रतीत होगे क्योकि उनका हृदय रोता रहता है ।

३. धड़

१. अब ग्रीवा को लीजिए । गले की बनावट से भी आदमी का कुछ पता लग जाता है। लम्बी गर्दनवाला मूर्ख, भटकनेवाला, बक्की तथा बहुत खानेवाला होता है। जिसका गला बहुत भरा हुआ रहता है वह कामी और व्यसनी होता है । जिसका गला नीचे भारी, ऊपर एकदम पतला हो, वह खा-पीकर मस्त रहने मे ही जीवन की उपयोगिता मानता है । सिर एकदम कधे से जुडा हुआ लगे तो वह व्यक्ति परिश्रमी, शुष्क, अहकारी और कृपण होता है । शुष्क या नसो के कई भागो में बंधा हुआ गला निर्धनता का चिह्न है। भैसे जैसे गलेवाला बलवान् होता है। शख जैसी ग्रीवावाला गुणी, यशोभिलाषी और स्वाभिमानी होता है ।

२. वक्षस्थल—जिसका वक्षस्थल उन्नत, चौड़ा और भरा हुआ होता है, वह सुखी, शक्तिशाली और कर्मशील होता है। ऐसा व्यक्ति स्वभाव से ही शूरवीर होता है। सकीर्ण वक्षस्थलवाला कायर, अकर्मण्य और छोटे विचारो का होता है । ऊचे वक्षस्थलवाला साहसी, उत्साही और सर्वदा सामर्थ्यवान् होता है ।

३. कधा—सहनशील, परिश्रमी और पुरुषार्थी का कधा बैल की तरह उठा हुआ और मांसल होता है। अपराधी का कंधा स्वभावतः झुका हुआ और कृश होता है ।

४. पेट और कमर—लम्बे पेटवाला बहुभक्षी, अस्थिर-चित्त और चिड-चिड़े स्वभाव-का होता है। गोल पेटवाला प्राय. विनोदी, रसिक, प्रत्येक

दशा मे सुखी एव सन्तुष्ट तथा विश्वासपात्र होता है। शरीर-सम्बन्धी कार्य वह कम कर सकता है, किन्तु बुद्धिक्षेत्र मे वही गणेश हो सकता है। जब आपको सरल चित्त का मित्र बनाना हो तो किसी मोटे आदमी को ढूंढिए। कृशोदर सबसे निकृष्ट होते है। सर्वोत्तम वे होते है जिनके वक्ष से उनका पेट थोडा नीचा होता है ; न बहुत उठा हुआ, न अधिक लम्बा। पतली कमर स्त्रियो की शोभा है। पुरुष की कमर भरी हुई ही श्रेष्ठ होती है। लचकदार कमरवाले को लचकदार स्वभाव का मानना चाहिए। वह स्त्रियो का अनुरागी और पुरुषो से दूर भागनेवाला होगा। समान पेट होने से वह मनुष्य भोगी होगा।

५. हाथ—श्रेष्ठ पुरुष के हाथ उसके घुटनो तक जाते हैं। हमने सुना है कि गाधी जी के हाथ घुटनो के पास तक पहुचते थे। अच्छे हाथ हाथी की सूड की तरह ऊपर से क्रमश. पतले होते हैं, अधिक लम्बे और भरे हुए होते हैं। ऐसे व्यक्ति यशस्वी, कार्य-कुशल, उदार एव शक्तिशाली होते हैं। ऐसे व्यक्ति जिनके हाथ बहुत छोटे या असमान और बालो से भरे रहते हैं, वे प्रायः दु खी, कापुरुष, बातो के बली और उलटा-सीधा काम करनेवाले होते हैं। जिनके हाथ ऊपर-नीचे एक-से होते हैं अर्थात् शुण्डाकार नही होते, वे प्रपची, निष्फल क्रोधी, चालाकी के काम मे पटु और कर्कश होते हैं।

६. हथेली—मनुष्य को परखने की सबसे अच्छी कसौटी हथेली है। हमने कई वर्ष पहले एक प्राचीन एव अनुभवी फ्रेंच लेखक का एक ग्रथ पढा था। वह ग्रथ हस्त-विज्ञान पर था। उस लेखक ने लिखा था कि जब आप किसी नये आदमी से मिलते है तो हाथ मिलाते समय उसके हाथ को देख लीजिए। यदि आप हस्त-विज्ञान के दो-चार प्रमुख लक्षणो के जानकार भी होगे तो उस आदमी के स्वभाव आदि के विषय में उनसे बहुत कुछ जान जाएगे और सतर्क होकर बातें करेंगे।

हथेली पर दृष्टि डालते ही सर्वप्रथम नाखूनो पर दृष्टि डालिए। यदि वे चिकने, चमकदार, सुडोल और लाल या ताम्रवर्ण के हो तो निश्चय

ही मान लीजिए कि वह व्यक्ति तेजस्वी और शरीर-मन से शुद्ध एव स्वस्थ है। नखो के मूल मे अर्द्ध-चन्द्र का चिह्न होना सुन्दर स्वास्थ्य का परिचायक होता है, जब आपकी पाचन-क्रिया ठीक होती है और रक्त शुद्ध होता है, तब वह चिह्न उक्त स्थल पर प्रकट होता है। अस्वस्थ होने पर वह चमडे से ढक जाता है और नाखूनो पर सफेद-सफेद छींटे पड़ जाते है। यदि किसी के नख विवर्ण हो तो उसे तर्क-कुतर्क-प्रेमी मानिए। रूक्ष नखवाला निर्धन होता है। काले या फटे हुए नख मनुष्य की हीनता प्रकट करते हैं। यदि किसी के नख गन्दे हो तो वह स्वभाव का भी गन्दा होगा। किसी के नख घसे हो तो वह मन्दबुद्धि होगा। किसी के नख पिलपिले हो तो वह बडा निर्बल और डरपोक होगा। नखो से उगलियो की शक्ति बढती है। अतएव नख यदि मजबूत रहेगे तो उगलिया विशेष क्रियावान् होगी, और उगलिया ही सारे हाथ को सुदृढ करती हैं, तथा हाथ ही मनुष्य का मुख्य सहायक एव सखा होता है। अतएव नखो पर विशेष ध्यान रखिए।

अब उगलियो पर दृष्टि डालिए। उगलियो का राजा अगूठा है। हाथ की सारी चाबी अगूठे के हाथ मे रहती है। अन्य चारो उगलिया मिलकर भी किसी वस्तु को दृढता से नही पकड सकती। जब वे अगूठे का सहयोग पाती हैं तभी सबल होती है, तभी हाथ की मुट्ठी बघती है और तभी आपकी मुट्ठी में कोई वस्तु आती है। अगूठे को अलग खडा रखकर केवल चारो उगलियो को मिलाकर किसी को एक मुक्का लगाइए तो उसे कुछ भी चोट न लगेगी, किन्तु अगूठे का आश्रय लेकर मारिए तो आपकी पूरी शक्ति केन्द्रित होकर प्रहार करेगी।

अगूठे की बड़ी महिमा है। उसी से राजतिलक होता है, उसी से आप लिखते है और उसी से किसी वस्तु को पकडते है। यदि अगूठा न हो तो एक अक्षर भी लिखना कठिन होगा। वह न हो तो आप एक लोटा भी सीधे नहीं उठा सकते। अगूठा जब चैतन्य होकर खड़ा हो जाता है, उस समय चारो उगलिया सारी शक्ति लगाकर भी हथेली को ढककर नही

रख सकती। इतना प्रभावशाली अग मनुष्य के प्रभाव और पुरुषार्थ का निश्चय ही प्रतीक होगा।

एक अग्रेज़ी विद्वान् ने मानव-परीक्षाकी एक अच्छी युक्ति बताई है। मुट्ठी बांधने पर जिसका अगूठा चारो उगलियो के ऊपर रहता है, वह मनुष्य आत्मविश्वासी, धैर्यवान्, चेतनावान्, शक्तिसम्पन्न, स्वाभिमानी, दृढनिश्चयी और साहसी तथा क्रियाकुशल होता है। जो व्यक्ति अगूठे को उगलियो के बीच मे रखकर मुट्ठी बाधता है, वह भीरु, साहसहीन, निर्बल, सन्देहग्रस्त, आलसी, अकर्मण्य, परावलम्बी और चेतनाहीन तथा चचल-चित्त होता है। इसकी आप स्वय परीक्षा करके देखिए। अंगूठे को ऊपर रखकर मुट्ठी बाधने से हाथ ही मे नहीं, मन में भी दृढ़ता आती है, नवीन स्फूर्ति आती है और एक प्रकार का आत्मबल अनुभूत होता है। अगूठे के अन्दर रखने से मुट्ठी कसकर नही बाधी जा सकती। इस अवस्था में मन भी ढीला रहता है और अगूठे के बधने से सारी आत्मा बंधी हुई-सी लगती है। अतएव स्पष्ट है कि अगूठा हमारी शक्ति का द्वारपाल है और अपने स्थान का सरदार। यदि बच्चे अगूठे को उगलियो से दबाकर रखते हो तो समझिए कि वे निकम्मे होगे। यदि आप घरेलू काम के लिए परम स्वामिभक्त सेवक चाहते हों तो ऐसे आदमी को लीजिए, वह कभी स्वतन्त्र मनोवृत्ति का न होगा। यदि आप महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए किसी व्यक्ति की खोज मे हो तो ऐसे व्यक्ति को देखिए जो मुट्ठी बांधना जानता हो।

मनुष्य के अगूठे मे जन्म से ही विशेषताए होती है। एक विशेषता तो यह होती है कि प्रत्येक व्यक्ति के अगूठे की रेखाएं भिन्न होती हैं। इस-लिए सरकारी कागजो पर अगूठे के निशान लिए जाते है। सब जगह की रेखाए बदलती रहती हैं। पर अगूठे की रेखाए सदैव एक-सी रहती है। यही इसका प्रमाण है कि अगूठा हमारे स्थायी व्यक्तित्व का सच्चा प्रतीक होता है। व्यास के मत से मनुष्य की सूक्ष्म देह अथवा आत्मा अंगूठे के बराबर होती है।

अब अगूठे की बनावट पर सक्षेप में इतना जान लीजिए। अगूठा न

बहुत बडा, न बहुत छोटा होना अच्छा माना जाता है। बहुत बड़े अगूठे-वाला उच्छृंखल और असहनशील होता है। छोटे अगूठेवाला दयाहीन, मन्द, अल्पधी और संकीर्ण विचारो का होता है। वह सुविभक्त अर्थात् उगलियो से सुदूर रहे तथा स्वतन्त्र एव प्रभावशाली प्रतीत हो तो मनुष्य की श्रेष्ठता का बोध होता है। उगलियो के बहुत निकट और हथेली से सटा हुआ होने पर वह किसी व्यक्ति की अयोग्यता प्रकट करता है। अंगूठा इतना बडा होना चाहिए कि वह मुट्ठी बाधने पर बीच की उगली की गाठ के ऊपर जाकर उसको ठीक से दबाकर पकड़ सके। वीर स्व-भाव के मनुष्य का अगूठा नीचे स्थूल, बीच में तलवार की धार-सा उभरा हुआ और ऊपर पीछे की ओर कुछ झुका हुआ किन्तु मासल होता है। मूर्ख का अगूठा लोटे जैसा होता है। जिसका अगूठा जितना ही चैतन्य होगा उतना ही वह व्यक्ति भीतर से क्रियाशील और उत्साही होगा। जिसका मूल भाग पतला, ऊपर का अगुष्ठ भाग स्थूल होता है वह निर्बल होता है।

उगलियो के सम्बन्ध मे कुछ जानने योग्य बाते ये है। ढीली और उभरी नसो से युक्त उगलियोवाले कलाप्रेमी हो सकते है पर वे शक्तिमान् नही होते। अपने-अपने स्थान पर सब सुदृढ हो, स्वतन्त्र हो और मिलने पर बिखरी हुई-सी न लगें तो वे उगलियां मनुष्य की दृढता को सूचित सूचित करती है। जिसकी उगलियों के मिलने पर किन्ही दो उगलियो के बीच से छेद नही दिखाई देता, वह धन-सग्रह मे प्रवीण एवं धनी माना जाता है। विरली उंगलिया निर्धनता सूचित करती है। जिसकी हस्ता-गुलिया दीर्घ होती है, वह दीर्घायु होता है। टेढ़ी-मेढी उगलियोवाले वक्र स्वभाव के होते है।

करतल-स्निग्ध, सुकोमल, कान्तिमय और भरा हुआ रहने से मनुष्य के ऐश्वर्य, उन्नत स्वभाव और सुन्दर स्वास्थ्य का बोध होता है। निस्तेज, शुष्क, और दबे पावोंवाले कर्कश, कृपण और कठोर कर्म मे अभ्यस्त होते हैं। चौडी हथेली का मनुष्य उदार और कृती, कुशल होता है। जिसका

पाणितल लाल होता है, कमल जैसा लगता है, उंगलियों के मूलस्थान में उभरा रहता है, सुन्दर लाल रेखाओ से हस्ततल विभक्त रहता है, वह प्रभुतावान्, शासनप्रवीण, जनानुरागी और बुद्धिकुशल माना जाता है। जिसका पाणि-देश संकीर्ण, नतोन्नत अथवा एकदम खाली-सा लगता है, काली या धुंधली रेखाओ से भरा या मुख्य रेखाओ से हीन होता है, पितृ-धन-वंचित, मृत्यु-भीत, आलसी, प्रमादी, पुरुषार्थहीन तथा केवल शारीरिक परिश्रम मे कुशल होता है। सौम्य पुरुष की हथेली न बहुत गरम होती है, न बहुत ठंडी। डरे हुए, अस्थिर चित्त और छली की हथेली ठंडी लगती है। निकम्मे आदमी की हथेली पसीने से भीगी रहती है। क्रूर, शूर और अहंकारी की हथेली गरम और कठोर होती है।

उंगलियो और अंगूठे के नीचे के स्थान उभरे रहने से मनुष्य की शक्ति का आभास मिलता है। सामुद्रिक शास्त्र को आप चाहे न मानिए, पर इतना तो मानेंगे कि जिस उंगली का मूल देश उभरा रहता है, वह अधिक सजीव और सक्रिय होती है। उंगलियो की सारी शक्ति उनके मूल-देश से मिलती है। इन उभरे हुए स्थानो को सामुद्रिक भाषा में ग्रह-स्थान कहते हैं। अंगूठे के नीचे शुक्र का निशान होता है। जिसका शुक्र-स्थान उच्च होता है वह आदर्शवादी, सौंदर्य-साहित्य-संगीत-कला-नृत्य-प्रेमी, कलाविद् और शिल्प-विद्या का अनुरागी होता है। जिसका यह स्थान बहुत ऊंचा होता है वह कामी, निर्लज्ज और महाभोगी होता है। यदि यह स्थान नीचा हो तो ऐसा मनुष्य स्वार्थी, आलसी और द्वेषी तथा निकम्मा होता है। तर्जनी के मूल-देश को बृहस्पति का स्थान कहते हैं। यह स्थान बहुत ऊंचा होने से मनुष्य महान् अहंकारी और उच्छृंखल होता है, ऊंचा होने से प्रभुत्व-प्रेमी, शासन-पटु और तेजस्वी होता है। नीचा होने से वंचक और नीच प्रकृति का होता है। मध्यमा उंगली के नीचे शनि-स्थान होता है। शनि-स्थान उच्च होने से मनुष्य अल्पभाषी आमोद-प्रमोद-प्रेमी और एकान्तप्रिय होता है। उसके नीचा होने से वह व्यक्ति नीच विचारोंवाला, उद्धत और प्रायः आत्महत्या की प्रवृत्ति रखने-

वाला होता है। अनामिका के मूल में रवि रहता है। उच्च रविस्थान-वाला मनुष्य चचल, कला-प्रेमी, खोजी और स्त्रीभक्त होता है। ऐसे व्यक्ति प्राय: लम्बे केश पसन्द करते है। जिसका यह स्थान नीचा होता है वहआलसी और किंकर्तव्यविमूढ़ होता है। कनिष्ठा के नीचे बुध का स्थान है। बुध का स्थान ऊंचा रहने से मनुष्य शास्त्रज्ञ, वक्ता, परिश्रमी, साहसी, भ्रमणशील एव चतुर होता है। अत्युच्च होने से शठ, झूठा, विश्वासघाती और स्त्री-सुख से वचित होता है। नीचा होने से विद्या-द्रोही, अकर्मण्य और मूर्ख होता है। हथेली के जिस हिस्से से टेक लगाकर लिखते है, वह चन्द्र का स्थान है। जिसका यह स्थान ऊंचा होता है वह आत्मज्ञानी, सगीत-प्रेमी, आस्तिक और चिन्तनशील तथा गम्भीर होता है। जिसका चन्द्र-स्थान नीचा होता है, वह चिन्तन-शक्ति से रहित होता है। चन्द्र-स्थान और बुध स्थान के बीच मे तथा शुक्र-स्थान और बृहस्पति-स्थान के बीच मे मगल के स्थान होते है। यदि अगूठे के ऊपरवाला मगल-स्थान उच्च हो तो वह व्यक्ति महासाहसी, पराक्रमी, विवाद--प्रेमी और तत्काल ज्ञानवान् होगा। चन्द्र के ऊपरवाला मगल-धाम ऊचा रहने से मनुष्य धीर, न्यायप्रिय, विनम्र, दृढप्रतिज्ञ और साहसी तथा धर्म-प्रेमी होगा। जिसके दोनो मगल-स्थान उच्च रहते हैं, वह निष्ठुर, अत्याचारी, उग्र, दु शील, कामी और रक्तपात-प्रेमी होता है। दोनो स्थान निम्न होने से स्वभाव में अस्थिरता और भीरुता व्यजित होती है।

सामुद्रिक मत से बृहस्पति और रवि, दोनो के स्थान उच्च होने से मनुष्य धनी होता है। साथ मे बुध भी ऊचा हो तो विज्ञान और न्यायशास्त्र में प्रवीण होता है ; मगल भी उच्च हो तो रणकुशल। शनि, बृहस्पति जिसके उच्च होते हैं वे धैर्यवान् किन्तु मूर्च्छा या वायु से आक्रान्त होते है। शनि, बुध उच्च होने से वह व्यक्ति चोर, क्रोधी और उच्छृंखल स्वभाव का होता है। शनि, मगल की उच्चता से निर्लज्ज और क्रूर होता है।

हथेली का पिछला भाग यदि कछुए की पीठ की तरह हो तो शुभ

है। वह व्यक्ति उन्नतिशील होगा जिसका पाणि-पृष्ठ समुन्नत हो, चमकदार और मुलायम हो। जिसके इस भाग मे बहुत नसें उभरी हो वह कर्कश और निर्बल होगा। जिसका यह भाग बहुत फूला हो वह रोगी, निकम्मा और सुस्त होगा। जिसका सम्पूर्ण हाथ शेर के पजे जैसा लगे वह खतरनाक होगा।

७ हाथ की रेखाए—हाथ की रेखाओ पर कुछ लिख देना भी अप्रासगिक न होगा। हस्त-रेखा विज्ञान पर प्राचीन विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है। पाश्चात्य विद्वानो मे 'कीरो'[1] इस विषय का प्रकाड पण्डित था। उसने इस भारतीय शास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन किया था और हस्त-रेखा से स्वयं अपनी मृत्यु-तिथि और ऐसी ही कितनी घटनाओ की पहले से ही घोषणा कर दी थी जो सत्य निकली। लार्ड किचनर की युवावस्था मे ही उसने उनका भविष्यफल बता दिया था और यह भी कह दिया था कि उनकी मृत्यु जल में होगी। अन्त मे सचमुच उन्हे जल-समाधि प्राप्त हुई। हस्त-रेखा की सत्यता के ये श्रेष्ठ प्रमाण है।

वास्तव मे, हाथ की रेखाए व्यर्थ या केवल हाथ की शोभा-सामग्री नही होती। यदि प्रकृति ने उन्हें शोभा के निमित्त बनाया होता, तो वे इस रूप में नही, सुन्दर पुष्पों के रेखाचित्र के रूप मे होती। इन रेखाओ से मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्बन्ध होता है। एक-दूसरे की हस्त-रेखा नही मिलती क्योंकि सबका व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न होता है। सत्य बात यह है कि करतल सारे व्यक्तित्व का ऑफिस होता है जहा व्यवसाय-सम्बन्धी सारे बही-खाते रहते हैं। किसी वस्तु पर जब अन्य वस्तु की रगड अधिक समय तक पडती है तो वहा निशान पड जाता है। हमारे मन पर जब चिन्ता की रगड पडती है तो माथे पर बल पड़ जाता है और जब बहुत रगड़ पडती है, तो गालो पर झुर्रिया पड़ जाती हैं। हाथ की रेखाए भी हमारी प्राकृतिक शक्तियो के सम्मिलन या सघर्ष के फलस्वरूप बनती हैं। वे मनुष्य के व्यक्तित्व के साथ-साथ बनती-बिगड़ती है, यही इस बात

1. Cheiro.

का एक अच्छा प्रमाण है कि वे हमारी आन्तरिक दशा को व्यक्त करती हैं। आपमे यदि मनोबल हो तो आप कुछ समय में रेखाओ को बदल सकते है। बुद्ध के नौ तरह के हस्त-चित्र मिलते है, जिनमें नौ तरह के रेखाक्रम हैं। अवस्थानुसार और आत्मशक्ति की ह्रास-वृद्धि के साथ ये परिवर्तन होते रहते है। भीतर से स्वस्थ होने पर रेखाए लाल हो जाती है और स्वास्थ्य बिगड़ने पर या चित्तवृत्ति विकृत होने पर काली या पीली पडने लगती है। इससे मालूम होता है कि रेखाए आन्तरिक क्रियाओ की सूचना देती हैं।

हस्त-रेखा का विषय बहुत विस्तृत है। उनकी विशेष जानकारी के लिए आप तद्विषयक किसी ग्रथ का अध्ययन कीजिए। बहुत सक्षेप में हम उसकी दो-चार मुख्य बातों का उल्लेख यहां पर करते हैं। हाथ मे मुख्य लम्बी रेखाओ के अतिरिक्त कम लम्बी रेखाएं होना शुभ माना जाता है। जिसके हाथ में अधिक रेखाए भरी रहती हैं, वह व्यक्ति दु.खी, कर्कश, दरिद्र, भाग्यहीन और शरीर से दुर्बल होता है। जिसके हाथ की रेखाएं लाल रग की होती है वह व्यक्ति वाक्पटु, उग्र और भोगविलास का अनु-रागी होता है। जिसकी बहुत लाल होती है वह भयकर, क्रोधी, दुष्ट और पर-द्रोही होता है। पीली रेखावाला पित्त-पीड़ित, उग्र स्वभाव का-महत्त्वाकाक्षी परिश्रमी और द्वेषी होता है। काली रेखाओवाला दोषी, द्वेषी, मलिनबुद्धि और मृत्यु के निकट रहनेवाला होता है।

हाथ की चार रेखाएं मुख्य होती है। वह रेखा जो मणिबध के मध्य से उठकर अंगूठे को घेरती हुई तर्जनी के नीचे जाती है उसे जीवन-रेखा या पितृ-रेखा कहते है। हथेली के मध्य में जो रेखा एक पार्श्व तक जाती है, उसे मातृ-रेखा कहते हैं। उसके ऊपरवाली प्रधान रेखा को आयु-रेखा मानते है और जो रेखा मणिबध से उठकर सीधे ऊपर की ओर जाती है उसे ऊर्ध्व-रेखा या भाग्य रेखा कहते हैं।

(दाहिने हाथ मे) जिसकी पितृ-रेखा बहुत चौड़ी और कान्तिहीन होती है वह चिन्तातुर, अस्वस्थ, स्वभाव का और कुटिल आत्म-

शक्ति से हीन होता है। इसका शृखलामय होना दुर्बलता एव शारीरिक अस्वस्थता का द्योतक है। यदि वह छोटी हो और हाथ की पार्श्व-सीमा तक न पहुचे तो प्राणो का आयुर्बल कम होता है। जिसकी यह रेखा स्थान-स्थान पर खडित रहती है, वह समय-समय पर नाना प्रकार की व्याधियो से पीडित होता है। जिसकी यह रेखा अगूठे के मूल प्रदेश की की ओर चली जाती है उसकी पुरुषार्थ-शक्ति व्यर्थ होती है। यदि इसका मूल नाना रेखाओ से कटा हो तोवह प्राणी मिथ्याभिमानी और अस्थिर बुद्धिवाला होता है, किन्तु विवेकवान् और विश्वासयोग्य होता है। जिसकी पितृ-रेखा से एक रेखा निकलकर भाग्य-रेखा मे मिलती है वह व्यक्ति यशस्वी, विद्वान और सिद्धिसाधक होता है। जिसकी इस रेखा से उसकी मातृ-रेखा आकर नही मिलती है वह व्यक्ति हठी, उद्धत, महाभिमानी और आतुर मतिवाला होता है। ऐसा व्यक्ति हाव-भाव दिखाने मे कुशल, लम्बी-चौडी बातें हाकने और व्याख्यान देने मे अनन्य तथा आत्मविज्ञापन मे सबसे आगे रहता है। साथ ही, वह किसी काम को मन लगाकर करने में समर्थ होता है, किसी विषय का विशेषज्ञ और दुस्साहसी होता है।

जिसकी मातृ-रेखा (इसे मस्तक रेखा कहते है) लम्बी और सुडौल हो वह धैर्यशाली, व्यवसायी और आत्मविश्वासी होता है। जिसकी यह रेखा खडित होती है, उसे मस्तक मे चोट लगने का भय रहता है। यदि इसके अन्त मे बहुत-सी शाखाए हो तो वह व्यक्ति बडा ढोगी और विलासी होगा। यदि यह रेखा और पितृ-रेखा दोनो छोटी हो तो किसी आकस्मिक घटना से मनुष्य मरता है। यदि यह रेखा अथवा पितृ-रेखा या आयु-रेखा किसी के हाथ में न हो तो वह व्यक्ति आकस्मिक घटनाओ या चोट आदि से विशेष कष्ट पाता है।

आयु-रेखा—(इसे हृदय-रेखा भी कहते हैं) इसके शृखलामय होने से मनुष्य निकम्मा और कामुक होता है। यदि यह कटी न हो तो मनुष्य दीर्घजीवी होता है। जिसके दोनो हाथो मे यह शाखाविहीन होती है वह अल्पायु होता है। यदि यह रेखा बीच उगली के नीचे ही टूट जाए तो

हृदय-वेदना और मानसिक कष्ट अथवा चोट का भय रहता है। जिसकी आयु-रेखा झुककर मातृ-रेखा से बीच उगली के नीचे मिलती है उसकी हठात् मृत्यु होती है। जिसकी यह रेखा मातृ-रेखा की ओर झुकी रहे और मातृ-रेखा इस रेखा की ओर तनी रहे अर्थात् यदि बीच उगली के निम्न भाग मे आयु-रेखा और मातृ-रेखा मे कम अन्तर हो तो वह व्यक्ति रहस्यमय प्रकृति का और रिश्वती होगा अथवा अनुचित रूप से धन-सग्रह का आकाक्षी होगा। यदि इस रेखा की एक शाखा निकलकर मातृ-रेखा से मिले और बीच ही में किसी अन्य रेखा से खडित भी हो गई हो तो उस व्यक्ति का विवाह शोचनीय होगा तथा वह व्यक्ति मानसिक कष्ट से पीड़ित होगा। कनिष्ठा के नीचे इसमे शाखाएं न रहने से पुत्र-प्राप्ति की आशा कम रहती है।

भाग्य-रेखा—(इसे भोग-रेखा भी कहते है) इसको हम मनुष्य के कर्म-वल को नापने का माप-दण्ड कह सकते हैं। किसी से मिलते ही आप उसके हाथ की ओर दृष्टि डालने पर तत्काल-इस रेखा को देख सकते है और अनुमान कर सकते है कि वह व्यक्ति उन्नतिशील है अथवा नही। यदि यह रेखा मणिबध से उठकर मध्यमागुली के मूल देश तक सीधी, अबाध जाए तो वह व्यक्ति परमसुखी और उन्नतिवान् एव ऐश्वर्यशाली होगा। वह जिस स्थिति मे भी होगा, अपने वर्ग मे सुखी और मान्य होगा। जहां यह रेखा खण्डित होगी, वहा मनुष्य का ऐश्वर्य खण्डित होगा। खण्डित होने पर यदि पास से दूसरी भाग्य-रेखा फिर चल पडे तो उस व्यक्ति का व्यक्तित्व पुन. प्रभावशाली होगा। यदि हथेली के बीच से यह उठे और बुध की ओर जाए तो वह व्यक्ति व्यवसायकुशल या विज्ञानकुशल होगा। जहा वह वक्र होगी, तो मनुष्य के लिए विपत्ति सामने खडी होगी। यदि शुक्र के स्थान से कुछ रेखाएं निकलकर इसको और पितृ-रेखा को काटें तो उस व्यक्ति को स्त्री-वियोग होगा। जिसके हाथ मे यह रेखा बिलकुल नही होती वह उद्यम-हीन, निराश और अर्थ-कष्ट से दबा रहता है। यदि यह रेखा पितृ-रेखा से उठे तो वह व्यक्ति मनस्वी और पौरुषवान् होता

है। मूल में इसकी एक शाखा शुक्रस्थान और दूसरी शाखा चन्द्र-स्थान की ओर जाने से वह व्यक्ति कल्पनाप्रिय और रसिक होता है। हाथ में जहां से यह रेखा चले उस अवस्था से उन्नतिकाल का आरम्भ मानना चाहिए। जहां यह रेखा मातृ-रेखा को काटती है वहा पैंतीस वर्ष की आयु मानी जाती है।

८. मणिबंध—मणिबंध से पुरुष के पुरुषार्थ और उसकी दृढता का पता चलता है। वीर पुरुष का मणिबंध सुदृढ, सुश्लिष्ट और संधि-विशिष्ट होता है। जिसकी कलाई मज़बूत होती है उसका दिल भी मज़बूत होता है। लचकदार कलाईवाले का स्वभाव भी लचकदार अर्थात् चंचल होता है। झुकी हुई या ढीली कलाईवाला पुरुष नारी-स्वभाव का होता है, अकर्मण्य एवं विलासी होता है। प्राचीनकाल से बहिनें भाइयों की कलाई में राखी बांधती आ रही है, युद्धकाल में पत्निया रण-कंकण पहनाती आ रही हैं। यह क्यों ? इसका कारण है कि वे मणिबंध की दृढता में विश्वास करती हैं और चाहती हैं कि वे झुकें नही। इसी से उक्त अंग का महत्त्व प्रकट होता है।

स्वस्थ और ऐश्वर्यशाली पुरुष के मणिबंध मे तीन सरल और सुन्दर रेखाएं होती है। स्वास्थ्य जितना अच्छा होता जाता है, उतनी ही वे रेखाएं स्पष्ट होती जाती हैं। कर्मशील व्यक्ति की कलाई खड़ी रहती है, अकर्मण्य और भीरु की झुक जाती है।

४. नितम्ब से पदतल तक

१. नितम्ब—कठोर और बहुत बड़े नितम्बवाला व्यक्ति आलसी, अक्खड़ और दंभी होता है। मांसल और उभरे हुए नितम्ब का मनुष्य साहसी, शक्तिवान् तथा स्वावलम्बी होता है। नितम्बहीन व्यक्ति निकम्मा होता है।

२. जंघा—हाथी की सूंड या केले के पौधे जैसी जंघा उनकी होती है जो शक्तिवान्, स्वस्थ और भोगसमर्थ होते हैं। साधारण व्यक्ति की जंघाएं कुत्ते या शृगाल की तरह विरल और मांसहीन होती है। पैर ही शरीर-

सदन का खम्भा होता है। वह मजबूत होता है तो शरीर भी मजबूत होता है। वह टेढ़ा-मेढा या निर्बल होता है तो मनुष्य भीतर-बाहर दोनो से निर्बल होता है। पतली टागोवाले ऐश्वर्यभोगी नही होते।

३. पदतल—उत्तम पुरुष का पदतल लाल, मांसल और सरस रहता है। ऐसा व्यक्ति जब चलता है तो उसका पूरा पैर जमीन पर पड़ता है। मार्ग मे उसके पूरे पैर की छाप मिलती है। अवनतिशील व्यक्ति के पैर की पूरी छाप नही मिलती।

अंग-प्रत्यंग द्वारा मनुष्य-परीक्षा के यही मुख्य लक्षण हैं। प्राचीन आर्य ग्रथो में इनपर अच्छी छानबीन हुई है। वैद्यक ग्रथो मे इनपर वैज्ञानिक रीति से विचार किया गया है। सुश्रुत ने तो एक-एक अग की नाप तक निर्धारित कर दी है। उसने सारे शरीर की भी प्राकृतिक लम्बाई बताई है। उसके अनुसार पदाग्र पर खड़े होकर दोनो हाथ ऊपर उठाने से नीचे से कराग्र तक मनुष्य अपनी उगलियो के माप से १२० अगुल का होता है। चरक और कौटिल्य के मत से साधारण रीति से खड़े होने पर पैर से सिर तक मनुष्य ८४ अगुल लम्बा होता है। ३६ अगुल का अन्तर पैर और हाथ उठाने के कारण हो जाता है। जो व्यक्ति १२० अगुल (या समभाव से खड़े होने पर ८४ अगुल) लंबा होता है वह वैद्यक के मत से स्वस्थ, दीर्घायु और सुखी एवं प्राकृतिक विभूतिसम्पन्न होता है। 'बृहत्-सहिता' के मत से साधारण रूप मे खड़े होने पर जो १०८ अंगुल लम्बा हो वह साधारण श्रेणी का सज्जन होता है। ९६ अगुलवाला मध्यम श्रेणी का और ८४ अगुलवाला साधारण श्रेणी का सत्पुरुष होता है। इससे कम लम्बा व्यक्ति अधम होता है। साधारणतया लोग अपने अंगुलो से ८४ अगुल लम्बे ही होते हैं।

सुश्रुत ने अगो द्वारा आयु-परीक्षा का विधान भी बताया है। उदा-हरणार्थ, जिसके सधि-स्थल, शिराए और स्नायु गूढ होते है; इन्द्रियां स्थिर, शरीर पैर से सिर तक उत्तरोत्तर अधिकाधिक सुडौल होता है, वे दीर्घायु होते है। जिसके पैर छोटे, शिश्न दीर्घ, छाती की पसलिया

सकुचित, पृष्ठ-भाग संकीर्ण, कान अपने स्थान से अधिक ऊचे, नाक ऊपर चढी हुई हो और जिसके हसने पर उसके मसूडो का मांस दिखलाई पड़ता हो और जो आंखो को बहुत फेरता हो, वह अल्पायु होता है। उसी प्रकार जो जन्म से ही नीरोग हो; जिसके शरीर, ज्ञान, विज्ञान की धीरे-धीरे अवस्थानुसार वृद्धि होती है, वह दीर्घायु होता है। जिसके शरीर, ज्ञान आदि की वृद्धि तीव्रता से होती है, वह अल्पायु होता है। प्राय यह देखा जाता है कि जिनका बड़ा सुन्दर शारीरिक विकास होता है, जिनका भविष्य बडा उज्ज्वल समझा जाता है, उनको अल्पायु मे ही काल छीन ले जाता है। सुश्रुत के निदान से इसका रहस्य समझ में आ सकता है।

वैद्यक ग्रथो मे शरीर-परीक्षा के ऐसे ही कई नियम हैं। वात, पित्त, कफ आदि के आधिक्य या क्षीणता से मानव-स्वभाव किस प्रकार का होता है, इसका वर्णन भी है। बाहरी अग-दशा से भीतर का सारा हाल अब भी कुशल वैद्य बतला देते हैं। उनका विशेष उल्लेख न करके हम अब यहां पर कुछ अन्य विधियो का सक्षेप में वर्णन करेंगे।

एक प्रकार की परीक्षा-विधि यह है—२५ वर्ष की आयु के पति-पत्नी अपने को तोलें। यदि वे करीब-करीब बराबर वजन के हो तो सुखी और परस्पर प्रेमी होंगे। पुरुष स्त्री से कम भारी हो तो निर्बल, दु खी और स्त्री-विजित होगा। स्त्री कम भारी हो तो वह सुशीला और पति की आज्ञाकारिणी होगी। स्वर से भी मानव-परीक्षा होती है। श्रेष्ठ व्यक्ति का स्वर हाथी, रथ, भेरी, मृदग, सिह या मेघ जैसा होता है। मूर्ख का स्वर गर्दभ जैसा और दुष्ट का स्वर काक जैसा कर्कश होता है। चाल से भी अच्छी परीक्षा होती है। बिना शब्द किए चलनेवाला व्यक्ति सामर्थ्यवान् और सज्जन होता है। द्रुतगामी और बहुगामी चचल तथा आतुरमति होता है। दभी उछलता-कूदता, पैर पटकता हुआ चलता है। श्रेष्ठ प्रकृति का पुरुष सिह, मतग, साड या मोर की गति से चलता है। सीधे आदमी के पदतल चलते समय सीधी दिशा मे पड़ते हैं; नीति-निपुण और चालाक आदमी के पंजे दायें-बायें निकले रहते है तथा मूढ के पजे

एक-दूसरे की ओर झुके हुए होते है।

सारांश

इन सारी बातो का साराश यह है—मनुष्य के व्यक्तित्व का एक प्रमुख अश उसके अग-प्रत्यग की बनावट से प्रकट होता है। मनुष्य में मनोवल हो तो वह इच्छानुसार अगो को सुडौल, सतेज अर्थात् लक्षण-सम्पन्न बना सकता है। वह अगो को छोटा-बड़ा भले ही न कर सके, पर एक स्थान की कमी को दूसरे स्थान से पूरी कर सकता है। अगो की बनावट से अपनी स्वाभाविक प्रकृति को जानकर वह अधिक सावधान होकर बुद्धि-बल से उसको दबा सकता है और वह दब भी जाती है। जैसे किसी नाटे आदमी को आप देखिए; वह विशेष चैतन्य, कार्यपटु और दूसरो पर प्रभुता जमाने के लिए प्रयत्नशील मिलेगा। उसकी क्रियाए प्राकृतिक नही, बौद्धिक होती है। इसलिए वह उस कमी को पूरा करने के लिए अधिक फुर्तीलपन, कार्यपटुता दिखाकर अपने को श्रेष्ठ दिखलाना चाहता है और द्वेषवश बड़े शरीरवालो पर शासन चलाने की मनोवृत्ति रखता है। लम्बे आदमी मे यह भाव नही उठता।

सम्पूर्ण शरीर को देखिए

किसी की परीक्षा जब आप अग-प्रत्यग को देखकर करते हैं तो एकागी दृष्टिकोण से न करिए। उसमे गलती हो सकती है। किसी का एक अग प्रभावशाली हो सकता है, किन्तु उसी का एक विरोधी अग विरोधी दिशा में उससे भी अधिक प्रभावशाली होकर पहले के प्रभाव को मन्द कर सकता है। अतएव सभी अगो से मनुष्य को पहचानिए। उदाहरणार्थ यदि किसी की नाक गोल और बगल से चपटी हो, उसकी आखें भी घसी हो, होठ भी पतले और जीभ भी बहुत लपलपाती हो, उसे आप लोभी समझिए। किसी की आंखे भी धंसी हो, कान तने हो, भौहें वक्र हो, माथा सकुचित या सपाट हो, नाक वक्र हो, नीचे का होठ ऊपरवाले पर शासन करता हो तो उसे अभिमानी, क्रोधी या शीघ्रकोपी

मानिए। किसी के कान खडे हो, सिर गोल हो, नाक लम्बी हो, होठ पतले और ठुड्डी छोटी हो तथा गर्दन लम्बी हो तो उसे गृह-मोही, स्त्री-प्रेमी मानिए। किसी की आखें फटी-सी हो अर्थात् ऐसा लगता हो जैसे देखनेवाला आखें फाड-फाडकर देख रहा हो, माथा धसा हो, केश रूक्ष या खड़े हो, सिर लम्बा, पैर पतले हो और ऐसा लगता हो जैसे उसके सब अग शरीर के भीतर सिमटे जा रहे है तो उसको भयशील मानिए। जिसके गाल फूले हो, छाती पीठ की ओर विशेष झुकी हो, नाक त्रिकोण हो, सिर पीछे की ओर विशेष निकला हो, होठ आपस मे सिमटे-से हो, बाल बिखरे तथा खडे हो, आखें ऊपर-नीचे तनी हो, माथा या तो बहुत छोटा हो अथवा बहुत धसा हो, उसे अहकारी मानिए। जिसका मुह निकला हो, होठ मोटे, गाल उभरे और आखें बैल जैसी हो उसको मूर्ख, आलसी, मानहीन मानिए। जिसका सारा मुह लटका हुआ-सा हो, आवाज में भर्राहट हो, हाथ बहुत मोटे या पतले हों, वह असुखी और चिन्ताग्रस्त होगा। जिसके अग आपस में गोद से चिपकाए हुए-से लगते हैं, नाक विशेष चपटी होती है, नीचे का होठ निकला रहता है, मुह फैला रहता है, कपाल दबा-सा रहता है, वह कजूस होता है। जिसका मस्तक उठा रहता है, छाती चौड़ी और तनी रहती है, आखें जिधर भी उठती है सीधी दिशा मे देखती है, प्रत्येक अग नपा-तुला-सा रहता है, सिर छत्ताकार होता है, वह मेधावी, यशस्वी एवं शूरवीर समझा जाएगा। जिसका भाल विशाल होता है, नासिका का अग्रभाग कुशाग्र होता है, कपाल का बुद्धि-स्थान विशाल और उठा होता है, शरीर के सभी अग सुविभक्त होते हैं, वह विशेष कार्यार्थी, उद्यमी, प्रबल विवेक, तेजस्वी और सर्वगुणसम्पन्न होता है (गाधीजी की आकृति को देखिए)। जिसका चेहरा मलिन हो, आखें धुधली या कीचड से भरी हो, होठ विवर्ण हो, ललाट निष्प्रभ हो, अग-प्रत्यग सुस्त हो, उसे आप रुग्ण, मुख्यत. उदर-विकार से ग्रस्त मान सकते है।

समूचे शरीर की पराक्षा करते समय आप मुख्य रूप से यह देखिए कि दात, त्वचा, नख, रोम और केश चमकते है या नही। जिसके शरीर मे तेज होता है, वह इन स्थानो से झलकता है। शरीर में जितने स्थान रूखे, मांसहीन और उभरी नसोवाले होगे, वे अशुभ होगे और बहुत क्रियाशील न होंगे। एक और बात यह देखने की होती है कि जो अग इस समय किसी रूप मे है उसका मूलस्वरूप क्या रहा होगा। स्वभाव से, खान-पान की विशेषता से और परिस्थितियो के आघात-प्रतिघात से अगो की बनावट में अन्तर आ जाता है। आप कुछ दिन चिन्ता कीजिए तो बालो की चमक निकल जाएगी; उनमे रूक्षता आ जाएगी और वे अपना प्राकृतिक रग त्यागकर असमय में ही श्वेत हो जाएगे। आपके नेत्र कितने ही उन्नत हो, मद्य सेवन कीजिए तो वे नत हो जाएगे। जन्म से आप अच्छी कमरवाले हो सकते है, पर बेसिर-पैर का खाना खाइए और पड़े रहिए तो कमर की जगह पर तोद निकल आएगी। अतएव मनुष्य के मूलरूप की परीक्षा करते समय उसकी परिवर्तित कर देनेवाली शक्तियो या परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए—यद्यपि सत्य यही है कि शरीर की मूल प्रकृति में विशेष अन्तर नही हो सकता। जिन बच्चो की बनावट ही दुबली-पतली होती है उनमे से बहुत-से, चाहे वे कुबेर के पुत्र हो और रोज सुवर्ण और मुक्ता-भस्म खाए, तो भी दुबले ही बने रहते है। यदि किसी दरिद्र की बनावट अर्थात् प्रकृति मे मोटा-पन रहता है तो वह साग खाकर भी मोटा होता जाता है। जो लोग पुनर्जन्म और कर्मफल मे विश्वास करते हैं वे इसके रहस्य को अवश्य स्वीकार करेंगे। पूर्वकर्मो के अनुसार ही मनुष्य को नया शरीर मिलता है।

अन्त में, हम पुनः कहेगे कि अगो की बनावट को ही सर्वस्व न मान लेना चाहिए। उनका सांचा न बदले यह ठीक है, पर उनका सस्कार प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। और मुख्य बात यह है कि मनुष्य अपनी

आत्मा को प्रवल बनाकर शारीरिक असमताओ के रहते हुए भी अपना एक ऊचा व्यक्तित्व वना सकता है। महाकुरूप भी सद्‌गुणो से अपनी सारी कुरूपता को ढक सकता है। प्रकृति द्वारा किसी को सुन्दर अग-प्रत्यग मिल सकते है, पर यदि उसका मन ही निर्वल हो तो वे अग केवल मुर्दे के शरीर के आभूपण ही होगे। अतएव आप किसी की परीक्षा करते समय उसके मन की विशेप रूप से परीक्षा कीजिए। मन की परीक्षा व्यवहार, अग-प्रत्यग के सचालन और शारीरिक चेप्टाओ से होती है। इसपर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे।

८. संग्रह-त्याग न बिनु पहिचाने

इन बातो को ध्यान में रखिए

व्यवहार से, बातचीत से, अंग-चेष्टा या आकृति-परिवर्तन आदि से आप दूसरों की दृष्टि में कैसे लगते है और दूसरे लोग आपकी दृष्टि मे कैसे लग सकते है, अर्थात् शरीर के बाहरी व्यापार से उनके मनोभावो या व्यक्तित्व का पता कहा तक और कैसे लगता है, इसको समझने के लिए इन कुछ बातों को ध्यान मे रखिए :

१. मन ही सब इन्द्रियो के प्रवर्तन का हेतु है . 'मनो हि हेतु. सर्वेषा-मिन्द्रियाणा प्रवर्त्तने' (वाल्मीकि)—यह महाबुद्धिमान् हनुमान् की उक्ति है। मनुष्य के शरीर का प्रत्येक अंग मन के आदेश से ही सचालित होता है। मन मे जैसे विचार उठते हैं, शरीर के अग उन्ही के अनुकूल व्यक्त होते है। मन की चैतन्यता से इन्द्रिया चैतन्य होती है, उसके शिथिल होने से वे शिथिल पड़ती हैं और उसके अस्त-व्यस्त होने से वे भी भूलें करती हैं। साराश यह है कि अग-प्रत्यग की चेष्टा से मन की चेष्टा या मनोवृत्ति का ज्ञान हो सकता है।

२. मनोभाव के लक्षण शरीर पर तुरन्त ही प्रकट होते हैं—मन अपने को छिपाकर नही रख सकता। आकृति से, वाणी से, व्यवहार से या किसी चेष्टा से वह अपनी दशा को अभिव्यजित कर देता है। इसको इन उदाहरणो से समझिए। जब मन कांपता है तो वाणी कापती है, हाथ-पैर भी कापने लगते हैं। मन सदेहग्रस्त रहता है तो वाणी अस्पष्ट हो जाती है, आखें स्थिर हो जाती है और अगो की क्रिया-शक्ति मद पड जाती है। किसी बात से जब मन फडकता है तो शरीर के कोमल स्थान भी फड़कते हैं। जब मन भयभीत होता है तो हृदय ज़ोर से धडकता

है, रोए खड़े हो जाते हैं, शरीर के सब अंग विकल हो जाते हैं। जब मन कापता है तो पलकें बार-बार झपकती हैं। वह जब लोभग्रस्त होता है तो लार टपकने लगती है। वह जब चौकता है तो कान खडे हो जाते हैं। जब वह हत्या करने का निश्चय करता है तो आखों मे खून सवार हो जाता है। वह जब क्रुद्ध होता है तो सास की गति बढ जाती है, चेहरा लाल हो जाता है, अग-प्रत्यग फडकने लगते है। उसपर कोई आकस्मिक आघात पहुचता है तो चेहरा सफेद हो जाता है। मन के वेदनाग्रस्त होने पर स्वर भारी और शिथिल हो जाता है। और सबसे बडा प्रमाण तो यह है कि जब कोई माता अपने छोटे बच्चे के मोह से व्याकुल होती है या उनकी कीर्ति-कथा सुनकर आनन्द-विह्वल होती है तो उसके स्तनो से दूध टपकने लगता है। इन सबसे यह स्पष्ट है कि आपके भाव-जगत् की छाया आपके बाह्य जगत् पर पडती है। बहुत कम लोग अपने भावो को पचाने मे समर्थ होते है। इनको या तो योगी पचा सकता है या परम विमूढ़ अथवा कोई निर्लज्ज फक्कड। साधारण व्यक्ति जब मनोभावो को दबाता है तो उसे नाना विकार हो जाते है। कभी-कभी देखा गया है कि कोई स्त्री अपने बच्चे की मृत्यु के बाद सस्तब्ध हो जाती है, उसके मुख से न आवाज़ निकलती है, और न आख से आसू की धारा। उस दशा मे लोग उसे रुलाने का प्रयत्न करते है अन्यथा उसके पागल होने या मर जाने की आशका रहती है। साधारण दशा मे मनोभाव अभिव्यक्त हो ही जाते हैं और अग-प्रत्यंग उनको छिपा नही सकते, क्योकि वे शरीर के स्वतन्त्र अवयव नही होते। मन की हवा चलने से तन-तरुवर के सभी पत्ते हिलते हैं और उनके हिलने से हवा का रुख और उसकी तेज़ी का पता चल जाता है।

३. स्वभाव मूर्द्धा पर रहता है : 'स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते' (हितोपदेश)। आपका स्वभाव प्रत्येक बात में आगे रहता है, प्रत्येक काम मे सामने दिखलाई पडता है और उसके अनुसार आप व्यवहार करते है या किसी के व्यवहार से प्रभावित होते हैं। वह आपकी आकृति से प्रकट

होता है; स्वर से, दृष्टि से प्रकट होता है तथा बातचीत के विषय एव उसके ढग से और आपके सम्पूर्ण आचरण से प्रकट होता है। साथ ही, आपके स्वभाव की विभिन्नता से इन सबमे विभिन्नता आ जाती है। अतएव किसी के ज्ञान आदि को देखने के पूर्व उसके स्वभाव से उसकी मनुष्यता की परीक्षा कीजिए।

स्वभाव की बहुत-सी विशेषताए जन्मगत होती हैं। पूर्व सस्कारो और बाल्यकाल के वातावरण के अनुसार मनुष्य की प्रकृति का सच्चा निर्माण और विकास होता है, इसे सभी स्वीकार करते है। आगे चलकर मनुष्य परिस्थितियों के अनुसार और ज्ञान-विवेक के अनुसार भी अपने स्वभाव का परिष्कार करते हैं। यहा यह बता देना अप्रासगिक न होगा कि मनुष्य अपने मस्तिष्क के केवल $\frac{1}{10}$ भाग पर ही शासन करता है, शेष $\frac{9}{10}$ भाग उसके स्वभाव या उसकी आदतो से ही अपने-आप शासित होता है। यह भी कह देना असगत न होगा कि मनुष्य में ७५ प्रतिशत बुद्धि-भाग जन्मगत होता है। विद्या, अभ्यास, अनुभव से यह केवल २५ प्रति-शत ही उसमे मिलाता है। इन सबसे अन्तर्मन और उसके सस्कारों की महत्ता समझ मे आ सकती है। यदि स्वभाव पर आरम्भ से ही नियंत्रण न रखा जाए तो आगे चलकर ज्ञान-बल से उसका सुधार नही होगा। सब प्रकार से यही स्पष्ट है कि ज्ञान की अपेक्षा स्वभाव से किसी के व्यक्तित्व की परीक्षा करना अधिक सुगम है। किसी का स्वभाव अच्छा होगा तो उसका प्रेरणात्मक ज्ञान उसका सहायक ही होगा। स्वभाव विपरीत होगा तो उसकी चेतन-बुद्धि भी विपरीत दिशा मे कार्य करनेवाली होगी। बुद्धि-बल से और जिह्वा-बल से कभी-कभी स्वभाव को छिपाया जा सकता है, पर सर्वदा नही।

४. रूप के मोह मे न पड़िए—किसी के रूप को देखकर ही उसको प्रधानता न दीजिए। आचरण से भी उसकी परीक्षा कीजिए। वेश्या रूपवती होकर भी दुराचारिणी होती है कस्तूरी को काली समझकर फेंकने की चेष्टा न कीजिए। तालाब की पहली ही सीढ़ी तक जाने से

उसकी गहराई का अनुमान नहीं होता; और अन्दर तक जाइए। कोई आपसे मिलता है तो उसकी सफेद कमीज देखकर ही स्वच्छता-प्रेमी न मान लीजिए। उस कमीज के नीचे भी देखिए, वहां शायद एक बड़ी गन्दी बनियान मिलेगी जो गन्दे स्वभाव के सार्टीफिकेट की तरह उसके गले में टगी होगी।

किसी के मुख से सीता-सावित्री के उपाख्यान सुनकर ही उसको महात्मा न मान लीजिए। उसके कमरो की दीवारो पर भी दृष्टि डालिए, सम्भव है वहा उसके स्वभाव को प्रिय लगनेवाली ससार की चुनी हुई कुलटाओ के चित्र टगे मिलें। उसके ग्रामोफोन के रेकार्ड देखिए। हो सकता है, वह आपको भजन सुनाता हो और घर में कव्वालिया सुनकर अपनी स्वाभाविक तृप्ति करता हो। उसकी मेज को नही, पुस्तकालय को देखिए। मेज पर सम्भव है वह धर्मशास्त्र के ग्रथ रखता हो और पुस्तकालय में सचित्र कोकशास्त्र मिल जाए। किसी को स्वच्छता कहा तक प्रिय है, इसे जानना हो तो उसका बैठकघर नही बल्कि उसका रसोई-घर देखना चाहिए। किसका जीवन कहां तक सुखी है, इसको उसकी आकृति पर नही, उसके स्त्री-बच्चो की आकृति पर पढ़ना चाहिए। किसी कवि के व्यक्तिगत जीवन के आनन्द को उसके काव्य से नही बल्कि उसके रोजनामचे से जानना चाहिए। काव्य मे तो वह सुवर्णकोष लुटाता होगा, पर निजी जीवन मे संभवतः दूसरो से रुपये उधार लेकर जीविका चलाता हो। किसी का साहस-बल उसके शब्दो में न देखिए और न उसकी सम्पत्तिशालीनता की अवस्था मे। विपत्ति में देखिए उसकी जिह्वा तेज चलती है या उसके पैर। मित्र की परीक्षा अपने सुख के दिनों मे नही, सकट के दिनों में कीजिए। दाढी देखकर किसी को सरदार न मान लीजिए, बल्कि देख लीजिए उसके पास सरदार का दिल भी है या नही। रुपये की गोलाकृति और उसकी चमक-दमक देखकर ही उसको खरा न मान लीजिए, उसे बजाकर भी देख लीजिए; हो सकता है, वह जाली या खोटा निकले। प्रत्येक वस्तु के सामान्य रूप को नही, उसके विशिष्ट

रूप को भी देखकर तब उसके विषय मे निर्णय कीजिए। मनुष्य की योग्यता-अयोग्यता को सभवतः उसके रूप से आप न पढ पाए, पर उसके कार्य, व्यवहार और स्वभाव के विज्ञापन से अवश्य पढ लेंगे।

इस सम्बन्ध मे आप उस उपदेश को याद रखिए जो मछलियो ने राम को दिया था। पम्पासर मे बगुलो की ओर लक्ष्मण की दृष्टि आकृष्ट करके राम ने कहा था कि हे लक्ष्मण! देखो, यह जीव कैसा साधु है, धीरे-धीरे पैर उठाकर रखता है; डरता है कि कही उसके पैरो के नीचे किसी जीव की हिंसा न हो जाए। सरोवर की मछलियो ने इसको सुनकर तत्काल कहा – हे राम! तुम क्या कह रहे हो, इस धूर्त ने हमारे वश के वश निर्मूल कर दिए है—साथ रहनेवाला ही साथी के चरित्र को जान सकता है : 'सहवासी विजानाति चरित सहवासिनः।'

५. देश, काल, परिस्थिति को ध्यान में रखिए—किसी व्यक्ति अथवा किसी वस्तु का निरूपण करते समय देश-काल और परिस्थिति के अनुसार विचार कीजिए। विचार ही न कीजिए, अपने जीवन मे भी आप देश, काल, परिस्थिति के अनुकूल सुधार कीजिए, जिससे आप सामयिक बन सकें। 'जैसा देस वैसा भेस' की कहावत न भूलिए। यदि पण्डित जवाहरलाल नेहरू भारतवर्ष में हिन्दू-राज्य की स्थापना का विरोध करते है तो आप उन्हे हिन्दू-द्रोही कहने से पहले एक बार इन बातो पर भी विचार कर लीजिए कि आप एक ऐसे देश मे हैं जहा और भी धर्मों के लोग स्वाधिकारपूर्वक रहते हैं; आप एक ऐसे काल में है जिसे बीसवी शताब्दी कहते है और जिसमे सर्वत्र प्रजातत्र राज्यो की स्थापना हो रही है, और आप एक ऐसी परिस्थिति मे है जिसमे धर्मान्धता से देश-समाज की हानि हो सकती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से आप वचित हो सकते है। समय परिवर्तनशील है और समय के साथ सभ्यता का प्रत्येक अग परिवर्तनशील है। सम्भवत. हम आप उस युग मे होते जब राजनीति धर्म की एक शाखा-मात्र थी और सौभाग्य से यही पण्डित

जवाहरलाल नेहरू होते और सभी आधुनिक साधन भी सुलभ होते तो यह सम्भव था कि धार्मिक भावना से प्रेरित होकर गवर्नमेण्ट ऐसे ही नियम बना देती कि रेलें साइत से चलें, दिशाशूल मे न चलें; गार्ड लोग सीटी नही, शख बजाया करें, गाडी चलते समय गार्ड के डिब्बे मे हवन और मगल-स्तोत्र का पाठ होता चले जिससे यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो जाए। पर वर्तमानकाल मे ऐसी बातो की कल्पना करना भी मूर्खता है।

यह तो सार्वजनिक विषयो के सम्बन्ध मे हुआ। व्यक्तिगत व्यवहार मे भी हमारी परीक्षा इसी से होती है कि हम समय के साथ कहा तक आगे बढ रहे है। आप किसी से मिलते हैं तो इसी दृष्टि से उसको देखिए। इस बात को विवेकपूर्वक देख लीजिए कि वह व्यक्ति जैसा आचरण कर रहा है, वैसा करने के लिए वह बाहरी वातावरण से कहा तक विवश है। अपने को उसकी परिस्थिति मे रखकर तब उसके व्यक्तित्व को तोलिए।

इस प्रश्न को और भी निकट से तथा अन्य प्रकार से देखिए। कभी-कभी एक ही प्रकार का कर्म भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे पडकर भिन्न हो जाता है; उदाहरणार्थ, साधारण दशा में कोई व्यक्ति किसी की हिंसा करता है तो वह हत्यारा माना जाता है और फासी पर लटका दिया जाता है। युद्ध मे शत्रु हिंसा करने पर वही व्यक्ति शूरवीर और राजसम्मान का पात्र माना जाता है। कर्म एक ही प्रकार का होने पर भी परिस्थितियां कर्ता के रूप को भिन्न कर देती हैं। यदि आप परि-स्थितियो को न जानें और इतना ही जानें कि अमुक व्यक्ति ने दस आदमी मार डाले तो आप उस व्यक्ति को महाहिंसक मान लेंगे। एक अन्य उदाहरण लीजिए। एक समय था जब हिटलर विजेता की स्थिति मे था। उसकी सेनाएं दिग्विजय करती हुई सारे विश्व को कपा रही थी। उस समय लोग उसे सर्वशक्तिमान, ऐतिहासिक युग का सर्वश्रेष्ठ योद्धा मानते थे। कालान्तर में परिस्थिति ने पलटा खाया। अब किसी को हिटलर के वीर-रूप का ध्यान नही आता; सब उसकी अदूरदर्शिता

और अमानुषिकता की कथाएं ही कहते-सुनते है। उसकी विशेषताओं को कोई सोचता भी नही । परिस्थितियो का इतना प्रभाव किसी के व्यक्तित्व पर पड़ सकता है ! विजेता हमारी दृष्टि में सदा से देवतुल्य हो जाता है और विजित रावण का अवतार। जब परिस्थितिया स्वाभाविक रूप से हमारी मनोदशा पर इतना प्रभाव डालती हैं तो हम उनकी उपेक्षा कैसे कर सकते है ? हा इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि हम केवल परिस्थितियो को ही न देखें, देश-काल ही को न देखें, वल्कि मानव के व्यक्तित्व को उसके बीच मे खडा करके देखें और स्वयं भी उन्ही के बीच मे अपने को रखकर विचार करें।

६. स्वतन्त्र बुद्धि से विचार कीजिए— किसी के व्यक्तित्व की शुद्ध परीक्षा करते समय उसके रग-रूप, उसकी स्थिति और उसके कार्यक्रम आदि का ध्यान रखना तो आवश्यक ही है। इस बात की और भी अधिक आवश्यकता है कि आप अपने स्वभाव और स्वार्थ के आधार पर किसी की रूपरेखा न बनाए। प्रायः यह होता है कि आदमी अपनी स्थिति में सबको रखकर उनके विषय मे अपनी एक धारणा बनाता है। ऐसा भी होता है, और प्रायः होता है कि हम स्वय जैसे हैं, वैसे ही दूसरो को देखना चाहते हैं। यदि वे वैसे नही होते तो हम उनके व्यक्तित्व का सम्मान नही करते। यही बुद्धि विवेकभ्रष्ट हो जाती है।

वास्तव मे, प्रत्येक बुद्धिसम्पन्न मनुष्य मे एक-दूसरे को पहचानने की शक्ति है; वह नित्यशः इस शक्ति का उपयोग भी करता है। उससे त्रुटि वही होती है जहा वह भावुकता के आवेश में या अपने स्वभाव की विवशता से या अनुभवशून्यता से अथवा अज्ञानवश निष्पक्ष होकर किसी के वास्तविक रूप को नही देखता। वह जो कुछ देखता है। उसे एकागी दृष्टिकोण से और अपने मन के सकल्प के अनुसार देखता है। मन में किसी पूर्व-वासना के होने से हरएक देखी हुई वस्तु उसी के रग में रग उठती है। मान लीजिए आप धर्मान्ध हैं। उस दशा मे अन्य धर्म का सभ्य व्यक्ति भी आपको चाडाल जैसा लगेगा। आप पुराने ढग के कट्टर

सनातनधर्मी पण्डित हो तो अपने से भी अधिक किसी साफ-सुथरे शूद्र को महागन्दा और अछूत ही मानेंगे। यदि आप उदारबुद्धि के होंगे तो महापतित को भी अपना बन्धु ही मानेंगे। इसी को दूसरे रूप मे यो समझिए। एक हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति को उसकी माता महानिर्दोष और दुर्बल मानती है। उसकी स्त्री उसको रसिकराज समझती है, अपना देवता मानती है। उसके बच्चे उसी को अपना सरक्षक और शासक मानते है। उसके सेवक उसी को धर्मावतार, मित्रगण एक समर्थ बन्धु और शत्रुगण साक्षात् दानव समझते हैं। वे उसके व्यक्तित्व को उसी रूप मे देखते हैं, जिससे उनका सम्बन्ध है। पर क्या सबके विचारो को अलग-अलग लेकर आप उस व्यक्ति का समूचा व्यक्तित्व चित्रित कर सकते है? कभी नही। अनुरागी व्यक्ति अपने प्रेम-पात्र की त्रुटियो को कभी नही देखता। द्वेषी व्यक्ति अपने शत्रु के सीधे आचरण को भी सदोष मानता है। जब हमारे मन मे किसी व्यक्ति या किसी वस्तु के पक्ष-विपक्ष मे कोई धारणा पहले से बनी रहती है तो हम उसके सम्बन्ध मे विचार करते समय उसके साथ न्याय नहीं करते। हम उसके रूप को नही बल्कि अपने स्वभाव या स्वार्थ को उसी के रूप मे मूर्तिमान देखते है और भ्रम मे पड़ जाते हैं। जिससे हमारा स्वार्थ-साधन नही होता, उसे हममे से अधिकाश लोग दो कौड़ी का आदमी समझ लेते है। यदि कोई अनीति-पूर्वक भी हमारा उपकार कर देता है तो हम उसको बड़ा भला आदमी मान लेते है।

जब तक हम व्यक्तिगत प्रश्नो को अलग रखकर किसी के विषय मे विचार नहीं करते, तब तक हम उसको समझने मे अवश्य भूल करेंगे। अतएव यह आवश्यक है कि पहले आप अपने परीक्षा-यन्त्र को ठीक कर लें। यदि आपका कोई हाथ पक्षाघात से निर्जीव होगा तो उसमे किसी जीवित व्यक्ति की नाड़ी भी यदि पकडा दी जाएगी तो आप उसको निर्जीव घोषित कर देंगे। नेत्र-दोष होने पर सुन्दर दृश्य भी कष्टप्रद होता है। यदि आप लोभी होंगे तो उसी व्यक्ति को सज्जन समझेंगे जो कुछ

भेंट-पूजा लेकर आपसे मिलेगा ; खाली हाथ मिलनेवाला महास्वार्थी जैसा लगेगा। यदि आप हृदय के दुर्बल होगे तो बलवान् व्यक्ति आपको ब्रह्मराक्षस जैसा प्रतीत होगा और यदि आततायी होगे तो बड़े से बड़े आदमी को मिट्टी का कच्चा घडा समझेंगे। बिना टिकट के रेलयात्रा करनेवाले को टिकट-कलेक्टर यमदूत जैसा लगता है।

इसलिए यदि आप दूसरे को समझना चाहते हैं तो पहले मिथ्या धारणाओ को मन से निकाल दीजिए। यदि कोई आपके सत्कर्मों का सम्मान नही करता तो आप समझ लीजिए कि उसके मन मे भी आपके प्रति कोई दुर्भावना है, जिसके कारण वह आपके रूप को नही देख पा रहा है। एक-दूसरे के निकट जाने के लिए ऐसी धारणाओ को निर्मूल करने की परम आवश्यकता होती है।

७. मनुष्य-मनुष्य में स्वाभाविक स्नेह या विद्वेष भी होता है। इसका यही अर्थ नही है कि यदि किसी से किसी के स्वभाव का मेल बैठता है तो वे परस्पर स्नेही होते हैं, नही मेल खाता तो द्वेषी हो जाते है। इसमे सत्यता है, चोर-चोर मौसेरे भाई कहे भी जाते है। पागल आदमी पागलो को देखकर आनन्दित होता है, सज्जन सज्जन को और सत्यवादी सत्यवादी को।

स्वाभाविक स्नेह और विद्वेष का एक गूढ रहस्य भी होता है ; उसको जान लेना चाहिए। मनुष्य के मस्तिष्क में विचारो की जो तरगे उठती हैं वे शरीर मे ही नही विलीन हो जाती ; वे मनुष्य के शरीर के चारो ओर के वायुमडल को आन्दोलित करती है। तरगो की यह क्रिया स्वाभाविक होती है। वे विचार-तरंगें निकट के अनुकूल विचारो को ग्रहण करती हैं और प्रतिकूल विचारो से टकराती है। उनका आघात मस्तिष्क पर पड़ता है। शरीर के चारों ओर यह सघर्ष वायुमडल में निरन्तर चलता है। मस्तिष्क में चुपचाप उसकी अनुभूति होती है। किसी पवित्र मन्दिर में जाने पर आपको जो शान्ति मिलती है, उसका एक कारण यह है कि वहा जो शुभ विचार वायुमडल मे तैरते रहते हैं, वे

आपके अनुकूल विचारो को और सबल कर देते है। कभी-कभी आपने अनुभव किया होगा कि किसी मकान या स्थान-विशेष मे जाने पर आपके मन मे अकारण विरक्ति या भय की भावना उठती है। उस जगह को आप मनहूस मानते है। इसका कारण यह है कि वह किसी समय दुष्टो का केन्द्र रहा होगा। वहा वही विचार अधिक समय तक फैले रहते हैं।

इसी प्रकार आपको इसका अनुभव भी हुआ होगा कि कभी-कभी किसी अपरिचित व्यक्ति से मिलते ही आपके मन मे उसके प्रति श्रद्धा-अनुराग के भाव उत्पन्न हो जाते है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति आपसे बार-बार मिलकर हर बार आपके समक्ष सुन्दर भाव प्रकट करता है, फिर भी आपके चित्त मे उसके प्रति अनायास अश्रद्धा और विरक्ति की भावना ही उत्पन्न होती है। ऐसे आदमियो की शक्ल से ही आपके मन मे चिढ पैदा होती है। ऐसा क्यो होता है ? इसका कारण भी वही है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। वह व्यक्ति आपके मुह पर मीठी बात करता होगा, पर उसके मन मे आपके प्रति निरन्तर दुर्भावनाए व्याप्त रहती होगी, जिनकी विद्युत्-तरगें आपकी विचार-तरगो से चुपचाप टकराती होगी। कोई हृदय से आपके साथ सहानुभूति रखता होगा तो उसकी तरंगें आपकी तरगो से मिलकर आपके मन को और भी चेतनावान् बना देती होगी। इसका यही वैज्ञानिक रहस्य है, जिसको आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक मानते हैं।

इस सम्बन्ध मे आधुनिक वैज्ञानिको ने एक और खोज की है। उनका कहना है कि हृदय मे जब किसी भाव की तीव्रता होती है, तो भिन्न-भिन्न प्रकार की गधें निकलती हैं। उन्हे हम नही जान पाते क्योकि मनुष्य की घ्राण-शक्ति सीमित है। ऐसे जीव-जन्तु, जिनकी सूघने की शक्ति तीव्र है, उनको शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं। भयभीत होने पर शरीर से एक दुर्गन्ध निकलती है। उसे अग्रेज़ी मे भय-गन्ध[1] कहते है।

---

1. Fear-Scent.

वह जानवरों को असह्य हो जाती है, इसमें सत्यता है। जो लोग रात मे बहुत बच-बचकर चलते है, उन्हे सांप-बिच्छू मिल ही जाते है। निडर लोग नगे पाव घूमते है, पर उनपर ऐसे जीव-जन्तु अनायास आक्रमण नही करते। आप डरते हुए गाय-बैल के पास जाइए तो वे भडकते है और मारने को दौड़ते है। आपका नौकर निडर होकर जाता है तो उनमे ऐसी कोई प्रतिक्रिया नही होती। इसकी परीक्षा आप स्वय कर सकते हैं। भय की दशा मे शरीर के दूषित पदार्थ बाहर निकलते है इसको तो आप मान ही लेंगे। प्रायः पसीना निकलता है और कभी-कभी मल-मूत्र भी। जब कोई गन्दी वस्तु बाहर निकलेगी तो निकटस्थ जीव को अप्रिय अवश्य लगेगी और वह उसका प्रतिकार भी करेगा।

यह कोई नई खोज नही है। ऋग्वेद के ऋषि इस रहस्य की खोज दूर तक कर चुके थे। उनका कथन है कि जब मनुष्य के चित्त मे कोई भावना बलवती होती है, तो उसके शरीर से उसी भावना से अनुप्राणित एक प्राणसूत्र निकलता है, जो समीप के वायुमण्डल मे व्याप्त हो जाता है। रात मे चोर को देखते ही कुत्ते भौकने लगते है। शीघ्र चेतन होने के कारण वे उस प्राण-सूत्र से प्रभावित हो जाते है। इसी प्रकार जब कौवे घर की छत पर या द्वार पर बोलते है तो लोग कहते है कि कोई अतिथि आने वाला है। अतिथि आए या न आए, ऋग्वेद के उक्त मत के अनुसार इसका यह रहस्य है कि किसी स्नेही का मन आप में लगा है, उसकी भावनाए आपकी ओर केन्द्रित है। कौवे उस प्रकार के वायु-व्याप्त प्राण-सूत्र से शीघ्र प्रभावित हो जाते है। वेद का कथन है कि जब मनुष्य चलता है तो उसकी पद-ध्वनि भी प्राण-सूत्र की विद्युत् से यथेष्ट काल तक अनुप्राणित रहती है। यही कारण है कि बहुत-से कुत्ते चोर को या उसके पद-चिह्नो को देखे बिना भी सवेरे जाकर दूर की किसी झाडी आदि को नखो से खोदने लगते है और वहा प्रायः चोरी का धन गडा मिल जाता है। चोर जिस दिशा मे गया हुआ रहता है, कुत्ते वहा की मिट्टी को सूघते हुए पहुच जाते है। इस विद्या की खोज अथर्वा ऋषि

ने खोई हुई गायो का पता लगाने के लिए की थी। इससे उन्ही के नाम पर इसको अथर्वा प्राण-सूत्र कहते है।

इस प्राण-सूत्र का विशेष महत्त्व है। निकट के प्राणी सद्भावनाओ और दुर्भावनाओ से भीतर ही भीतर प्रभावित होते है। प्राण की आकर्षण-शक्ति इसी पर अवलम्बित रहती है। कोई जनानुरागी व्यक्ति जब सामने आता है तो लोग उसके प्रति श्रद्धावश झुक जाते है। इसका कारण यही है कि उसका प्राण-सूत्र सबके प्राणो को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। एक-दूसरे के प्राण-सूत्र परस्पर बध जाते हैं। जो अपने को सबका बन्धु मानता है, उसके सभी बन्धुवत् ही हैं। इस प्राण-सूत्र का सम्बन्ध रक्त से भी होता है। महाभारत के अन्त मे युधिष्ठिर ने स्वीकार किया है कि जुए के समय जब कर्ण उनके प्रति कठोर से कठोर वाक्य कह रहा था तो उन्होने सिर उठाकर देखा। तत्काल ही उनके नेत्र कर्ण के प्रति श्रद्धावश झुक गए। वे उसके चरणों की ओर देखने लगे। तब वे यह न जानते थे कि कर्ण उनका सहोदर है। कोई आन्तरिक शक्ति ही उनके मन मे आत्मीयता जगाती थी। वह शक्ति 'अथर्वा-शक्ति' थी। ऐसा भी आप देखेंगे कि कभी-कभी लोग एकाएक घर लौट जाने को व्यग्र हो जाते है, उनके मन मे उच्चाटन हो जाता है, घर जाकर वे किसी आत्मीय को बीमार या सकटग्रस्त देखते हैं। रक्त रक्त को पुकारता है। किसी की माता बीमार होकर या आपदाग्रस्त होकर जब अपने पुत्र का ध्यान करती है तो उसका चित्त जल्दी प्रभावित हो जाता है। पत्नी की विचारधारा उतनी जल्दी नही दौडती। रक्त-सम्बन्ध की दृढता और मतैक्यता मे प्राण-सूत्र ही भीतरी सहायक होता है।

मन की भावनाओ का कितना प्रबल प्रभाव बाहर की वस्तुओं पर पड़ सकता है, इसको आप इन प्रत्यक्ष प्रमाणो से समझिए। कछुआ अपने अण्डों का पोषण स्वय नही करता। उन्हे वह तीर पर बालू मे गाड़ देता है, स्वयं जल-स्थित होकर दूर से ही उनपर अपना आन्तरिक प्रभाव डालता है। उस प्रभाव से वे बढते है। कछुए को हटा दीजिए

तो अण्डे निर्जीव हो जाएगे। कई प्रकार के सर्प ऐसे मिलते हैं जो शिकार के लिए कही नही जाते, वे एक जगह मुह खोलकर अपनी क्षुधा-भावना या इच्छा-शक्ति को तीव्र करते हैं। दूर के कीडे-मकोडे उनकी ओर आकर्षित होकर इस प्रकार चले जाते हैं जैसे चुम्बक की ओर लोहा। इसी प्रकार के और भी उदाहरण दिए जा सकते है।

साराश यह है कि विचारो की अनुकूलता-प्रतिकूलता से आकर्षण या उच्चाटन स्वाभाविक रीति से होता है। आपके विचार शुद्ध होगे तो शुद्ध विचारो के व्यक्ति आपकी ओर आकर्षित होगे। आपके हृदय में कालिमा होगी तो कलुषित विचारो के व्यक्ति बिना ढूढे आपको मिल जाएगे। चोर चोर को बहुत जल्दी पहचान लेता है। रिश्वत लेनेवाला अफसर रिश्वत देनेवाले को पहचानने मे प्रायः भूल नही करता।

इसके अतिरिक्त यह भी प्रमाणित है कि एक-दूसरे की आतरिक भावना से मनुष्य निरन्तर प्रेरित होता है। अतएव किसी विचार-सकट में पड़ने पर अपनी आत्मा को साक्षी मानना चाहिए। प्राचीन शास्त्रो का एक निश्चित मत यह भी है कि मनुष्य मे स्वाभाविक आकर्षण या विद्वेषण पूर्वजन्म के व्यवहारो के आधार पर होता है। पूर्व-जन्म के सस्कार आत्मा के साथ आते है। गाय का अबोध बच्चा पैदा होते ही अपनी मा की ओर आकर्षित होता है। हजारो गायो मे भी वह अपनी मा को पहचानकर उसी की ओर दौडेगा ; पैदा होते ही अज्ञात प्रेरणा से वह थन की ओर दौड़ता है। इन्ही सबको ध्यान मे रखकर शास्त्रकार पूर्वगत सस्कारो को मानते है। आप इसको मानें या न मानें, इतना तो स्वीकार करेंगे ही कि बहुत-सी प्रेरणाए मन में ऐसी उठती है जिनके कारण का पता नही चलता। वे प्रेरणाएं निकटवर्ती व्यक्ति की आन्तरिक प्रेरणाओ से प्रभावित होकर भी उठती है। एक की आत्मा दूसरे की आत्मा को शीघ्र पहचान लेती है। इन प्रेरणाओ की उपेक्षा आप बिना विचारे हुए न कीजिए। इनके आधार पर दूसरो के व्यक्तित्व की परीक्षा कीजिए।

८. किसी महापुरुष के व्यक्तित्व की परीक्षा तत्काल न कीजिए—किसी भी महापुरुष को उसके शरीर मे न ढूढिए। उसके व्यक्तित्व की आभा उसकी वाणी और उसके कर्म मे देखिए। वाणी, कर्म मे भी तत्काल नही, कुछ समय बाद उनके परिणाम या प्रभाव में देखिए। महापुरुष शरीर से हमारी ही तरह लौकिक होते हुए भी अलौकिक होते है। उनका मन अगाध होता है, उनकी वाणी गम्भीर होती है और उनके चरित्र विलक्षण प्रतीत होते है। इसलिए उनके मन की गहराई आप शीघ्र नही नाप सकते। उनका चित्त हर्ष-विषाद से शीघ्र आन्दोलित नही होता; अतएव चित्त के ये भाव भी उनकी आकृति मे लक्षित नही होते। उनका चित्त-सयम विशेष प्रबल होता है। उनकी वाणी मे गूढता होती है, अतएव उसका अर्थ उनके कर्म के साथ ही प्रकट होता है। उनके चरित्र का लक्ष्य-मार्ग लम्बा होता है। वे किसी दूर की वस्तु की प्राप्ति के लिए सतर्क होकर चलते हैं। सर्वसाधारण उस लक्ष्य को न देखकर उनकी गति-विधि पर सन्देह कर सकता है।

इस सम्बन्ध मे इन श्लोको को ध्यान मे रखिए :

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणा चेतासि को हि विज्ञातुमर्हति ॥ (भवभूति)

—उत्तम पुरुषो का हृदय वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल होता है। उसे जानने मे समर्थ कौन होता है?

सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।
उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा ॥ (पचतत्र)

—सम्पत्ति और विपत्ति में महात्माओ का एक रूप रहता है। सूर्य उदयकाल मे भी लाल रहता है, अस्तकाल मे भी।

चरित्र की गूढता को समझने के लिए आप महात्मा गांधी के जीवन का अध्ययन कीजिए। उनके बहुत-से कामो को पहले लोग उनकी अक्षम्य राजनीतिक भूलें समझते थे, पर कुछ दिनो बाद उनके सुन्दर परिणाम को देखकर गांधीजी की दूरदर्शिता की प्रशसा करते थे।

इन बातों को देखते हुए यही जान पड़ता है कि हम सत्पुरुषों को उनकी आकृति में नहीं बल्कि उनकी कृति में देखें। ईश्वर-दर्शन के विषय में गांधीजी कहते थे कि परमात्मा शरीर द्वारा नहीं, कर्म द्वारा प्रत्यक्ष होता है। यही बात उन महापुरुषों के लिए भी सत्य है जो ईश्वर के निकट पहुंचे हुए होते हैं।

छोटी बातों से ही किसीके बड़प्पन की परीक्षा होती है—मनुष्य साधारण बातो में या साधारण व्यक्तियों के साथ जैसा आचरण करता है उसीसे उसके स्वभाव के उन सूत्रों का पता चलता है जिनसे वह बना हुआ होता है। बड़े कामों या बड़े आदमियों के सामने तो सभी सावधान रहते है और अपने कृत्रिम स्वभाव का विज्ञापन करते हैं। छोटे कामों में या सर्वसाधारण के समक्ष वे अपने को बनाने की विशेष चेष्टा नहीं करते। अतः अपने वास्तविक रूप में खुल जाते हैं। बडो के सामने कोई विनम्रतापूर्वक बातें करता हो तो उसको स्वभाव से विनम्र या मृदुभाषी न मान लीजिए। यह देखिए कि अपने से छोटे के सामने जाते ही वह ऐंठने और कण्ठ-व्यायाम तो नहीं करने लगता। विशेष अवसर पर प्रदर्शित आचरण से नही, बल्कि दैनिक आचरण से मनुष्य के जीवन-क्रम का पता चलता है।

किसी की अंग-चेष्टा को पढ़ते समय भी उसके सूक्ष्म स्थानों को देखने से अधिक ज्ञान हो सकता है। प्रेम, भय आदि के आक्रमण से रोम खड़े मिल सकते हैं। सिर के बाल तो उनकी अन्तिम दशा में ही खड़े होंगे।

इसी प्रकार समाज की दशा जनसाधारण की दशा को देखकर जानी जाती है। भारत में बड़े-बड़े धनकुबेर हैं, पर उनके कारण हम सारे देश को सम्पन्न नहीं कह सकते। सम्पन्न तो तब कहेंगे जब जन-साधारण की आर्थिक स्थिति भी सन्तोषजनक हो।

इस बात को कभी न भूलिए कि हवा के रुख का पता छोटे-छोटे तिनकों, धूलिकणों और पेड़ की पत्तियों से लगता है। लकड़ी के कुन्दो, पर्वत की चट्टानों और पेड़ के तनों से आप पता नही लगा सकते कि हवा

किधर को जा रही है। किसी व्यक्ति, किसी समाज अथवा किसी वस्तु की स्वाभाविक गति किधर को है, इसका पता उसके साधारण लक्षणों से ही लग सकता है। उसको पहले साधारण स्थिति मे देखिए और उसके बाद असाधारण स्थिति मे देखकर इसका पता लगाइए कि उसमें कितने असाधारण गुण भी है। इन सबको ध्यान में रखकर मनुष्य को पहचानने का प्रयत्न कीजिए।

मनुष्य-परीक्षा के ढंग

मनुष्य-परीक्षा के कई ढंग पहले भी प्रचलित थे, अब भी प्रचलित हैं। विद्या और ज्ञान-सम्बन्धी परीक्षाओ के अतिरिक्त मनुष्य के गुण-स्वभाव, आचार-विचार की परीक्षा भी आदिकाल से होती आ रही है। यही नही, पहले तो चरित्र की जाच के लिए अग्नि-परीक्षा जैसी कठिन परीक्षा होती थी। मानव के अग-प्रत्यग आदि की परीक्षा के सम्बन्ध मे हम इससे पूर्ववाले अध्याय मे विशेप रूप से लिख चुके हैं।

इस युग मे भी स्कूली परीक्षाओ के अतिरिक्त कई अन्य ढंगो से भी परीक्षाए होती हैं। अब तो मनुष्य की विचार-तरगो को जाचने के वैज्ञानिक यत्र भी निकल गए है। पाश्चात्त्य देशो में, मुख्यतः अमरीका मे बुद्धि-परीक्षा[1] तथा विचार-अध्ययन[2] आदि नामो से बुद्धि-परीक्षा की कई प्रणालियां आजकल प्रचलित है। कई प्रकार के प्रश्नो के उत्तर लेकर लोग व्यक्ति-विशेप की प्रतिभा, योग्यता अथवा विचारधारा की थाह लगाते है। मनोवैज्ञानिक जगत् में अवसर-विशेप पर मनुष्य के व्यवहार की क्रिया-प्रतिक्रिया देखकर विशेपज्ञ लोग उसकी चित्त-दशा अथवा उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को नापते है।

ये सब विधिया विदेशियो के लिए आधुनिक हो सकती हैं; भारतवासियो के लिए प्राचीन ही हैं। महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से जो प्रश्न पूछे थे वे सब बुद्धिमापक प्रश्न ही थे। राम ने भरत से चित्रकूट में

1. Brain Test, Intelligence Test.
2. Thought-Reading.

बहुत-से प्रश्न उनके चरित्र और उनकी क्रिया-प्रणाली को समझने के लिए किए थे। उनमे से कुछ अनुवादित रूप मे ये हैं :

'—कभी सध्या-आगमन के समय सोते तो नही हो ?...प्रहर-भर रात्रि रहे जगकर कार्य-सिद्धि के उपाय पर विचार करते हो ?...अल्प व्यय से किसी महत्त्वपूर्ण कार्य की सिद्धि होने का निश्चय करके उसको शीघ्र प्रारम्भ तो कर देते हो ?...तुम्हारे विना कहे अन्य लोग तुम्हारे अभिप्राय. को भांप तो नही लेते ? सहस्रों मूर्खों की अपेक्षा एक पण्डित को निकट रखने की इच्छा रखते हो कि नही ? क्या अपनी स्त्रियो को समझाते रहते हो ? उनकी बातो का विश्वास तो नही करते ? अपने मन की गुप्त बातें तो उनसे नही कह देते ?...तुम्हारे सब कर्मचारी नि·शक होकर जब चाहें तब तुम्हारे पास तो नही चले आते अथवा भय से तुमसे बहुत दूर तो नही भागे फिरते ? तुम्हारी आमदनी से तुम्हारा खर्च कम है कि नही ?...क्या तुम्हारा वेदाध्ययन और तुम्हारे कर्म सफल होते है ?'

इस प्रश्नावली का उल्लेख हमने इसलिए विशेष रूप से कर दिया है कि आप इसपर भी विचार कर लें कि राम जैसे बुद्धिमान् महापुरुष किसी मनुष्य की सफलता के लिए उसमें किन-किन गुणो का होना आवश्यक समझते थे। रामायण, महाभारत मे ऐसे अनेक प्रसग है। उन ग्रन्थो की रचना का एक प्रयोजन ही यह ज्ञात होता है कि लोग भिन्न-भिन्न परिस्थिति मे भिन्न-भिन्न योग्यता और स्वभाव के मनुष्यों के आचरण देखकर तथा उनके आचरणो के परिणाम देखकर मनुष्य-जीवन के रहस्यो से परिचित हो जाए। प्राचीन शास्त्रो में इन्द्र और धर्म आदि प्राय. मनुष्य की परीक्षा ही लेते घूमते थे। इनको विशुद्ध रूपक मानकर आप इस बात को समझ सकते हैं कि किन-किन बातो के आधार पर तथा किन स्थलो पर मनुष्य की परीक्षा होती है। हमारे नीतिशास्त्र मुख्यत. मनुष्य को पहचानने के लिए लिखे गए हैं। अतएव मनुष्य-सम्बन्धी ज्ञान की प्राप्ति के लिए उन ग्रन्थो का आश्रय लेना चाहिए।

आजकल किसी को उसकी लिखावट से भी पहचानने की विद्या चल पड़ी है। वैज्ञानिकों का कहना है कि जब हम लिखने बैठते है तो शरीर की पांच सौ छोटी-छोटी नसें सयुक्त हो जाती है। ऐसी स्थिति मे अवश्य ही अक्षरो की बनावट पर हमारे स्वभाव का प्रतिबिम्ब पड़ता होगा। एक बात तो स्पष्ट है कि जिसका चित्त स्थिर होता है उसके अक्षर सुडौल, नपे-तुले रहते हैं। घबराए व्यक्ति के अक्षर असम और टूटे-फूटे-से रहते हैं। कागज़ी जालसाज़ी को पकड़नेवाले विशेषज्ञ अक्षरों की बनावट देखकर ही निर्णय करते हैं। नकली कागज़ बनानेवाले या हस्ताक्षर करनेवाले का हाथ उस सफाई से नही चलता जैसा सही-सही लिखनेवाले का चलता है। उसके अक्षरो मे कम्पन की लहर स्पष्ट दिखलाई पडती है। वह डरता हुआ और बना-बनाकर लिखता है, इससे अक्षरो में कृत्रिमता आ ही जाती है। यह विषय बहुत विस्तृत और जटिल है। इसपर जानकारी के लिए अंग्रेज़ी मे आप कई ग्रन्थ पा सकते है।

परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने एक और मनोरजक प्रणाली निकाली है। वे आपसे अपना ही रेखाचित्र बनाने को कहते हैं। आप अपने को जैसा समझते हैं, वैसी आकृति जिस तरह भी बना सकते हैं, बनाइए। चित्रकला का कौशल दिखलाने की आवश्यकता नही। टेढ़ा-मेढा जैसा भी बने, आप अपना रूप बनाते जाइए। आप जो कुछ बनाएगे उसपर आपके व्यक्तित्व की कुछ न कुछ छाप अवश्य होगी। उसी के आधार पर भी मानव-शास्त्र के पण्डितगण आपके स्वभाव के छिपे हुए रहस्यो को पढ़ते हैं। उनका कहना है कि आपका अन्तर्मन अपने स्वभावानुकूल आपके हाथो को चलाता है। उन चित्रो से पता चलता है कि आपके भीतर अपने प्रति क्या विचार हैं, या वास्तव मे भीतर से आपकी बनावट कैसी है?

इस विषय पर अमरीका की एक प्रसिद्ध पत्रिका[1] में एक विद्वान[2] का

---

1. Maclean's Magazine, January 1, 1948.
2 George Kisker.

एक उपयोगी लेख है। उसके अनुसार पहले आपको अपना वैसा चित्र बनाना पड़ता है जैसा आप अपने को तत्काल समझते हैं। उसके उपरांत दूसरे कागज़ पर मनोवैज्ञानिक आपसे आपका वैसा चित्र बनाने को कहता है जैसा होने की आपके मन में आकाक्षा रहती है। इसके बाद मानस-हस नीर-क्षीर-विवेक करता है। वह मुख्यत. इन बातो के आधार पर परीक्षा करता है :

१. जो स्वस्थचित्त और सरल होते है वे कैसा भी चित्र बनाए, कम से कम अपने को मनुष्य जैसा बनाते है और उसमे बुद्धि का कौशल नही दिखलाते है, अथवा जिन अगो को सुन्दर मानते हैं उनको बढा-चढा-कर दिखलाते है, अथवा जिन अगो को दुर्बल समझते हैं उनको मोटी रेखाओ आदि से सजीव बनाने का प्रयत्न करते है। प्रबल भावुक और मन से क्षुब्ध लोग अपनी आकृति पशु जैसी बना डालते हैं।

२. दुर्बल चित्तवाले, जड़मति और बाल-बुद्धिवाले लोग पहले एक गोला बनाते है, उसमें नाक-मुह आदि चित्रित करते हैं, फिर उसी गोले के आधार पर इधर-उधर रेखाए खीचकर हाथ-पैर लटका देते है। अस्पताल मे मस्तिष्क की दुर्बलता के रोगी और नादान बच्चे अपना चित्राकन इसी प्रकार करते है।

३. सकोची, शकाकुल और कायर स्वभाववाले बहुत सोच-सोचकर हल्की, टूटी-फूटी या लहरदार लकीरें खीचते हैं। उत्तेजित स्वभाव वाले, अहकारी तथा महत्त्वाकांक्षी लोग बडी गहरी लकीरों से अपना चित्र अकित करते हैं। दुस्साहसी तथा निर्भीक व्यक्ति जल्दी से जल्दी चित्र बना डालता है। दीर्घसूत्री, आवश्यकता से अधिक चौकन्ना रहनेवाला प्रत्येक कार्य को सागोपाग पूर्ण करने का अभ्यासी बड़ा समय लेता है।

४. अपने को सर्वश्रेष्ठ समझनेवाला व्यक्ति अपने वास्तविक रूप से अपने चित्र-रूप को विशेष सुन्दर बनाता है। उसकी गर्दन चाहे झुकी हो, पर चित्र में तनी हुई दिखाएगा क्योकि अहकारवश वह उसको वैसी

ही समझना होगा। नाटे आदमी अपना रूप प्रायः लम्बा चित्रित करते हैं। इससे उनकी मनोवृत्ति का पता चलता है। अतृप्त आदमी प्रायः अपने वास्तविक चित्र मे अपने को दुर्बल और कल्पित चित्र में मोटा बनाता है। इससे पता चल जाता है कि उत्तम भोजन, पर्याप्त धन, सुख की प्रबल आकांक्षा उसके मन में है।

५. खिलाडी मनोवृत्ति के लोग अपने हाथ या पैर को विशेष महत्त्व-पूर्ण चित्रित करते है; अपने को विद्वान माननेवाले ललाट को, रसिक लोग आंखो को, आत्महत्या की मनोवृत्तिवाले अथवा जीवन से विरक्त लोग अपने को सचमुच भूत जैसा चित्रित करते हैं।

ऐसे ही अन्य लक्षणो से विशेषज्ञ लोग मनुष्य की अन्तर्दशा को समझने का प्रयास करते है। अमरीका और कनाडा के प्रत्येक अस्पताल मे इस प्रणाली का व्यवहार आजकल किया जाता है। वहा की जेलो मे भी अपराधियो की मनोदशा को समझने के लिए इस प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। बडी-बडी कम्पनियो मे वे लोग इसका प्रयोग करते हैं; और पति-पत्नी के झगडो मे भी इसके सहारे उनके अन्तर्मन मे छिपी हुई भावना का पता लगाते हैं।

इन बातों से परीक्षा कीजिए

सर्वसाधारण के लिए उक्त प्रयोग झंझटी है। दैनिक जीवन में हम किन लक्षणों से किसको कैसा समझते हैं, इसपर अब विचार कीजिए। प्रायः वाणी, मुख-मुद्रा, अंग-चेष्टा और व्यवहार से ही लोगों के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। इन सबमें वाणी का स्थान प्रमुख है। 'नारद पंचरात्र' नामक एक प्राचीन ग्रंथ में सत्य ही लिखा है कि मनुष्य के सभी कर्मों का मूल मन है; मन के अनुसार ही वाणी निकलती है और वाणी से ही मन का रहस्य खुलता है :

> मानसं प्राणिनामेव सर्वकर्मैककारणम्।
> मनोनुरूपं वाक्यं च वाक्येन प्रस्फुटं मनः॥

वास्तव मे, मन के सहयोग से ही शब्दोच्चारण होता है। पाणिनि

ने लिखा है कि जब मन शरीराग्नि को उत्तेजित करता है तो वह वायु को प्रेरित करती है; तदनन्तर वही वायु छाती में प्रविष्ट होकर स्वर उत्पन्न करती है :

मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्दं जनयति स्वरम् ॥

वाणी-मन का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार शरीर की ७८ छोटी-बडी नसें जब एक-दूसरे से सम्बद्ध होती हैं तब जाकर एक शब्द मुख से निकलता है। ऐसी दशा में अवश्य ही वाणी से कंठ की नहीं, शरीर के एक बडे भाग की क्रिया-शक्ति व्यजित होती है। पर यह मानना पड़ेगा कि वाणी द्वारा ही किसी का सर्वस्व नही प्रकट होता। मनुष्य अन्यमनस्क भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त चतुर लोग शब्दों मे, उनकी ध्वनि में वनावट भी करते हैं। अत. व्यवहार-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित चेस्टरफील्ड का मत है कि किसी से मिलने पर उसके शब्दो पर ही ध्यान न दो, वल्कि उसकी आकृति से भी उसके मनोभावो को तोड़ो। इससे भी वुद्धिमत्तापूर्ण उपदेश राम का है। राम ने लका से लौटते समय हनुमान को पहले ही भरत के पास यह कहकर भेज दिया था कि मुख के वर्ण से, दृष्टि से और बातों से भरत के मन का सारा रहस्य जानने का प्रयत्न करना :

ज्ञेयाः सर्वे च वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च।
तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्या व्याभाषितेन च ॥ (रामायण)

अब इनमें से एक-एक पर विचार कीजिए और देखिए कि किस प्रकार इनके द्वारा मनुष्य अपने को व्यक्त करता है।

१. वाणी—अवसर के अनुकूल, सार्थक, स्पष्ट, सरल, हितकारी, तर्कसम्मत, विषयानुकूल शुद्ध शब्दावली से मनुष्य की श्रेष्ठता और बुद्धिमत्ता तथा सज्जनता प्रकट हो ही जाती है। इनके अतिरिक्त कौन किस विषय पर कितनी मौलिकता के साथ वोलता है, कैसे स्वर मे वोलता है और कहां तक अपने भावों की पुष्टि कर सकता है, इससे भी मनुष्य

की गहराई का पता चलता है। शब्दो से किस प्रकार की विचारधारा व्यक्त होती है और उसके अनुकूल कहा तक बोलनेवाले की आकृति में साम्य रहता है, इससे भी मनुष्य की भीतरी सचाई का, बनावट का पता चलता है।

चतुर आदमी समयानुसार श्रोता के स्वभाव, परिस्थिति को ध्यान मे रखकर मुख्य विषय को आगे रखकर बोलता है। मूर्ख का प्रधान लक्षण यह है कि सब भूलकर बेमौके बोलता है। जो सार्थक, सुबोध और सयत भाषा मे बोलता है, वह बुद्धिमान गिना जाता है। जो निरर्थक, अस्पष्ट और विशृंखल भाषा का व्यवहार करता है, वह प्रलापी, धूर्त, मूर्ख और अविवेकी माना जाता है। तर्कसम्मत वाणी का व्यवहार करनेवाला सज्जन, क्रियाकुशल, प्रतिभाशाली और शिष्ट होता है। तर्कहीन बोलनेवाला दभी, जड़मति, असत्यवादी, छली और दुराग्रही होता है। जो सद्भावना लेकर बातें करता है वह किसी निर्णय पर शीघ्र पहुंच जाता है। दुर्भावनावाले बात मे गाठ पर गांठ बाधते चलते है।

बुद्धिमान् पुरुष गभीर विषयो में और गभीर स्वर में और गंभीर आकृति से बात करता है। सज्जन और सरस प्रकृति के लोग सामयिक विषयो पर मधुर स्वर में और सरल आकृति से बात करते हैं। दभी और दुर्विनीत व्यक्ति अपने विषय में उत्तेजनात्मक स्वर मे, दूसरो के विषय में कर्कश स्वर में अपनी आकृति को विकृत करके तब बोलता है। धूर्तो का विषय परनिन्दा, स्वर बहुत दबा हुआ और चेहरा परम रहस्यमय होता है। विशेष विवरण आगे के लक्षणो से जानिए।

बुद्धिमान् व्यक्ति एक-एक शब्द को तोलकर बोलता है। वह एक बार मे एक ही विषय पर बात करता है, जमकर बात करता है और कोमल शब्द किन्तु अकाट्य तर्क प्रस्तुत करता है। उसके विचारों मे क्रमबद्धता, स्वर में दृढता और भावो में गंभीरता होती है। अनावश्यक विषयो की चर्चा मे वह प्रायः नही पडता और काम की बातें करता है। वह अपने मौलिक विचार आकर्षक ढंग से व्यक्त करता है और एक ही

वात को वार-वार नही घोटता। स्वयं कुछ कहकर वह दूसरो को भी कुछ कहने का अवसर देता है। बातचीत के समय उसकी आकृति में घबराहट के चिह्न नही दिखलाई पड़ते क्योकि उसमें आत्म-विश्वास रहता है।

सज्जन व्यक्ति कम बोलता है, जो बोलता है विनम्रतापूर्वक बोलता है। वातचीत मे वह परनिन्दा, परस्त्री-चर्चा, आत्मप्रशसा और उपहासजनक विषयो से विरक्त रहता है। उसकी आकृति मे सौम्यता रहती है। उसका स्वर गभीर किन्तु मृदु होता है। सज्जन की सज्जनता उसकी साधुवाणी से ही झलक उठती है।

मनस्वी मनुष्य की वाणी मे गभीरता रहती है, किन्तु कर्कशता नही। वह ठनकती हुई निकलती है। मनस्वी व्यक्ति निश्चित विषयो पर निश्चयात्मक बुद्धि से और ओजमयी भाषा में बोलता है। प्रायः वह भविष्य-सम्बन्धी किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के विषय मे वातचीत करता है। वोलते समय उसके मन का सारा तेज उसकी आकृति में रहता है। उसकी वातचीत और आकृति दोनो से स्वाभिमान टपकता है।

सरल स्वभाव व्यक्ति प्राय: सामयिक विषयो की चर्चा करता है। हास्य-विनोद और व्यग्य के साथ बात करता है तथा सरल भाषा का व्यवहार करता है। वह लच्छेदार बोली कम पसन्द करता है।

रसिक स्वभाव का व्यक्ति सरल और काव्यमय भाषा मे प्रायः सरस विषयो पर बातें करता है, और जब बात करता है तो उसकी आकृति पर उसकी आन्तरिक मुग्धता, विह्वलता और भावुकता रहती है। उसके मुख से छलकती हुई वाणी निकलती है। वह प्रायः चुटकिया लेते हुए बातें करता है।

चतुर आदमी जिससे मिलता है पहले उसी के अनुकूल बातें करता है। कोई मनोरजक विषय छेड़कर उसी को अधिक वोलने का अवसर देता है और स्वय उसकी बातो का समर्थन करता है। उसके विचारो को अच्छी तरह जानकर तब उन्ही का भाष्य करता है। इस प्रकार एक वार

में या कई वार मे किसी को रिझाकर तव अवसर के अनुसार प्रयोजन की वात करता है ।

धूर्त वड़ा वातूनी होता है : 'वहुवक्ता भवति धूर्तजन ' (कौटिल्य) । 'कही की ईंट कही का रोडा' लेकर वह भानुमती का कुनवा तैयार कर देता है । उसकी भापा अतिरजित होती है । दृष्टान्त से भरी हुई, वादो से लदी हुई और विचारोत्तेजक वाणी द्वारा वह एक ही विपय पर कई तरह से वातें करता है । तर्क-वितर्क से वह घवराता है और श्रोता को किसी स्थल पर प्रभावित करके धारा प्रवाह वोलने लगता है । कही पकड़ मे आने पर मुख्य विपय से जान छुडाकर इधर-उधर की वातें करता है । ऐसा व्यक्ति वातचीत मे वहुत देर तक नही अडता । प्राय. वह अपनी ही वातो को खण्डित करता चलता है । वार्तालाप में वह चमत्कार-पूर्ण घटनाओ का उल्लेख अवश्य करता है, और अपने अनुभवो की विशेप चर्चा करता है तथा दूसरो पर अपने कल्पित उपकारो का दिल खोलकर वर्णन करता है । वह ऐसी ही वातें करता है जिससे सुननेवाले उसको अपना शुभचिन्तक, सज्जनो का शिरोमणि और दुर्जनो का काल समझें । सभी वडे कार्यों का श्रेय वह स्वय लेना चाहता है ।

मूर्ख तो अपनी वाणी से तत्काल खुल जाते है । इसीलिए शास्त्र-कारो ने मूर्खों को मौन रहने का उपदेश किया है । सर्वप्रथम तो मूर्ख अशुद्ध भापा वोलता है और जो वोलता है उसको भी कर्कश स्वर मे । वोलते-वोलते वह वातो का क्रम भूल जाता है और किसी अन्य दिशा की ओर वह निकलता है । उससे कोई वात छेड दीजिए तो वह चुप हो जाता है या 'जी हा' करने लगता है । वातें सुनते-सुनते 'तव, तव' या 'तव क्या हुआ' ही कहता है और समझता कुछ नही । प्राय. वह दो-चार वाक्य स्वय वोलकर वार-वार श्रोता से पूछ लेता है—'क्या समझे ?' और रह-रहकर भौचक्का रह जाता है, हकलाने लगता है या अकारण अपनी वात से गद्गद हो जाता है अथवा अट्टहास करने लगता है अधिकतर एक ही विपय पर वह हमेशा वात करता है और वातो का

कवध खड़ा करके उसी को नचाता है।

पीड़ित व्यक्ति के सम्बन्ध में तुलसी की यह उक्ति ही पर्याप्त है :

आरत के हित रहत न चेतू।
पुनि पुनि कहत आपनी हेतू।। (मानस)

चाटुकार आवश्यकता से अधिक विनीत और लच्छेदार वाणी बोलता है। प्रायः वह अपना अस्तित्व मिटाकर बात करता है, अर्थात् स्वाभिमानगत होकर दूसरो की बनावटी प्रशसा करता है। वह सदा हां में हा मिलाता है; 'बहुत अच्छा', 'हमारी जान आपके लिए हाजिर है', 'हमारे रहते आपका बालबाका न हो सकेगा' आदि अनेक प्रकार की बनावटी शब्दमाला का व्यवहार करता है। प्रायः वह दबी ज़बान से ही बात करता है और शकल से खोया हुआ या आपकी सेवा के लिए उतावला-सा प्रतीत होता है। 'छोटा मुह बड़ी बात' की उक्ति को वह पद-पद पर चरितार्थ करता है।

विश्वासघाती की बातो मे चाटुकारिता होती है, साथ ही साथ आत्म-विज्ञापन भी होता है। वह बार-बार शपथ खाता है, सत्य-भगवान् की दुहाई देता है और अकारण अधिक स्नेह दिखाकर रहस्मयी बाते सुनाता है और कहता जाता है कि किसी से कहिएगा नही, हम आपसे ही कह रहे है। घुमा-फिराकर वह आपका भेद जानने के लिए तरह-तरह की बातें करता है। प्रायः वह धीरे-धीरे आश्चर्य प्रकट करता हुआ और सवेदना प्रकट करता हुआ बात करता है। बात की लम्बी-लम्बी भुजाए फैलाकर दूसरो के दिल टटोलता है।

वचनवीर बडी लम्बी-चौड़ी बातें करता है। ऐसे आदमी को गप्पी कहते है। उसकी बातो का अन्त नही दिखाई देता। 'हमने यह किया, हमने वह किया' के अतिरिक्त वह और कुछ बहुत कम जानता है। अपने किस्से खतम हो जाते है तो अपने बाप-दादो के मनगढत किस्से सुनाता है। वह भी खत्म हो जाते हैं तो राजा बीरबल आदि के चुटकुले ही सुनाता है। बात-बात मे वह शूरवीरता दिखलाता है, गरजता है और उफनता है।

धमकिया देने का वह आदी होता है, पर उसको जरा-सा डांट दीजिए तो पिछड़ जाता है और बातें बनाकर कहता है कि मेरा मतलव यह नहीं, यह था। काम की वात वह एक भी नही कर सकता, क्योकि जो बहुत वोलता है उसकी विचारशक्ति क्षीण होती है और उसको किसी वात पर मनन करने का कभी अवकाश नही मिलता।

निर्वल व्यक्ति भी वहुत वक-वक करता है। वृद्धावस्था मे भी आदमी बहुत इसलिए वोलता है कि उसकी अन्य सभी इन्द्रिया अशक्त हो जाती हैं, इसलिए वह वाणी-वल के सहारे ही अपनी पूर्वशक्ति को विज्ञापित करता है और अपनी तात्कालिक उपयोगिता को सिद्ध करने की स्वाभाविक चेष्टा करता है। जो बहुत बोलता है, वह अवश्य भीरु, अस्थिर, अशक्त और अकर्मण्य होता है। क्रियावान् प्राणी सदैव मितभाषी होंगे।

नीच का मुह तरकश की तरह वचन-वाणो से भरा रहता है। नीतिकारों ने उसकी तुलना साप के विल से की है। नीच व्यक्ति दुर्मुख, गला फाडकर वोलनेवाला, असहनशील और कटुभाषी होता है। उसकी काक-वृत्ति नही छिपती। वह परनिन्दा को अपनी बातचीत का विषय वनाता है। अन्य प्रकार की वातो में किंकर्त्तव्यविमूढ हो जाता है। प्रायः वह उलझनेवाली बातें करता है और अधिक देर तक प्रलाप करता है। अपशब्द उसको कण्ठस्थ रहते है। उपहास करने मे वह कृतवुद्धि होता है। जहा उसका स्वार्थ होता है वहा वह वड़ा मधुरभाषी भी वन जाता है: 'व्याधा मृगवध कर्तुं सदा गायन्ति सुस्वरम्' (व्यास)—हिरन का शिकार करते समय वहेलिया वड़े मीठे स्वर में गाता है।

२ व्यवहार—वातचीत से भी अधिक मनुष्य अपने व्यवहार से अपने को व्यक्त करता है। सज्जन पुरुष प्रत्येक परिस्थिति में मर्यादा का पालन करता हुआ देखा जाता है, और दुर्जन प्राय· मर्यादा का उल्लघन कर देता है। सभ्य मनुष्य छोटी से छोटी वात मे भी शिष्टाचार, शील तथा सौजन्य का ध्यान रखता है। असभ्य व्यक्ति के सम्वन्ध में इन्ही शब्दो के आदि में 'अ' जोड़कर समझ लीजिए।

३. मुख-मुद्रा और अग-चेष्टा—जैसाकि हम कह चुके हैं, मनुष्य की आकृति मे उसके मनोभाव तत्काल अकित हो जाते है। वाणी-व्यवहार मे आसानी से बनावट हो सकती है, पर आकृति में भाव-परिवर्तन करना सहज नही होता।

भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियो की स्वाभाविक चेष्टाए किस प्रकार की होती हैं, इसपर सक्षेप मे कुछ जान लीजिए।

स्थिर स्वभाव का व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति में स्थिर रहता है। परिस्थितियो और बातचीत के झोके से वह कम हिलता-डुलता है। विपरीत परिस्थिति मे वह और भी दृढ़ हो जाता है। उसकी इन्द्रियो मे किसी प्रकार की विकलता और आकृति में तनिक भी विवर्णता दिखलाई नही पड़ती। गीता में कहा है कि जिसकी इन्द्रियां उसके वश मे है, उसकी बुद्धि स्थिर है: 'वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।' धैर्यवान् और बुद्धिमान् सदा स्थिर ही मिलेगा। ऐसा व्यक्ति पुरुषार्थी, समाज का रक्षक, सज्जनो का पालक और परम विश्वासपात्र होता है।

अस्थिर चित्त का व्यक्ति अनेक रग बदलता है, अग-अग से छटपटाता रहता है और तरह-तरह की शारीरिक चेष्टाए दिखलाता है। उसकी आखो पर दृष्टि डालिए तो आखें अस्थिर दिखलाई पड़ेंगी। साधारण बातो से कभी उसका चेहरा दमक उठेगा, कभी सूख जाएगा, कभी सफेद पड जाएगा। प्रायः बातचीत करते समय उसके पैर मशीन पर काम करनेवाले दर्जी के पैर की तरह हिलने लगते है; हाथ बार-बार मुह पर चले जाते है; सामने यदि मेज हो तो वह उसकी चीजो को उलटने लगता है या दांत से अपने नाखून काटने लगता है।

अपराधी आदमी की आखें झुकी रहती है। आंखे नीची करके वह नीचे ही नीचे इधर-उधर देखता है, पर सामने नही देखता। वह आख से आख मिलाकर बात नही कर सकता। प्रायः हरएक बात दबी ज़बान से करता है। उसको कही बैठने में परेशानी-सी लगती है। उसका मुह कुछ मैला-सा लगता है, कान लाल और चेहरा शैतान जैसा। उसकी

आकृति मे विशेष मलिनता रहती है और मस्तिष्क खिचा हुआ-सा। उसके मन मे पकडे जाने का भय सदा रहता है। इसलिए वह दूर पर होती हुई बातों को भी कान लगाकर सुनता है और एक-एक आदमी को भेद-भरी दृष्टि से देखता है। उसके हाथ-पैर प्राय कापते हैं।

अहकारी व्यक्ति दायें-बायें बहुत घूमकर देखता है, सामने कम। उसकी आखें चढी ही मिलती हैं। छाती आवश्यकता से अधिक तनी हुई और भौंहे वक्र रहती हैं। प्राय. वह हाथ पटक-पटककर बातें करता है। बात-बात मे उसके अग फडकते रहते हैं, गर्दन उचकती है और मस्तक रेखांकित हो जाता है। उसके दातो की एक पंक्ति एक-दूसरे पर बैठ जाती है और गहरी सास लेता है। अहकारी और क्रोधी हाथ-पैर सब पटकने के बाद लपकता हुआ-सा विशेष चचल दिखलाई पड़ता है अथवा विवश होने पर अपना ही सिर पीटने लगता है। वह किसी सभ्य व्यक्ति से मिलने जाएगा तो कुर्सी को खीचकर धडधडाकर बैठेगा और चलते समय मित्र से भी हाथ मिलाते समय उसको इतने जोर से झटकेगा कि उसका अग-अग झटक उठेगा।

भयभीत आदमी हक्का-बक्का-सा रहता है और उसके रोम-रोम हिलते हुए दिखाई देते है। शास्त्र में लिखा है कि जिसका मन भय-सत्रस्त रहता है, उसके हाथ-पैर आदि निश्चेष्ट हो जाते है, मुख से वचन नहीं निकलते और शरीर मे कम्पन अधिक होता है :

भयसत्रस्तमनसा हस्तपादादयोऽक्रियाः।
प्रवर्त्तते न वाणी च वेपथुश्चाधिको भवेत्॥

वह रह-रहकर चौंकता है, बिना परिश्रम के भी पसीने से भीगा रहता है। प्राय. वह बातो के बीच मे या तो चुप हो जाता है या हक-लाने लगता है। उसके चेहरे का रंग तो बिलकुल उड ही जाता है, शरीर के अग सिमटने लगते हैं, आखें निस्तेज हो जाती हैं, बाल या तो कापते हैं या खड़े हो जाते हैं। आकृति से वह पिघलते हुए बर्फ जैसा लगता

है। हरएक चीज को वह आखें फाड-फाड़कर देखता है। उसका दिल धड़कता है, आंख फडकती है और दृष्टि भड़कती है।

जिसका हृदय पीड़ित होता है उसकी क्रियाए शिथिल होती हैं; मुख-मण्डल मुरझाया रहता है, हाथ-पैर भी निश्चेष्ट-से रहते है और वह जिधर भी देखता है, झुकी आख से, पर एकटक देखता है। उसके स्वर मे भर्राहट रहती है और चेहरे पर बल पड़ जाता है। उसकी प्रत्येक क्रिया मे उद्विग्नता रहती है।

सतुष्ट एव स्वस्थ व्यक्ति का अग-अंग मुस्कराता है। उसका प्रत्येक अंग निकला हुआ और विशेष सचेत रहता है। उसमे स्फूर्ति दिखलाई पड़ती है, चेहरे पर शान्ति दिखलाई पड़ती है। प्रायः वह अपने अंगो का सकोचन कम करता है।

घबराया हुआ या किंकर्तव्यविमूढ व्यक्ति बार-बार जम्हाई लेता है या छीकता है, बात करते-करते नाक खोदने लगता है या सिर खुजलाने लगता है और पैर की उंगलियों से जमीन को खरोचने लगता है। उसके कान उठ जाते है, आखें आकाश-विहार करने लगती हैं और अंग-प्रत्यग कभी आगे, कभी पीछे को चलते हैं। मुह तो खुला हुआ रहता ही है।

उन्मादी मनुष्य यों तो उछल-कूद मचाता ही है, पर रात्रि में और विशेषकर चादनी रात मे विशेष चेष्टाए करता है। यह एक परीक्षित वैज्ञानिक सत्य है कि चन्द्र-किरणो से मस्तिष्क-रोगी का उन्माद बढ जाता है। पागलखानो में देखा गया है कि सन्ध्या तक पागल लोग कुछ ठीक रहते हैं, पर चन्द्रोदय के साथ ही उनकी उन्माद-तरगें सागर-लहरो की तरह उमडती हैं। पूर्णिमा की रात्रि में तो पागल लोग उन्मत्त सागर की तरह उछलते-कूदते और नाचते हैं। अतएव किसी मानसोन्मादी, भावोन्मादी या मेघोन्मादी की परीक्षा रात्रि मे अच्छी हो सकती है। रात्रि मे साधारण मनुष्य की भावनाए भी तीव्र हो जाती है।

पुरुषार्थी और आत्मविश्वासी व्यक्ति अचंचल रहता है और आदि से अन्त तक उसके मुख का वर्ण विकृत नही होता। वह प्रभावित होता

है, सहमत होता है, पर किसी से भीत होकर कभी आत्मसमर्पण के भाव नही दिखलाता। निकम्मा आदमी तो अपना तन-मन दूसरो के हाथ बेच देता है। वह दूसरो के हंसने से हसता है, उनके रोने से रोता है। मल-मूत्र-विसर्जन के अतिरिक्त उसकी कोई शारीरिक क्रिया अपने मन से नही होती। उन्मत्त व्यक्ति बार-बार अगड़ाई और जम्हाई लेता है। एक वैज्ञानिक ने लिखा है कि बार-बार अगडाई लेना और जम्हाना पागलपन का लक्षण है।

कूप-मण्डूक या मिथ्याभिमानी बड़ा भयकर होता है। वह किसी की नही सुनता। अपने कुल और अपनी विद्या के अहकार को ही वह वाणी, व्यवहार और आचरण से प्रकट करता है। जहां उसके मिथ्याभिमान का समर्थन होता है, वहा मन्त्रमुग्ध हो जाता है; जहा कोई सामाजिक प्रसंग आता है, वह नाक-भौं सिकोड़ता और मूढ़वत् या क्रूरवत् आचरण करता है। ऐसा व्यक्ति अपनी अहमन्यता पर आघात होते देखकर कोई भी दुष्ट आचरण कर सकता है। वह अपने को समाज के प्रति उत्तरदायी नही समझता, उलटे सारे समाज को अपने प्रति उत्तरदायी मानता है, क्योकि उसके अनुसार जो वह समझता है, वहां उसको समझना चाहिए; जो वह करता है, वही सबका कर्तव्य होना चाहिए और जिन वस्तुओं का वह परित्याग करता है, सबको उनका परित्याग करना चाहिए। इस प्रकार के सकीर्ण विचारोवाले व्यक्ति अपने घर में परम सन्तुष्ट और चैतन्य प्रतीत होते हैं किन्तु बाहरी जगत् में आते ही वे सनकी जैसे और शकल से ही डूबते-उतराते-से लगते हैं। वे प्राय. दूसरों के साथ दुर्व्यवहार कर बैठते हैं, क्योकि उन्हें सामाजिक शिष्टाचार और लोक-व्यवहार से स्वाभाविक अरुचि होती है। ऐसे लोगों के लिए अमरीका की सुप्रसिद्ध पत्रिका[1] में एक बडा मनोरजक और उपयोगी लेख है। उसका एक अश इस प्रसग में उल्लेखनीय है। लेखक अलेन कारपेण्टर ने लिखा है कि वृद्धावस्था के कारण मस्तिष्क मे जो खराबिया स्वभावत:

1. Science Digest, November, 1946

उत्पन्न हो जाती है, उनको छोड़कर कूप-मण्डूकता मस्तिष्क की बीमारियो में सबसे अधिक व्यापक है। इस रोग से पीड़ित लोग अपनी छोटी-सी दुनिया बनाकर उसी मे रहते हैं। जनसाधारण मे जो बाहरी प्रतिक्रियाए स्वभावत. होती हैं, वे उनमें नही होती। जगद्गति से वे न तो प्रभावित होते है और न उसको समझते ही है।[1]

ऐसा व्यक्ति विचारो से, स्वभाव से, आकृति से, सभी बातो से सकुचित प्रतीत होता है। वह सकुचित स्थान मे रहना भी पसन्द करता है और डरता रहता है कि कोई उसके हवाई किले पर हमला न कर दे। यदि कोई हमला करता है तो वह उत्तेजित होकर आक्रामक का वध भी कर सकता है, क्योकि उसको दूसरो की परवाह नही रहती। वह अपने को सत्युग के आदमियो का वशधर समझता है और शेष लोगो को कलियुगी। 'ज्यो तेली के बैल को घर ही कोस पचास' की उक्ति उसके विषय में पूर्णतया चरितार्थ होती है। किसी तेली के बैल को देखकर ऐसे व्यक्ति के रूप को उसी के अनुरूप समझ लीजिए।

उद्योगी, विजयाकाक्षी, स्वस्थचित्त और बातचीत-व्यवहार में कुशल मनुष्य प्राय· भविष्य के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करते है। उनके मुख पर विषाद, निराशा या किसी प्रकार की चिन्ता की छाप नहीं मिलती। प्राय: वे अपने दाहिने अगो को अधिक सचालित करते है। इसका एक रहस्य है। हमारे मस्तिष्क का बाया भाग शरीर के दाहिने भाग का सचालक होता है और उसका दाहिना भाग शरीर के बायें भाग का। दूसरे शब्दो में, शरीर के दाहिने अग से बायें मस्तिष्क का सम्बन्ध रहता है और बायें से दाहिनी ओर के मस्तिष्क-खड का यही कारण है कि जब

---

1. Excluding mental diseases incidental to old age, Schizophrenia (संसार के प्रति पूर्ण विरक्ति किन्तु अपने प्रति पूर्ण अनुरक्ति का मानसिक रोग) is the most prevalent of all diseases of the mind. Sufferers from it exist in a small world of their own which they themselves have created. Influences to which normal people react have become deadened and meaningless to the Schizophrenia.

किसी को वाम अग का पक्षाघात होता है तो उसके दक्षिण पार्श्व का मस्तिष्क शिथिल या विकृत हो जाता है। विचार-गर्भित वाणी के उत्पादक उत्तेजक व सचालक तन्तु मस्तिष्क के वाम भाग मे रहते है, ऐसा शरीर-शास्त्री डॉक्टरो का मत है। मस्तिष्क में जब नये विचारो की सृष्टि होती है और वे प्रकट होना चाहते है तो दाहिने अग विशेष सक्रिय होते है। अधिकारी पुरुष जब कोई विचार निश्चित करके आज्ञा देता है, तो दाहिने हाथ की तर्जनी स्वभावत. उठ जाती है। विचारवान् व्यक्ति किसी बात को समझाते समय दाहिनी तर्जनी से इगित करता है; लिखनेवाले अपने विचार दाहिने हाथ से व्यक्त करते हैं, व्याख्यान देनेवाले या अच्छे बोलने-वाले दाहिने हाथ को उठा-उठाकर विचारो का सकेत करते हैं या मस्तिष्क-क्रिया को सतुलित करते है। कोई उत्तेजनात्मक विचार आते ही दाहिना अग अपने-आप फडकने लगता है। स्त्रियों का बाया अग इसलिए फड़कता है कि उनमे प्रायः भावो की लहरें ही उठती है अथवा आशका या किसी चित्तस्थित चिन्ता की। बायें अग प्रायः उन स्वभावो के अनुसार कार्य करते है जो दाहिनी ओर के मस्तिष्क मे बैठे रहते है। तत्काल निश्चय करने का काम बायां मस्तिष्क करता है। प्राचीन मानस-शास्त्री इस रहस्य को जानते थे। दाहिने अंग के फडकने पर शुभ कार्य करने का शकुन वे इसलिए बताते थे कि उससे प्रकट हो जाता था कि मनुष्य की बुद्धि उक्त कार्य के लिए दृढ हो चुकी है। रामायण में जब शूर्पणखा ने रावण को राम पर आक्रमण के लिए उत्तेजित किया तो उसने उससे यही कहा था कि जय-प्राप्ति का निश्चय करके शीघ्र अपने दाहिने पैर को उठाओ : 'शीघ्रमुद्ध्रियता पादो जयार्थमिह दक्षिणः।' जिसका दक्षिण अग निश्चेष्ट हो उसे हतबुद्धि या लकीर का फकीर मानना चाहिए। साधारण व्यवहार मे भी जिसको आप अपने से बडा समझते हैं, उसको दाहिनी ओर आसन देते हैं। अपनी पत्नी के स्वामी होने के स्वाभाविक अभिमानवश आप उसको बाईं ओर स्थान देते है। यदि कोई स्त्री आपकी पत्नी या प्रेमिका न हो तो आप उसके सम्मान के विचार से उसको अपनी दाहिनी ओर

ही स्थान देंगे।

कर्मशीलता के विचार के साथ-साथ दाहिना अंग अपने-आप चल पड़ता है, इसको एक अन्य प्रमाण से समझिए। लोग तलवार को दाहिनी कमर में नही, बाईं ओर लटकाते हैं। यह क्यो ? स्पष्ट कारण यही है कि वे समझते है कि आक्रमण या आत्मरक्षा का विचार आते ही दाहिना हाथ ही पहले चलेगा और उसके लिए हथियार को सुगम स्थान पर रखना चाहिए। बायें हाथ पर इतना विश्वास नही रहता, नही तो लोग दाहिनी ओर भी एक तलवार लटका लेते।

इसी प्रकार के बहुत-से लक्षणो से तरह-तरह के मनुष्य के व्यक्तित्व का निरूपण हो सकता है। सबसे सरल रीति यह है कि कुछ प्रकार के मनुष्यो की आकृति आदि का अध्ययन कर लीजिए और उनके रूप को मन मे रख लीजिए। इसके बाद जिसकी परीक्षा करनी हो उसके आचार-व्यवहार, अग-चेष्टा आदि की तुलना उन रूपो से कर लीजिए। उदाहरणार्थ, बुद्ध या गाधी की शांत, गभीर और सौम्य तथा सतेज मुख-मुद्रा को मन में रखकर किसी अन्य में वैसी मुख-मुद्रा को पाकर आप समझ सकते हैं कि वह वैसे ही आचरण का व्यक्ति होगा, जैसे गाधी या बुद्ध थे। किसी का मनस्ताप किन लक्षणो से व्यक्त होता है, इसके लिए किसी विधवा या किसी पुत्र-वचिता स्त्री का रूप मन में सोच लीजिए। किसी मे भी उन लक्षणो को देखकर आप उसके हृदय की वेदना का अनुमान कर सकते है।

यद्यपि वाणी, व्यवहार और आकृति आदि से मानव के आन्तरिक रहस्य का बहुत कुछ पता चल जाता है, पर इन सबसे धोखा भी हो सकता है। सिनेमा के पात्र या सी० आई० डी० वाले नाना रूप बना ही लेते है। अतएव एक ही बार मे अथवा एक ही परिस्थिति में किसीको देखकर सहसा कोई विचार न निर्धारित करना चाहिए। साथ ही अन्य कुछ साधनो से भी मनुष्य की परीक्षा करनी चाहिए।

इन बातों को भी ध्यान मे रखना चाहिए

१. ग्रह-दशा—ग्रह-दशा का प्रभाव मनुष्य पर पडे या न पडे, परन्तु गृह-दशा का अवश्य पड़ता है। जो कुलीन होता है वह किसी न किसी अंश तक गृह-मर्यादा का पालन करता है। उसे अपने पूर्वजो के मान का ध्यान रहता है। इसके अतिरिक्त जिसके घर की दशा अच्छी होती है, अर्थात् जो सुखी गृहस्थ होता है वह बाहर भी अपने उत्तरदायित्व को सम्हालता है और दुस्साहस नहीं करता। जिसके घर मे अशान्ति रहती है, वह उच्छृखल हो ही जाता है। जिसके घर में आर्थिक संकट रहता है, वह सामाजिक जीवन में भी छोटा बनकर लाचार होकर रहता है या छल-कपट अथवा चोरी करने लगता है। जो स्त्री से सतुष्ट नही रहता वह वैरागी या दुराचारी, क्रूर अथवा नपुसक हो जाता है।

मनुष्य को समझने के लिए उसके पूर्वजो के, मुख्यतः माता-पिता के जीवन की थोड़ी-बहुत जानकारी आवश्यक होती है। सयमी माता-पिता की सतान प्राय. सयमी होती है। यह भी देखा गया है कि जिस वश मे एक से अधिक पूर्वज दीर्घायु हुए होते है, उस वश मे आगे भी लोग प्रायः लम्बी आयुवाले होते हैं। सुश्रुत ने इसका उल्लेख भी 'सूत्र-स्थान खड' (सुश्रुत-सहिता) मे किया है। और किसी का प्रभाव पडे या न पड़े, माता का प्रभाव संतान पर अवश्य पडता है। माता के मिथ्याहाराचार से सन्तान बहुत-सी व्याधियां जन्म से लेकर आती है। माता की मनोदशा का तो पूर्ण प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पडता है। एक सुप्रसिद्ध डाक्टर ने इसपर अनुसन्धान करके इसको प्रमाणित किया है। उसने कई घटनाओं का उल्लेख किया है। एक घटना यह है—एक किसान के पास एक पालतू सूअर था। वह बीमार हो गया। किसान ने उसके कान के पास चीरकर उसका कुछ खून निकाल दिया और वह ठीक हो गया। किसान की गर्भिणी पत्नी के मन मे वह क्रूर कर्म कई दिनों तक ध्यानस्थ रहा। शिशु के उत्पन्न होने पर उसके कान की पाली खण्डित थी। इसी तरह के और भी सच्चे वृत्तान्त है जिनसे ज्ञात होता है कि मानसिक

आघात होने से गर्भ-विकृति हो जाती है। गर्भिणी की कामनाओं का पूरा प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। दुराचारिणी की सन्तान सदाचारिणी होती हुई कम देखी जाती है। कारण यही है कि सन्तान के रक्त की एक-एक बूद मे मातृअंश रहता है। चीनी से जो वस्तु बनेगी उसमें चीनी के तत्व अवश्य रहेंगे। जन्म के बाद माता की योग्यता और बुद्धि के अनुसार ही बालक का विकास होता है। यदि मा भीरु होती है तो लडके को सदा उत्साहहीन बनाती है। यदि वह तेजस्विनी होती है तो वही करती है जो अजना ने हनुमान के लिए, विदुला ने सजय के लिए किया था। आधुनिक उद्दण्ड वीरो में नेपोलियन, हिटलर, मुसोलिनी और स्टालिन आदि अपने साहसी स्वभाव के लिए केवल अपनी माताओ के ऋणी है। यह निश्चित है कि बालक के स्वभाव पर उसकी माता का और बुद्धि पर पिता का प्रभाव पड़ता है—गर्भावस्था में और जन्म के बाद भी। वाल्मीकि ने लिखा भी है कि मनुष्य पिता का अनुकरण नही करता, अर्थात् माता का ही करता है : 'न पित्र्यमनुवर्त्तन्ते मातृकं द्विपदा इति।' पिता का प्रभाव न पड़े, ऐसी बात नही है। पिता का वीर्य दूषित होने से सन्तान शरीर से सदोष तो हो ही जाती है। गर्भ मे प्राण तो पिता का ही जाता है : 'आत्मा वै जायते पुत्रः।' शारीरिक, मानसिक तेज पुत्र को पिता से ही मिलता है। जन्म के बाद पिता का व्यवहार पुत्र के चरित्र-विकास पर प्रभाव डालता है। यदि पिता बडा क्रूर और आतंकवादी होगा तो बच्चे का उत्साह ढीला होते-होते क्रूरता-भीरुता उसके स्वभाव मे समा जाएगी। जो बच्चे बचपन मे सन्त्रस्त रहते हैं, वे आगे चलकर हकलाने लगते है, उनकी बुद्धि कुठित हो जाती है और उनका आत्म-विश्वास नष्ट हो जाता है। किसी भी कमज़ोर आदमी को डांटकर देखिए, अत्याचार का भय दिखलाइए, उसमे ये लक्षण प्रकट होगे। बार-बार जिसका हृदय धड़काया जाएगा, वह आगे चलकर धैर्यहीन तो हो ही जाएगा।

घरेलू जीवन का ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। मनुष्य के स्वभाव की

रूपरेखा बचपन मे बनती है। जो धारणाएं उस समय मन में बैठती है वही आगे भी पनपती हैं। उस समय की सगति का भी आगे तक प्रभाव बना रहता है। सबको जानकर तब किसी की तत्कालीन परिस्थिति देखिए। उसकी जन्मगत विशेषताएं उसके आगे की विशेषताओ पर प्रभाव डालती हैं।

गृह-दशा की जानकारी के लिए व्यक्ति-विशेष की स्त्री के सम्बन्ध मे या उसके दाम्पत्य-जीवन के सम्बन्ध में भी जांच करनी चाहिए। यदि पत्नी अधिक धनी घर की होगी, बहुत शौकीन या चचला होगी तो पति के जीवन पर इन सबका प्रभाव पडेगा। वह परेशान और चिन्तित ही व्यक्त होगा। यदि परस्पर कलह रहता होगा तो पुरुष बाहरी व्यवहार मे भी रूक्ष स्वभाव का प्रतीत होगा। इसी प्रकार गार्हस्थ्य जीवन की सफलता-विफलता का भी मनुष्य के स्वभाव और आचरण पर प्रभाव पडता है। शील, शिष्टाचार आदि कुलीनता के अग माने जाते हैं तथा दुर्विनीतता, उद्दण्डता असभ्यता आदि को अकुलीनता के अन्तर्गत माना जाता है। अदालतो द्वारा दण्डित अपराधियों मे से ८० प्रतिशत ऐसे होते हैं जो गृह-जीवन की भग्नता के कारण अपराधी बन जाते है।

२. आर्थिक दशा—किसी को समझने के लिए उसकी आर्थिक स्थिति को भी देखना चाहिए। कोई स्वभाव से परम उदार हो सकता है पर आर्थिक विवशता के कारण उसको प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। यदि बहुत परिश्रम करके भी कोई निर्धन ही बना रहता है तो उसको असमर्थ, अयोग्य मानने के पहले हमे यह भी देखना चाहिए कि कहीं वह पूर्वजों के ऋण तो नहीं पटा रहा है अथवा उसके आश्रितो की सख्या तो अधिक नही है। यह सभव है कि कोई स्वभाव से स्वाभिमानी हो, पर आर्थिक दशा खराब होने से वह सबके सामने झुकने को विवश हो गया हो। यह भी सभव है कि कोई स्वभाव से महाक्रूर हो, पर धनाभाव ने उसके जोश को दबा रखा हो। आर्थिक दशा बहुत प्रकार से मनुष्य के

चरित्र को बनाती-बिगाड़ती है। ऋण लेनेवाले का आत्मसम्मान तो यों-ही समाप्त हो जाता है, और ऋण देनेवाला प्रायः सद्व्यवहार भूल जाता है। लेन-देन से भावों में कैसा विचित्र परिवर्तन हो जाता है इसपर 'गुलिस्तां' मे एक छोटी-सी कथा है। एक महात्मा के पास भक्तों का बड़ा जमाव होता था। दिन-भर लोग दर्शन के लिए उनके पास आते रहते थे, इसलिए उनको पूजा-पाठ का समय नही मिलता था। एक दिन उन्होंने एक व्यवहारज्ञ से अपनी निवृत्ति का उपाय पूछा। उसने कहा—जो तुमसे मिलने आते है उनमे से कुछ को तुम द्रव्य ऋण के तौर पर दे दो और उनमे से जो समृद्ध जान पड़ें उससे ऋण-याचना करो। महात्मा ने ऐसा ही किया और परिणाम यह हुआ कि जो ऋण ले गए वे इस विचार से नही आए कि कही महात्मा उसको वापस न मागे और शेष लोग इस विचार से नही आए कि कही फिर कुछ माग न बैठे।

३. सगति, व्यवसाय—सगति से मनुष्य की अच्छी परीक्षा होती है। यूरोपीय विद्वान् ने लिखा है कि यदि मुझे यह मालूम हो जाए कि तुम किसके साथ रहते हो, तो मैं बता सकता हू कि तुम कौन हो अर्थात् किस प्रकार के आदमी हो।[1]

व्यवसाय भी एक अश तक व्यक्तित्व को प्रकट करता है। यदि कोई स्वतन्त्र और स्थायी व्यवसाय करता है तो वह अधिक स्वाभिमानी, प्रबन्ध-कुशल और स्थिरमति होता है। सेवा-व्यवसाय करनेवाले प्रबन्ध-कुशल हो सकते हैं पर उतने स्वतन्त्र और आत्मविश्वासी नही। रोज कुआ खोदकर रोज़ पानी पीनेवाले शान्त और स्थिरबुद्धि के हो ही नही सकते। द्यूत का व्यवसाय करनेवाला विश्वासपात्र और सत्यवक्ता कहां से होगा?

यदि कोई किसी का नौकर है तो उसके मालिक के व्यक्तित्व से उसका पता चल जाएगा। चर्चिल का नौकर महात्मा गाधी का अनुयायी कैसे होगा? क्रोधी का चरण-सेवक स्वाभिमानी नही हो सकता। वेश्या

---

1. Tell me with whom thou art found and I will tell thee who thou art. —Goethe.

का नौकर दलाल ही होता है। कायर का नौकर गुण्डा भले ही हो, महावीर नहीं होता। इसी प्रकार सेवक से स्वामी का पता चल जाता है। चोर का स्वामी या तो स्वय चोर होगा या मूढ; डाकू का सरदार महाडाकू होता है। हनुमान का स्वामी हनुमान से भी बली और प्रभावशाली था।

४. वेश-भूषा—वेश-भूषा को भी देखिए। सरल स्वभाव के आदमी का पहनावा भी सादा होता है। बना हुआ आदमी बडा आडम्बर फैलाता है। उद्यमी का पहनावा चुस्त होता है और बुद्धि व्यवसाय करने वालो का ढीला-ढाला। अस्त-व्यस्त चित्तवाले का वेश भी अस्त-व्यस्त होता है। हल्के आदमियो की वेश-भूषा बहुत ढीली-ढाली, सजावट से भरी हुई और बारीक से बारीक कपडो की बनी होती है। जिसके स्वभाव मे कृत्रिमता नही होती वह मोटा कपड़ा पहनता है। भडकीली तबीयत वाले बडे भड़कीले कपडे पहनते है।

वेश-भूषा का इतना अधिक प्रभाव सामाजिक जीवन पर पड़ता है कि प्रायः साधारण लोग उसी से प्रभावित होते हैं। पुलिस के कान्स्टेबल का व्यक्तित्व उसके चेहरे से नही उसकी वर्दी से प्रकट होता है। अंग्रेज़ी राज्य मे पतलून पहनना ही बडा आदमी होने का प्रमाण था। अब लोग खद्दर की वेश-भूषा को देशप्रेमी होने का चिह्न मानते है और बहुत-से लोग इसका अनुचित लाभ भी लेते हैं। देहातो मे बड़ी ऊची पगडी बाधकर अब भी महामूर्ख ब्राह्मण पण्डित बनकर अपने को पुजवाते हैं। इस प्रकार बनावटी वेश-भूषा से लोग अपने व्यक्तित्व को बढा-चढ़ाकर दिखाते हैं। यह सब देखते हुए केवल पहनावे से किसीके रूप को पहचानने में बड़ा भ्रम हो सकता है। तो भी वेश-भूषा से कुछ न कुछ वास्तविकता का पता चल जाता है, यह मानना पडेगा।

५. विद्या-बल—मनुष्य का सस्कार विद्योपार्जन से भी होता है, इसको कौन न मानेगा। पढ़ा-लिखा आदमी चाहे स्वभाव का अच्छा हो या न हो, बुद्धिमान क्रियावान हो या न हो, विद्वान तो होगा ही।

मूर्खों की अपेक्षा उसकी संगति अधिक लाभदायक होगी। उसपर शासन करना कठिन होगा। उसमें स्वाभिमान किसी न किसी मात्रा में अवश्य होगा। अतएव किसी के आत्मरूप पर विचार करते समय यह भी देखना चाहिए कि उसमें कितना और किस प्रकार का विद्या-बल है, कितने विषयो में उसका प्रवेश है और उन विषयो का उसको कितना अभ्यास है। यह भी देखना चाहिए कि उसके मस्तिष्क मे मेधा-शक्ति भी है या रट-रटाकर केवल उपाधि ही प्राप्त कर ली है। यह भी देखना चाहिए कि लौकिक व्यवहार मे वह उस विद्या का सदुपयोग करता है या दुरुपयोग। मुख्य रूप से यह देखना चाहिए कि उसको विद्या का अजीर्ण तो नही है।

६. शिष्टाचार—शिष्टाचार भी विशेष रूप से देखने की वस्तु है। शील, स्नेह, सौजन्य, सत्कार आदि केवल वाणी से ही नही प्रकट होते है—वे आखो से, आकृति से और व्यवहार से आकर्षक बनते हैं। शिष्टाचार-पालन से मनुष्य के बडप्पन का बोध होता है। मूर्ख लोग अपनी अशिष्टता के विज्ञापन से ही पकड मे आते है। किस अवसर पर कैसा व्यवहार करना चाहिए, इनसे अनभिज्ञ होने के कारण वे प्रायः अशिष्ट बन जाते हैं। एक रूसी कहावत है, जिसका अर्थ यह है कि गधे को यदि मेज के पास कुर्सी पर बैठा दीजिए तो वह कूदकर मेज़ पर बैठ जाएगा और सोचेगा कि मनुष्य लोग मूर्ख हैं जो इतना बड़ा सपाट मैदान छोड़कर सकीर्ण कुर्सियो में समाए हुए हैं।

७. खान-पान— कौन किस तरह का खाना खाता है, कैसे खाता है, इससे भी आदमी की जाच होती है। खाने का असर मस्तिष्क और मानव-चरित्र पर पडता है, इसे हम लिख चुके हैं। अधिक अनुपयुक्त प्रकार का खाना खानेवाला भी कैसा हो जाता है, यह भी लिखा जा चुका है। अधिक खानेवाला मूर्ख होता ही है। भोजन कोई किस प्रकार खाता है, इससे भी उसकी बुद्धि-स्थिति का पता चलता है। स्थिर स्वभाव का व्यक्ति मुंह बन्द करके अच्छी तरह चबाकर खाता है और

खाते समय उसके मुह से चवाने की ध्वनि नही आती। उसकी उगलिया भी ऊपर तक गन्दी नही होती। चचल स्वभाव का व्यक्ति बहुत जल्दी खाता है, मुह खोलकर सड़प-सडप की ध्वनि के साथ खाने को निगलता है, तथा हाथ ही नही, सामने का कपड़ा भी गन्दा कर लेता है।

८. हसना—हसते समय मनुष्य की सरलता अथवा वक्रता अवश्य स्पष्ट हो जाती है। शान्त प्रकृति का मनुष्य प्रायः मुस्कराता है; सरल प्रकृति का खिलखिलाकर हसता है अथवा बहुत प्रसन्न होने पर अट्टहास करता है; पुरुषार्थी प्रायः अट्टहास करता है, निकम्मा या धूर्त आदमी घोड़े की तरह हिनहिनाता है; सभ्य आदमी उचित अवसर पर हसता है, असभ्य अनुचित अवसर पर। सभ्य की हसी मे उसके दात के पीछे का भाग कम दिखाई पड़ता है, असभ्य का सारा कण्ठ-देश राक्षस के गले की तरह खुल जाता है। हसमुख प्रसन्नचित्त होता है, कभी न हसने वाला महाशुष्क मनोवृत्ति का तथा सदा उपहास करनेवाला दुर्बुद्धि या कुटिल स्वभाव का होता है। सभ्य व्यक्ति व्यग्य-विनोद से हंसते हैं। दुष्ट जीव दूसरो को सकट मे देखकर या उनको बेवकूफ बनाकर हसता है। गन्दे स्वभाव का आदमी प्राय भद्दे मजाक करता है।

और भी कुछ जान लीजिए

उपर्युक्त बातो को ध्यान मे रखिए ही, कुछ और छोटी-मोटी बातों की सहायता से मनुष्य के रूप को पहचानिए :

१. अभिमानी व्यक्ति की दृष्टि सबके सिर के ऊपर रहती है; वीर स्वभाव के, सत्य तथा निश्छल स्वभाव के व्यक्ति आख से आख मिलाकर देखते हैं, सज्जन और स्नेही दूसरे के चेहरे की ओर देखते हैं, संकोची और शीलवान वक्षस्थल की ओर, नीच व्यक्ति कमर के नीचे; महानीच जूतों पर और लज्जित व्यक्ति अपने ही अगो को देखता है। बिलकुल निकम्मा आदमी दूसरो की पीठ ही देखता है, क्योकि वह पीछे-पीछे चलने का अभ्यासी होता है। भाड-स्वभाव का आदमी आखें मटकाता है। वह किसी को नही देखता, दूसरे ही उसको देखते हैं।

२. सज्जन व्यक्ति किसी के गुणो की प्रशसा मुक्त-कण्ठ से करता है, दुर्जन दवी जवान से, चाटुकार ढोल पीटकर और धूर्त 'किन्तु', 'परन्तु' लगाकर।

३. शब्दो का अपव्यय करनेवाला समय का अपव्ययी भी होता है।

४. सभ्य व्यक्ति मुह पर श्रद्धा-स्नेह के भाव दिखाकर सरलता-पूर्वक हाथ से किसी का अभिवादन करता है। दभी उपेक्षापूर्वक या तो मुह से कुछ बोल देता है या हाथ को विजली की तरह चमकाकर गिरा लेता है। धूर्त बड़ा भारी दण्डवत करता है और वार-वार हाथ जोड़ता है।

५. सत्पुरुष कभी यह नही कहता कि मेरा वह सिद्धान्त है। उसका सिद्धान्त तो उसके कार्यों से प्रकट होता है। जिसका कोई सिद्धान्त नही होता, वही चिल्लाता है कि मैं तो अमुक सिद्धान्त का माननेवाला हू। धूर्त और स्वार्थी लोग छोटी-छोटी वातो को भी सिद्धान्त का रूप दे देते है।

६. जब दो व्यक्तियो मे परस्पर विश्वास होता है, तभी वे स्वाभाविक रीति से व्यवहार करते हैं। अविश्वास होने पर भला व्यक्ति भी प्राय. दुर्जन से अपने व्यक्तित्व को छिपाता है।

७. किसी का प्रिय विषय क्या है, इसकी जानकारी से उसकी मनोवृत्ति का झुकाव मालूम हो जाता है। सज्जनो को सार्वजनिक विषय प्रिय होते है। नर-वीरो को शासन-सम्बन्धी, साधारण को आमोद-प्रमोद-सम्बन्धी, नीच को दूसरो का अप्रिय करनेवाले विषय प्रिय लगते है और मूढ को सारा ससार असार लगता है।

भ्रम में न पड़िए

किसी के सम्बन्ध में कोई विचार स्थिर करते समय भ्रम मे न पड़िए। किसी में दस-पाच दुर्गुण हो सकते है, पर साथ ही पचास गुण हो सकते है। उन गुणो मे वे दुर्गुण छिप जाएगे—उसी तरह जैसे चन्द्र में कलक और आम में गुठली। साधारण परिस्थिति में किसी के

गुण-दुर्गुण अच्छी तरह प्रकट नही होते। जिसका व्यक्तित्व परिस्थितियो के ऊपर उठा हुआ दिखलाई दे उसी को विजयी मानिए। जहा जिसके प्रति आपको भ्रम हो वहां परीक्षा करके देखिए। किसी की ओर थोड़ा घूरकर देखिए कि वह स्थिर रहता है या अस्थिर हो जाता है अथवा आपकी आखें फोडने दौड़ता है। किसी को छेडकर देखिए कि उसमे सहन-शीलता है या शीघ्र जल-भुन जाने की प्रकृति। किसी की प्रशसा करके देखिए और फिर उसी की थोडी आलोचना करके देखिए। सभव है वह तुलसी की इस उक्ति को चरितार्थ करे :

नीच चग-सम जानिए, सुनि लखि तुलसीदास।
ढील देत भुंई गिरि परत, खैंचत चढ़त अकास॥

किसी विषय मे उसकी राय देखिए कि वह उसके सुलझाने मे साधक होता है या बाधक। किसी को कोई जिम्मेदारी का काम सौंपिए, देखिए वह खड़ा रहता है या अपने भागने की सड़क बनाता है। जो आपसे दूसरो की रहस्य की बातें कहता है, उसको अपना भी कोई रहस्य बताकर देखिए और कहिए कि किसी से कहे नही। सम्भव है वह एक-दूसरे के रहस्य ही कहता घूमता हो। किसी का उपकार करके देखिए कि वह कृतज्ञ रहता है या कृतघ्न हो जाता है। किसी की गलतिया पकड़कर देखिए कि वह सच्चे आदमी की तरह उनको मान लेता है या सकोची व्यक्ति की तरह लज्जित हो जाता है या धूर्त की तरह बातो से उनको ढकने की चेष्टा करता है, अथवा दुष्ट की तरह उसके कारण आपको अपना शत्रु मानने लगता है। इन प्रयोगो से बहुतो के सम्बन्ध मे भ्रम-निवारण हो सकता है।

और भी कई तरह के भ्रम हो सकते हैं। किसी को साधु स्वभाव का, शान्तचित्त तथा स्त्रियो से विरक्त देखकर उसको लोग क्लीव समझ लेते है। वह सयमी भी हो सकता है। पुराने ढग के लोग चौदह-पन्द्रह वर्ष के बालको मे कुछ स्वच्छन्दता आते देखकर समझते हैं कि लड़का बिगड़ गया। उनके मुंह पर मुहासे देखकर समझते है कि उनका ब्रह्मचर्य खडित हो रहा

है। यहां घोर भ्रम होता है। चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में युवावस्था का आगम होने लगता है और शरीर की ग्रन्थिया अपने स्थानो में कुछ परिवर्तन करने लगती है, जिनके कारण सबका स्वभाव कुछ बदलता है और कुछ ग्रथियो के परिवर्तन तथा रक्त में विशेष गर्मी के कारण मुहासे निकलते है। एक तरह से शरीर में वसन्त ऋतु का आगमन होता है। विचारो में पतझड़ की हवा चलती है और मुख पर ऋतु की कोपलें फूट निकलती हैं। ऐसी दशा मे किसी की परीक्षा करते समय उसकी अवस्था की स्वाभाविक विशेषताओ का ध्यान रखना आवश्यक है।

अपने दोषों को भी देख लीजिए

किसी के व्यवहार में कोई त्रुटि जान पड़े तो उसका सारा दोष मानने के पहले आप यह भी देख लीजिए कि कही आप ही ने तो नही उसको उसके मार्ग से गिरा दिया है। यदि कोई उत्तेजित होता है तो उसका मूल कारण सोचकर तब उसके स्वभाव को दोष दीजिए। सम्भव है, आप उसके ऊपर या उस की किसी बात पर हंस दिए हो, या आपने अन्यायपूर्वक दूसरो के सामने उसकी सत्य किन्तु अति कठोर आलोचना कर दी हो। उस परिस्थिति में शान्त स्वभाव का व्यक्ति भी उत्तेजित हो सकता है। हरएक व्यक्ति स्वभाव से कुछ न कुछ खुशामद-पसन्द होता है, और चाहता है कि लोग उसका मज़ाक कम से कम दूसरो के आगे न उड़ाएं। यदि आप इसका ध्यान नही रखते तो अवश्य ही पीड़ित व्यक्ति आपे से बाहर हो जाएगा।

दूसरी भूल आप वहां कर सकते हैं जहां किसी भाव-प्रधान बात मे तर्क का आश्रय लें। यदि कोई आपके तर्कों को न माने तो आप उसे अयोग्य, व्यर्थ या मूर्ख समझेंगे। पर आप को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य तर्क से कम वश में आता है, भावो के सूत्र मे यह शीघ्र बंध जाता है। वियोगिनी स्त्री को आप तर्क से शान्त नही कर सकते। रुष्ट लड़के को तर्क से नही, स्नेह-भाव से मनाया जाता है। यदि वह आपके तर्क की अवहेलना करे तो उसको दुष्ट न मानकर अपने को अनु-

भवशून्य मानिए।

तीसरी मुख्य भूल आप यह कर सकते है कि स्वय विशेष सम्मान के पात्र न होकर दूसरो से आशा करें कि वे आपका सम्मान करें और न करने पर उनको अभिमानी या अशिष्ट मान लें। आपकी योग्यता-अयोग्यता, गुरुता-लघुता और उपयोगिता के अनुकूल ही दूसरो की दृष्टि मे आपका स्थान बनेगा। आप चाहे जितने भी धधकें, उसको देखकर कमल नही खिल सकता।

चौथी भयकर भूल यह हो सकती है कि आप स्वय तो कुछ न करें और दूसरो से आशा करें कि वे ही आपका सब काम कर दें और यदि वे न करें तो आप उनको बुरा आदमी मान लें। यह स्मरण रखना चाहिए कि कोई व्यक्ति दूसरे का काम पूर्ण रूप से नही कर सकता। दूसरा आदमी सहयोगी ही हो सकता है। नौकर भी तभी काम करता है जब मालिक भी कुछ करता है। जो मालिक सोता है, उसके नौकर भी सोते हैं। दूसरों को लापरवाह या सुस्त समझने के पहले देख लीजिए कि आपकी लापरवाही से तो वे वैसे नही बन गए है।

पांचवी भूल आपकी स्मरणशक्ति की हो सकती है। यदि आप कोई बात भूल जाएगे तो दूसरे अवसर पर दूसरे को झूठा बना देंगे। आप किसी की बातो की जाच तभी कर सकते हैं जब उनको ठीक-ठीक याद रखें।

एक और त्रुटि यह हो सकती है कि आप स्वय मिलनसार स्वभाव के न हो और दूसरो को दोष दें कि वे बड़े उजड्ड तथा मिथ्याभिमानी हैं। आप पहले अपनी परीक्षा कर लीजिए और देख लीजिए कि कहां तक आपमे सामाजिक होने के सद्गुण हैं। आगे हम कुछ प्रश्न देते हैं, जिनके उत्तर देकर आप पता लगाइए कि कहां तक आप समाज में प्रवेश करने योग्य हैं। दूसरो से भी इन प्रश्नो को पूछकर आप उनके विषय में बहुत कुछ जान सकते हैं, इसलिए हमने इसी प्रसग मे इनका उल्लेख करना उचित समझा है।

कुछ व्यक्तिगत प्रश्न

१. क्या आप किसी भी ढंग की वेश-भूषा में बड़े-छोटो के साथ आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास के साथ मिल लेते है ?

२. क्या आपका उच्चारण शुद्ध है ?

३. जब आप किसी मित्र से मिलते है तो क्या आप किसी प्रश्न के साथ बातचीत का श्रीगणेश करते हैं ?

४. क्या आप प्रायः यह कहते हैं कि 'क्षमा कीजिएगा, ऐसा नही हो सका', 'मुझे दु.ख है, मैं ऐसा न कर सकूगा' या 'आप बुरा न मानिएगा', 'मेरा अभिप्राय यह है' ?

५. क्या आप मित्र से प्रातः उसके कार्यालय मे मिलते हैं ?

६. बड़े आदमियो से भी क्या आप आत्मसम्मान के साथ मिलते है ?

७. अपनी स्पष्ट आलोचना सुनकर आपको क्या खिन्नता नही होती ?

८. क्या आपकी ध्वनि स्पष्ट और गम्भीर है ?

९. क्या आप अपनी बातचीत के कारण व्यवहारकुशल माने जाते हैं ?

१०. क्या आप अपने को कुछ लोगों का आज्ञाकारी और कुछ लोगो का अफसर बनाकर योग्यतापूर्वक किसी कार्य को सुचारु रूप से कर सकते है ?

११. चलते समय या खडे रहने पर अथवा बैठने पर—इन तीनो अवस्थाओ मे से किसी अवस्था मे—आप झुकते है या नही ?

१२. किसी से बातें करते समय क्या आप को पता चल जाता है कि सुननेवाला आपकी बातो में कितना रस ले रहा है ?

१३. कभी पहले के हास्य-व्यंग्य आपको याद रहते हैं कि नही ?

१४. आप अपने मित्रो के आग्रहो से प्रायः अपनी जान छुडा लेने में समर्थ हो जाते है कि नही ?

१५ आप हंसी-मजाक मे भी अपने सत्य-व्रत का पालन करते है या नही ?

१६. क्या आपको अपने परिचितो की कमज़ोरियो का ध्यान रहता है ?

१७. क्या आप अपने वैवाहिक जीवन को सफल मानते है ?

१८. क्या आपको अपनी भूलो पर कभी-कभी हंसी आती है ?

१९. आप मित्र की मित्रता का निरन्तर लाभ लेते रहते है ?

२०. सच बताइए, क्या कभी आपके मन में यह भावना उठती है कि आपकी पत्नी आपके किसी सौभाग्यशाली मित्र की पत्नी जैसी रूपवती होती तो आप अधिक सुखी होते ?

२१. क्या आपको स्त्रियो के सामने खड़े होने में कुछ झिझक मालूम होती है ?

२२. आप अपने मिलने-जुलनेवालो से प्रायः कोकशास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र, कर्तव्यशास्त्र, वेदान्त और दर्शनशास्त्र की चर्चा करते है कि नही ?

२३. क्या आप अपने मित्रो के साथ घूमने-फिरने भी जाते हैं ?

२४. जब आपके मित्र आपको सिनेमा दिखलाने ले जाते है तो प्रायः वे ही स्वयं टिकट खरीदकर आपको सम्मानपूर्वक अन्दर ले जाते है या नही ?

२५ किसी मित्र के घर पर आपके बार-बार जाने पर भी क्या उसके घरवालो को आपके प्रति कोई अरुचि नही हुई ?

२६. क्या आपको कहावतें, मुहावरे और कवियो की कुछ मनोहर उक्तिया याद हैं ?

२७. जब मित्र-मण्डली में किसी गम्भीर किन्तु आवश्यक विषय पर विचार-विमर्श होने लगता है, तो क्या आपको शीघ्र घर लौटने का ध्यान आता है ?

२८. क्या आप अपने व्यवसायवालो या बन्धु-बान्धवो के साथ ही अधिक मेलजोल रखते है ?

२६. क्या आप अपने मन की सभी व्यथाएं मित्रों मे प्रकट करते हैं ?

३०. जहा लोगो में भाग्य के कुचक्र की कथाए चलती है वहा उनमे आपका नाम भी कथा-नायक या पात्र के रूप में वर्णित होता है या नही ?

३१. क्या जब आप अपनी बात समाप्त कर लेते हैं तो लोगो को आपकी स्थिति पर दया आती है ?

३२. दूसरो के व्याकरण-दोष आप उनको तत्काल बता देते है या नही ?

३३. सिनेमा के चलते हुए गाने सुनकर क्या आप मुग्ध हो जाते है ?

३४. क्या कभी-कभी आप स्वय भी कुछ गा लेते हैं ?

३५. क्या शाम को आप प्रायः रेडियो सुनने की अपेक्षा कही,बाहर जाना पसन्द करते है ?

३६. क्या आपके घर में रोज़ सुबह-शाम आपकी कचहरी लगती है ?

३७. क्या लड़को के कपडे आप अपनी रुचि से नही पसन्द करते है ?

३८. क्या आपको इसका अनुभव होता है कि पहले आपका जीवन अब से अधिक सुखी था ?

३९. क्या परिचित लोगो को व्यक्तिगत पत्र लिखने मे आपको बहुत देर तक सोचना पड़ता है ?

४०. क्या घरेलू चिन्ताओं से कभी-कभी आपका मन उखड़ जाता है ?

४१. क्या आपका शाम का कार्यक्रम बंधा रहता है ?

४२. क्या आपको कभी-कभी इसका ध्यान आता है कि अब आप-की वृद्धावस्था आ गई ?

४३. क्या कभी-कभी आपको अपने बड़े लड़के के प्रति ईर्ष्या-द्वेष होता है और आप, इस विचार से कि कही वह घर में आपकी गद्दी न

छीन ले, उसको नीचा दिखाने के लिए गुप्त षड्यन्त्र या उसका मान-मर्दन करते हैं ? अथवा क्या कभी आप यह समझते हैं कि आपका लडका आपकी मृत्यु के बाद पूर्ण वयस्क हुआ होता तो ठीक था ? अथवा क्या आप कभी यह समझते हैं कि वह आपसे दूर रहे तो आपका वैभव अधिक सुरक्षित रहेगा ?

४४. क्या आपके घर में किसी आकस्मिक गृह-सकट का दोष किसी नवविवाहिता गृहिणी या किसी नवजात शिशु पर डाल दिया जाता है ?

४५. यदि आपका नौकर अलग हो जाए या बीमार पड़ जाए तो क्या आपको बाजार मे खाना खाने के लिए बाध्य होना पड़ता है ?

४६. नौकर के बीमार होने पर आप उसके इलाज का यदि प्रबंध करते हैं तो उसके वेतन मे से दवा आदि का मूल्य काट लेते हैं या नही ?

४७. क्या आप प्रायः पाखण्ड दिखलाते है जिससे लोग भयवश आपकी अधिक सेवा करें ? और कभी घर के कामो में कृत्रिम विरक्ति दिखाकर तरह-तरह के नाटक करते हैं ?

४८. किसी के रूठने पर क्या आप उसको बिना धमकाए हुए भी मना लेने मे सफल हो जाते हैं ?

४९. दूसरों के मेहमान होने पर क्या आपको अपने घर से अधिक सुख मिलता है ?

५०. क्या आपके नौकर आपको प्रसन्न रखकर आपके घरवालो का जब चाहे अपमान कर लेते हैं ?

५१. घर में क्या आप परम स्वतन्त्र रह सकते हैं और विवाह आदि में भी किसी की राय नही लेते ?

५२. क्या आप घर में अपनी प्रभुता को स्थायी रखने के लिए किसी न किसी को मारते-पीटते या पेरते रहते है ?

५३. काम हो जाने के बाद कोई न कोई त्रुटि निकालकर क्या आप नौकरो-मजदूरों के पैसो में कुछ काट-कपट करने के व्यसनी हैं ?

५४. क्या आप बहुत विद्वान्, लोकप्रिय होकर भी घरवालो के प्रति

आत्मीयता का भाव दिखलाने में असमर्थ हैं ?

५५. क्या आप घर में भी दो तरह की बातें करते हैं; अर्थात् मन में कुछ रखते हैं, कहते कुछ है तथा एक बार कुछ कहकर बाद को पलट जाते है ?

५६ क्या आपको घरवालो के लिए रोज नये-नये कानून बनाने और दफा १४४ लगाने का शौक है ?

५७. क्या आपके सम्बन्धी लोग आपके घर बार-बार आना पसंद करते हैं ?

५८. आपके घर में त्योहार या मगलोत्सव मनाए जाते है या नही ?

५९. क्या आपके लड़के और नौकर आपके चेले जैसे लगते हैं ?

६०. क्या आपका इतना आतंक रहता है कि बच्चे दिन-रात पुस्तकों मे ही अपनी आंखें गडाए रहते हैं ?

६१. क्या आप बहुत-सी जीवित स्त्रियो के पति है ?

६२. क्या आपके घर मे हरएक प्राणी यह अनुभव करता है कि आप उसी को सबसे अधिक चाहते हैं ?

६३. क्या सब स्वेच्छा से आपके सुख-दु.ख मे सम्मिलित होते हैं ?

६४. बाहर से जब आप कुछ लाते हैं तो उसमें से पहले अपना हिस्सा अलग कर लेते है या नही ?

६५. क्या आप प्रायः घर में ही बैठे रहते हैं ?

६६. क्या आपको क्रोध करके पछताना पडता है ?

६७. कभी अकेले रहने पर क्या आप ऊबने लगते है ?

६८. क्या आप बच्चो, बुड्ढो और नवयुवको की संगति यथा-समय आनन्दपूर्वक कर सकते है ?

६९. कोई जब आपके प्रति स्नेह, सम्मान या कृतज्ञता प्रकट करता है तो क्या आप उसके वश मे हो जाते हैं ?

७०. क्या आप किसी को बधाई या धन्यवाद देने में प्रायः चूक जाते हैं ?

७१. जब आप रसमग्न होकर बातें करते हो तो यदि कोई अन्य व्यक्ति अपनी बातो से लोगो का ध्यान आपकी ओर से फेर ले तो आप रूठ जाते हैं ?

७२. क्या आप नाना विषय मे कुछ न कुछ प्रवेश रखते हैं ?

७३. परिचितो के नाम आपको आसानी से याद रहते है या नही ?

७४. क्या आप बहुत-से स्थानो पर केवल हाजिरी देने जाते है ?

७५ क्या आप सभी से घुल-मिल जाते हैं ?

७६. क्या आप दूसरो के समय का भी ध्यान रखते है ?

७७. क्या आप किसी से पहली मुलाकात करने मे केवल दस-पन्द्रह मिनट ही बातें कर सकते है ? और अपने काम की चर्चा करना भूल जाते हैं ?

७८. किसी के घरेलू काम में कभी-कभी हाथ बटाते है कि नही ?

७९. क्या आप दूसरो के पास केवल गप्प करने जाते है ?

८०. दूसरो की बातें आप ध्यान से सुनते हैं या नही ?

८१. क्या आप दूसरो के मन मे प्राय. सन्देह उत्पन्न करके फिर बताने का आश्वासन देते हैं ?

८२. दूसरे लोग जब आपका मज़ाक करते हैं तो क्या आप नक्कू बन जाते हैं ?

८३. क्या आप 'ज़िन्दादिल' और 'हाजिरजवाब' हैं ?

८४. दूसरे जब चुप हो जाते हैं, तब भी आप बोलते ही रहते है ?

८५. आप आसानी से बातचीत मे विषय-परिवर्तन करने मे सफल हो जाते हैं कि नही ?

८६. नौकरो से गाली देकर बातें करने का अभ्यास आपने किया है कि नही ?

८७. जिससे आपके नौकर या बच्चे सावधान रहें, आप छोटी गलतियो पर भी उनको बुरी तरह डाटकर उनकी भर्त्सना कर देते हैं या नही ?

८८. अपनी गलती सुधारते समय क्या आप अपने को बहुत नीचे गिरा लेते हैं ?

८९. क्या पास मे पिस्तौल न रहने के कारण आपको बदमाशो से हमेशा भय बना रहता है ?

९०. यदि आपके ये रहस्य, जो इन प्रश्नो के उत्तर के रूप में प्रकट हुए है, आपके मित्रो को बता दिए जाएं तो चित्त मे आपको कुछ व्याकुलता तो नही होगी ?

९१. क्या आप उठने-बैठने, खाने-पीने मे सब मित्रो के साथ समानता का व्यवहार करते है ?

९२. परिचितो के साधारण पत्रो का उत्तर क्या आप तत्काल दे देते है ?

अपने उत्तरों को तोलिए

आपने 'हां' या 'नही' में उत्तर दिए होगे। हम भी उसी प्रकार उत्तर देते है। दोनो का मिलान कीजिए। यदि अनुकूल उत्तरो की सख्या ७५% निकले तो अपने को प्रथम श्रेणी मे, ५०% निकले तो द्वितीय श्रेणी मे, ३५% निकले तो साधारण श्रेणी मे पास समझिए। यदि इससे कम निकले तो आप जिस श्रेणी के मनुष्य है, उसी श्रेणी मे पड़े रहेगे और आपके पीछेवाले शीघ्र आपके समकक्षी होकर आगे बढ़ते जाएंगे।

१. हा। २. हां। ३. हा। ४. नही। ५. नही। ६. हा। ७ नही। ८ हां। ९. हा। १०. हां। ११. नहीं। १२. हा। १३. हां। १४. नहीं। १५. नही। १६. हा। १७. हा। १८. हा। १९. नही। २०. नही। २१. नही। २२. नहीं। २३. हां। २४. नही। २५. नही। २६. हा। २७. नही। २८. नही। २९. नहीं। ३०. नही। ३१. नही। ३२. नही। ३३. नही। ३४. हां। ३५. हा। ३६. नही। ३७. नही। ३८. नही। ३९. नही। ४०. नही। ४१. नही। ४२. नही। ४३. नही। ४४. नही। ४५. नही। ४६. नहीं। ४७. नही। ४८. हां। ४९. नही। ५०. नहीं।

५१. नही। ५२ नहीं। ५३ नहीं। ५४. नही। ५५ नहीं। ५६. नही। ५७. हा। ५८. हा। ५९. नही। ६० नही। ६१. नही। ६२. हा। ६३. हा। ६४. हा। ६५. नही। ६६. नही। ६७. नही। ६८ हा। ६९. नहीं। ७०. नही। ७१. नही। ७२. हा। ७३. हां। ७४ नहीं। ७५ नही। ७६. हा। ७७. हा। ७८. हां। ७९ नही। ८०. हा। ८१. नही। ८२ नही। ८३. हा। ८४. नही। ८५ हां। ८६. नही। ८७ नही। ८८. नही। ८९ नही। ९०. नही। ९१. हा। ९२. हां।

इन सब उपायो का सम्मिलित प्रयोग करके आप दूसरो के व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे विशेष रूप से जानकार हो सकते है। पिछले अन्य अध्यायों मे वर्णित बातो को भी ध्यान में रखिए। यदि साधारण दशा मे किसीको आप न पहचान सकें तो उसको उन्मत्त दशा मे देखिए। चाहे जिस तरह का उन्माद हो, मनुष्य उसमे अपने असली रुप मे खुल जाता है क्योकि तब बुद्धि का चातुर्य नही चलता। मुख्यतः मद्य, भग आदि के मद में तो व्यक्तित्व का नग्न रूप दिखलाई पडता है। इसपर सुश्रुत ने वैज्ञानिक ढग से विचार किया है। उसके अनुसार सात्त्विक स्वभाव के मनुष्य में उत्पन्न हुआ मद, पवित्रता, उदारता, प्रसन्नता, शरीर के शृगारित करने की लालसा, गायन, अध्ययन, कीर्तिकर कार्य करने की इच्छा, भोग और उत्साह की भावना उद्दीप्त करता है। राजस स्वभाव वाले मनुष्य में मदाधिक्य से दु खशीलता, आत्मनाशक कर्म, साहस और कलह की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। तामस प्रकृति के मनुष्य मे अपवित्रता, मत्सर, झूठ बोलना और तरह-तरह की कुप्रवृत्तिया मद्य पीने के अनन्तर जगती हैं। तभी आप नीच प्रकृति के लोगो को नालियो में लोटते हुए पाते हैं। इसका कारण सुश्रुत के मत से यह है —प्राय सभी अपनी मूल प्रवृत्तियो को एक अश तक रोककर रूढि और लोकप्रथा के अनुकूल आचरण करते हैं। मद्य के प्रभाव से प्रकृति उत्तेजित होकर उस कृत्रिम बन्धन को तोड-कर स्वच्छन्द हो जाती है, उस समय मन की वे सभी गूढ बातें, जो भीतर ही भीतर हमारे आचार-विचार को प्रभावित करती रहती है, सबल

होकर प्रकट हो जाती है। मद्य को इसीलिए चरक ने 'प्रकृति-दर्शक' कहा है। आधुनिक वैज्ञानिक भी मानते है कि मानव-प्रकृति के अनुसार ही मद-प्रभाव में भिन्नता होती है। शराब के नशे ही मे नहीं, सिगरेट-तम्बाकू के नशे मे भी मनुष्य अपनी आन्तरिक प्रवृत्ति के अनुसार चेष्टाए करता है। अतएव ऐसे अवसरो पर उसकी मुखमुद्रा, व्यवहार, बातचीत का अध्ययन करना चाहिए। यदि किसी की आकृति आपकी समझ में न आए तो वृद्धो की आकृति की परीक्षा कीजिए। किसी अंग्रेज ने सोलह आने सत्य लिखा है कि वृद्धावस्था मे मनुष्य को वही आकृति मिल जाती है जिसका कि वह पात्र होता है।[1]

तेजस्वी का चेहरा वृद्धावस्था मे अधिक सतेज हो जाता है, नीच विचारो के मनुष्य का चेहरा राख या कोयला हो जाता है। गाधीजी की आकृति तो मरने के बाद भी सजीव लगती थी।

हम समझते है, इस विषय पर इस अध्याय मे आपको पर्याप्त सामग्री मिल जाएगी। आप दूसरो को सूक्ष्मता से देखिए और इसका भी ध्यान रखिए कि अन्य लोग भी वैसी ही सूक्ष्मता के साथ आपको देखते होगे। अतएव दूसरो के निकट-सम्पर्क मे आने के लिए अपने रूप में, आचार-व्यवहार और चेष्टाओ आदि में यथावश्यक सस्कार कीजिए।

---

1. In old age men acquire the faces they deserve.

९. आत्म-परीक्षा

निम्नलिखित प्रश्नो के उत्तर देकर आप अपनी त्रुटियो को स्वयं समझिए, क्योकि प्राय. दूसरे लोग शिष्टता या सकोचवश आपकी त्रुटियो को देखते हुए भी चुप रहते हैं। इन प्रश्नो को हमने जानबूझकर एक क्रम मे नही रखा है :

प्रश्न

१. कई प्रसग ऐसे आते हैं जबकि किसी कार्य के करने या न करने के सम्बन्ध में आपमे और आपकी आत्मा मे भीतर ही भीतर सघर्ष होता है। उस दशा में क्या आप अन्त मे आत्मा पर विजयी हो जाते है अथवा आपकी आत्मा ही आपको पराजित कर देती है ?

२. आपके मन मे कभी-कभी अनायास हर्ष या शोक की तरगे उमड़ पड़ती होगी। क्या आप उनमे तत्काल वह जाते हैं या कुछ देर तैरते भी है ?

३. आपके मन मे कोई विस्फोटक पदार्थ तो नही है जिसके कारण आप बातो की साधारण चिनगारी से दगने लगते है ?

४. क्या आपको आते देखकर लोग भयवश मन ही मन सकट-मोचन का पाठ करने लगते हैं ? दूसरे शब्दो मे—क्या लोग आपसे यह समझकर डरते हैं कि 'जनि कहइ कछु विपरीत जानत प्रीति-रीति न बात की' ?

५. जब आप बोलने लगते हैं तो आपके कठ से सुन्दर शब्दमाला निकलती है अथवा हवाई बन्दूक दगने लगती है ?

६. क्या यह सत्य है कि दूसरो की प्रशसा करते समय आपको शब्द-दारिद्रय का अनुभव होता है और निन्दा करते समय सहस्रनाग की जिह्वाएं मिल जाती है ?

७. जब आप दूसरो से मिलते हैं तो जासूस की तरह तो नही प्रतीत होते ? अथवा आपको लोग किसीका भेदिया तो नही समझते ?

८. आसपास कोई भी झगड़ा होने पर क्या नारद की तरह आपका नाम उसमे नत्थी कर दिया जाता है ?

९. किसी न किसीसे उलझते रहने का क्या आपको 'अमल' पड गया है ?

१०. क्या यह सत्य है कि किसी विषय को अतिरजित किए बिना आप उसको व्यक्त नही कर सकते ?

११. कलियुग को दोष देना, विधाता के विधान को उलटा बनाकर उसकी आलोचना करना, अपनी दुर्दशा का सारा उत्तरदायित्व गवर्नमेंट, भगवान् या किसी अन्य व्यक्ति पर डाल देना तथा अतीत काल के गौरव और सुखो की एक लम्बी सूची बनाकर उसका पाठ करना—क्या यही आपकी बातचीत के मुख्य विषय होते है ?

१२. किसी से मिलते ही क्या आप तत्काल आत्मकथा कहने लगते है ?

१३. परछिद्रान्वेषण करके आप दूसरो के दोष कठस्थ रखते हैं कि नही ?

१४. क्या आपको जो मिलता है वही धूर्त, अविश्वासी या बेईमान होता है ?

१५. आप ही दूसरो का गुणगान करते है या आपका भी गुणगान करनेवाला कोई है ?

१६. आपकी प्रशसा कौन अधिक करता है ? आप स्वय या आपके मित्रगण या शत्रु ?

१७. आपके मित्रों की संख्या अधिक है या शत्रुओ की ?

१८. क्या हवा के साधारण झोके से भी आप छीकने लगते है ? दूसरे शब्दो में, क्या साधारण बातो से भी आपके हृदय में बड़े-बड़े छाले पड़ जाते है ?

१९. क्या आप दूसरों को भ्रम में डालने का व्यवसाय करते हैं ? दूसरे शब्दो मे—खाकी कमीजहाफपैण्ट पहनकर तथा नकली तमचा लटकाकर या प्रान्तीय रक्षा-दल में भर्ती होकर क्या आप यह प्रचार करते घूमते है कि आप सब थानेदारों के सिरमौर हो गए अथवा किसी अफसर की हां-हुजूरी करके लौटने के बाद क्या आप यह प्रचारित करते हैं कि आप साहब से गप्प करने गए थे और उन्होने शासन-सम्बन्धी अनेक मामलो मे आपसे राय ली है; अथवा छठे-सातवें तक पढकर क्या आप दूसरो को यह बताने की चेष्टा करते है कि आप इतने योग्य हैं कि बड़े-बड़ो के कान कतरते है; अथवा कल्पित नौकरी पाकर क्या आप यह विज्ञापित करते हैं कि आप उच्च पदाधिकारी हो गए या होने जा रहे हैं ?

२०. क्या आप अपनी महिमा को पूर्वजो की गौरव-गाथा सुनाकर बढाते है ।

२१. क्या आप बात-बात में धमकी देते हैं, दूसरो को चौंकाते हैं और इस प्रकार काम निकालने की चेष्टा करते हैं ?

२२. क्या आप हर प्रकार की प्रतियोगिता से घबराते है और शकित रहते हैं कि दूसरे लोग आपसे आगे न बढ जाए ?

२३ क्या आपके नौकरो की सूची में भगवान् का भी नाम है ? अर्थात् क्या आप यह सोचते है कि अमुक काम भगवान् चाहेंगे या करेंगे, तभी होगा ?

२४. गर्मी मे प्रचड धूप, बरसात मे मूसलाधार वर्षा, जाडे में खासी-बुखार और शीत-प्रकोप—ये तीनो आपके कार्य मे बाधक होते होगे । घर छोड़ते समय घर के सुख, घरवालो के मोह के अतिरिक्त दिशाशूल, अशुभ मुहूर्त, अपशकुन प्राय. आपके पैर पकड ही लेते होगे । दूर जाना है—'परदेस कलेस नरेसुहु को', सभी तो वहा पराए होते हैं, काम अकेले नही हो सकता—ये चिन्ताए आपको प्रायः बैठा रखती होगी । क्या हमारा अनुमान सत्य है ?

२५. क्या अधिकाश कार्यो मे आप अपने को असमर्थ पाते है और

निराश हो जाते है ?

२६. क्या यह सत्य है कि आपका घर ही आपका बन्दीगृह हो गया है, जहां स्त्री जेल सुपरिंटेण्डेण्ट है और बच्चे जेल-फाटक के सिपाही है ?

२७. यह कहा तक सत्य है कि यदि आपको घर के झझट न होते तो आप अधिक सुख से रहकर लोक मे बड़ी उन्नति कर सकते थे ?

२८. आपकी बात का लोग एक अर्थ लगाते है या अनेक ?

२९. दूसरो से आप विचारो के आदान-प्रदान के लिए मिलते हैं अथवा अपने मत की पुष्टि करने के लिए ?

३०. प्राय: जब आप किसीसे मिलते हैं तो क्या आपका श्रोता आपकी बातें सुनते-सुनते ऊघने लगता है ? अथवा, क्या वह हा-हू करता हुआ साथ-साथ कोई अन्य कार्य भी करने लगता है ?

३१. बातचीत में आपको खडन-मडन अधिक प्रिय है, या हा मे हां मिलाना अथवा बाल की खाल खीचना या ईंट का जवाब पत्थर से देना ?

३२. लोगो के बीच मे जाने पर क्या आपके मन मे यह भावना उठती है कि सभी आपको तथा आपकी वेशभूषा को घूर-घूरकर देख रहे हैं, और आप पर टूट पडना चाहते हैं तथा चारो ओर आपकी त्रुटियो की चर्चा हो रही है ?

३३. जब किसी सभा-समाज मे आप जाते है तो प्राय: अपने बैठने के लिए कोई कोने का स्थान अवश्य ढूंढते होगे। बैठने पर आपका चित शान्त रहता होगा। और कही यदि सबके बीच मे बैठना पडे तो आपका हृदय धड़कता होगा, आखे फडकती होंगी और आप रह-रहकर भड़कते होगे। क्या हमारा यह अनुमान आप ही के सम्बन्ध मे है या किसी अन्य के ?

३४. क्या दिन मे कई बार आपकी टोपी या पगडी उछलकर दूसरों के पैरो मे गिर पड़ती है ? अर्थात् क्या आप बहुतों के कृपापात्र या ऋणी हैं ?

३५. क्या आप प्राय: नतमस्तक रहते है या कमर झुकाकर चलते है ?

३६. क्या आपको किसी के साथ मित्रता निभाने मे विशेष कठिनाई होती है और आप अपने मित्रो को उतनी ही बार बदलते है जितनी बार कोई धूर्त व्यक्ति अपनी बातो को बदलता है या पलटता है ?

३७. क्या आपके कुछ गुप्त मित्र भी है जिनसे आप छिपकर मिलते है ?

३८. काव्य, कला, साहित्य, सगीत, नृत्य या किसी मनोरजक कार्य से आपको सहज अनुराग है कि नही ?

३९. क्या आप कोई दैनिक समाचारपत्र पढ़ते है ? यदि पढते है तो कैसे समाचारों मे रुचि है ? चोरी-डाके के रोमाचकारी वृत्तान्त, दुराचार के समाचार, कही बिजली गिरने या रेल से भैंसा कटने का हाल तथा पति ने पत्नी की नाक काट ली—ये विवरण आप विशेष रूप से पढते हैं या दवाओ के विज्ञापन ?

४०. क्या यह सत्य है कि जो आपको त्रास दिखलाता है उसके आप अवैतनिक दास बन जाते हैं और जो आपके आगे विनम्रतापूर्वक झुकता है, उसकी गर्दन पर चढ जाते है ?

४१. आप कम हसते हैं या अधिक ? अट्टहास पसन्द करते हैं या मुस्कान ? कण्ठ से ही हसते हैं या हृदय से भी ? दूसरो का उपहास करते हैं या हास्य-विनोद ? अपने से बडो के साथ हसी-मजाक करते हैं या समान श्रेणी के लोगों के साथ अथवा नौकरो के साथ भी कर लेते है ?

४२. नगर-मुहल्ले या पड़ोस के समारोहो मे आप आदरपूर्वक आमन्त्रित होते है कि नही ? आमन्त्रित होकर जाने पर आमंत्रक आपके शुभागमन से प्रसन्न होता है या आप ही अपने को धन्य मानते हैं ?

४३. आप प्राय: कुछ ऐसी बीमारियो से पीड़ित रहते होंगे जिनका निदान नही हो पाता ?

४४. क्या यह सत्य है कि कोई भी बात आपके पेट मे पहुंचते ही जुलाब की गोली बन जाती है ?

४५. आप अपने बच्चो के बाप है या अध्यापक अथवा दोनो ?

४६. आप अपनी स्त्री के स्वामी है या सखा अथवा दास ?

४७. आप किसी चचला या चडी के पति तो नही हैं ?

४८. आपके घर मे पधारते ही सन्नाटा छा जाता है या तूफान चलता है ?

४६. शत्रुओ पर वज्रपात कराने के लिए आप भगवान् को रोज़ मनाते है कि नही ?

५०. क्या आप स्वय अपने आदर्श है ?

५१. एकाएक कोई ऊचा पद पाकर आप आपे से बाहर तो नही हो जाते ?

५२. क्या प्रत्येक कार्य की सफलता का श्रेय आप स्वयं लेना चाहते है ?

५३. आप शीघ्र प्रसन्न होनेवाले तो नही है ?

५४. स्वप्नावस्था मे आप भयानक दृश्य देखते है, या सुन्दरी स्त्रियो को अथवा खाद्य-पदार्थों को ?

५५. क्या आप पैर पटकते हुए चलते है ?

५६. यदि आप दुकान खोलकर बैठते है तो गम्भीर बने रहते है या नही ?

५७. क्या आप नियम से प्रतिमास अपने स्त्री-बच्चो को कुछ जेब-खर्च देते है ?

५८. चूर्णों या ओषधियो मे किन-किनका प्रयोग आप करते हैं ?

५६. किसी कार्य मे असफल होने पर आप मूर्छितावस्था मे हो जाते है या विशेष सचेत ?

६०. क्या आपके मन मे कभी-कभी आत्मघात के विचार आते है ?

६१. क्या कभी-कभी ऐसा होता है कि अनायास आप को सफलता पर सफलता मिलती है ?

६२. आप आवश्यकता से अधिक आशावादी या निराश तो नहीं है ?

६३. आप आवश्यकता से अधिक प्राचीन या अर्वाचीन तो नही हैं ?

६४. आपके व्यवसाय पर आपके व्यक्तिगत चरित्र का कोई असर नही पडता—इसे तो आप मानेंगे ?

उत्तर

१. यदि किसी विषय मे आप मे और आपकी आत्मा मे, अर्थात् अच्छी कामना और विवेक मे, द्वन्द्व हो तो आत्मा से हार मान लेने ही मे जीत होती है। आत्मप्रेरणा के रूप मे ईश्वर का सकेत मिलता है। कालिदास ने लिखा है कि सदेहास्पद विषयो मे सज्जन लोग अपनी आत्मा की गवाही को ही प्रमाण मानते हैं :

सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु ।
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।। (कालिदास)

२ अमरीका के कुछ प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिको ने अध्ययन करके देखा कि हर तैंतीसवें दिन प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क मे हर्ष या शोक-भावना की एक प्राकृतिक लहर आती है। हर्ष की भाव-लहर के उठने पर चित्त अकारण आह्लादित हो जाता है, बुद्धि में उदारता, सरसता, विनम्रता आ जाती है। शोक की तरग उठने पर अकारण उद्विग्नता, ग्लानि, क्रोध या विरक्ति की वासनाएं तीव्र हो जाती हैं। जिस दिन मनोभाव मे सहसा ऐसा परिवर्तन ज्ञात हो, उस दिन समझना चाहिए कि भावुकता की प्राकृतिक तरग उठी है। उस दशा मे चित्त-प्रवृत्ति हर्ष या शोक की ओर झुकी हुई मिलेगी। तैंतीसवें दिन चित्त-दशा में वैसे ही परिवर्तन फिर होगा। यह क्रम चलता रहता है, परन्तु यह निश्चित नही कि एक बार हर्ष-वेग उठने पर दुबारा भी वही उठेगा। हर्ष के बाद शोक भी उठ सकता है। किसी-किसी को चौंतीसवें या पैंतीसवें दिन ये लहरें उठती हैं और उसी क्रम से आगे उठती रहती हैं। पाचवे सप्ताह में इसका

अनुभव अवश्य होता है। भावोन्माद मे सावधान रहना चाहिए और सहसा कोई भावुकतापूर्ण कार्य न करना चाहिए।

३. यदि आप सहिष्णु हैं तो आपके मित्रो की सूची मे किसी वेहया या अभागे का नाम ही शेष होगा। जो बात-बात में उत्तेजित होता है, वह पागलपन की सड़क पर निराशा की मोटर पर सवार होकर चलता है।

४. यदि लोग आपकी दुःशीलता के कारण आतंकित रहते है तो आप किसी संक्रामक रोग से कम भयकर न होगे। यह मानव-स्वभाव है कि जो जिससे भयभीत या शंकित रहता है, वह उससे प्रेम नही करता। यदि आप इतने दुर्मुख है कि लोग आपसे बातें करने मे डरते हैं तो आपको समाज से सच्ची सहानुभूति नही प्राप्त हो सकती। ऐसे स्वभाव के व्यक्तियो को तुलसी ने खल-वर्ग में नाना है :

वचन-वज्र जेहिं सदा पियारा।
सहसनयन पर-दोष निहारा॥ (मानस)

५. यदि आप कर्कशभाषी है तो आपकी बातो का किसी पर प्रभाव न पड़ता होगा। मनोहर शब्दो मे कठोर तर्क उसी प्रकार प्रभावशाली होता है, जैसे सुन्दर नेत्रो में कटाक्ष। शब्दो की हवाई बन्दूक दागने से जीवन-सग्राम मे विजय नही मिलती।

६. यदि आप दूसरो की प्रशसा करने मे असमर्थ और उनकी निन्दा करने में सर्वसमर्थ है तो अवश्य ही आपका हृदय दुर्भावनाओ से भरा रहता होगा। लोग आपके पास बैठने मे घबराते होगे और आपका विश्वास भी कम करते होगे। निन्दक दूसरो की कालिमा अपने मुह में लगाए घूमता है, इसको सत्य मानिए।

७. किसी सभ्य समाज मे यदि आप दूसरो के भेद जानने का प्रयत्न करेंगे, अकारण दो आदमियो की बातें सुनने का प्रयत्न करेंगे, दूसरो की चिट्ठिया पढ़ने का प्रयत्न करेंगे, दूसरो से कान मे या धीरे-धीरे बातें करने का प्रयत्न करेंगे, तो अवश्य ही लोग आपको भेदपूर्ण

दृष्टि से देखेंगे। सम्भव है, आप घबराहट के कारण भौंचक्के होकर दूसरो को आंखें फाड-फाड़कर देखते हो, जिसके कारण लोग आपको जासूस जैसा समझते हो। कुछ भी हो, शंकापूर्ण दृष्टि से देखा जाना अपमानजनक होता है।

८. यदि झगडो मे आपका नाम नारद की तरह नत्थी कर दिया जाता है तो इसका कोई कारण होगा; व्यर्थ ही आप देवर्षि के अवतार न बन गए होगे। अधिकाश विवादो मे पड़ जाने के आप व्यसनी होगे, अथवा इधर की बात उधर लगाने मे प्रसिद्ध या स्वभाव से कलहप्रिय अथवा पक्षपाती। किसी खास झगडे मे सभव है आपका हाथ न हो, परन्तु पहले आप आग लगाने की यथेष्ट कीर्ति अर्जित कर चुके होगे जिसके कारण कही भी आग लगने पर लोगो को आपका ही नाम याद आता होगा। कीर्ति मनुष्य के आगे-आगे दौडती है। दूसरो के झगड़ो मे न पड़ने ही मे बुद्धिमानी है, पड़े भी तो निष्पक्ष होकर।

९ बहुत-से लोगो का ऐसा स्वभाव बन जाता है कि वे दिग्विजय करते हुए चलते हैं, अकारण भी किसी न किसी पर उलझ कर उसको पेरते हैं। कोई झगड़ने वाला नही मिलता तो वे किसी पर कल्पित अभि-योग लगाकर उसको विवश करते है कि वह अखाड़े मे आ जाए। कुटु-म्बियो, सम्बन्धियो, मित्रो, नौकरो आदि पर दैनिक अत्याचार करने का उनको व्यसन होता है। यदि आप ऐसे है तो किसी ऐसे आदमी को मित्र या नौकर बनाइए जो अभ्यस्त बेहया हो। उसी को सिल्ली बनाकर रोज़ अपनी जिह्वा को पहट लिया कीजिए। यदि आप ऐसा न करेंगे तो आपको अनिद्रा या अजीर्णता अथवा ज्वर या मधुमेह हो जाएगा। शेख-सादी को भी एक ऐसा अमली मिला था जिसका वर्णन उन्होंने गुलिस्ता में किया है। एक बादशाह था जो प्रतिदिन किसी न किसी को सताता रहता था। एक दिन एक साधु उससे मिलने आया। बादशाह ने उससे पूछा कि मेरे लिए कौन-सी पूजा सर्वोत्तम होगी ? साधु ने कहा—दिन का सोना, क्योकि जब तक आप सोएगे, कम से कम तब तक गरीबों की

जान सांसत से बची रहेगी और आपको पुण्य मिलेगा।

१०. यदि आप सत्य के ऊपर कल्पना का पहाड़ लादने के आदी होगे तो सत्य अवश्य ही मर जाता होगा। बातो को मनोरजक बनाने के लिए जो लोग उनमे कल्पना के पख लगाते है, उनके हाथ से बातें निकल जाती है। नमक-मिर्च लगाना या बढा-चढाकर बातें करना अथवा तिल का ताड़ बनाना आत्मसम्माननाशी होता है। इसका अभ्यास हो जाने पर वक्ता स्वय अपनी कल्पित कथाओं को सत्य मानने लगता है और श्रोता-गण उसकी सत्यकथाओ को भी कल्पित समझने लगते हैं।

११. अपनी विफलता का दोष समय या किसी अन्य के सिर मढने से अपनी अकर्मण्यता का विज्ञापन होता है। यदि आप सबल है तो आपको सभी सहायक मिलेंगे, और आप अतीत को न देखकर भविष्य को देखेंगे : 'सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।'

१२. यदि आप सर्वत्र अपनी ही चर्चा करते हैं तो लोग आपसे ऊबते होगे। अपनी राम-कहानी कहने का व्यसन पड़ जाने पर मनुष्य आत्मघोष (कौवा) जैसा लगता है जो अपना ही नाम रटता है।

१३. यदि आप पर-छिद्रान्वेषी है तो समाज आपको मक्खी जैसा समझता होगा। दूसरो के दुर्गुणो को देखकर कहते फिरना वैसा ही है जैसा गलियो का कूडा गाड़ियो में भरकर ले चलना। उससे अपने गदे स्वभाव का विज्ञापन होता है। दूसरो के सद्गुण जिह्वा पर रखना वैसा ही है जैसा कपड़े पर इत्र लगाना। इसके विपरीत दुर्गुणो को जिह्वा पर रखना वैसा ही है, जैसा किसी दुर्गन्धित पदार्थ को जेब मे भरकर चलना। किसी की निन्दा करने के पूर्व निन्दक स्वयं निन्दा का पात्र हो जाता है।

१४. यदि अपने अतिरिक्त अन्य सभी को आप धूर्त या विश्वास के अयोग्य मानते है तो आप स्वयं स्वभाव के कच्चे एवं संशयालु होगे। जो सबको बेईमान समझता या बनाता है, वह स्वयं बेईमान होता है। विश्वास विश्वास से ही जमता है। जो स्वयं विश्वासपात्र होता है, उसको

दूसरे भी विश्वासपात्र मिलते हैं। जो सदेहग्रस्त होता है, उसको अपने स्त्री-बच्चो के ऊपर भी सन्देह होता है।

१५. यदि आप दूसरो के ही गुणगान करते है और स्वय प्रतिष्ठित नही हैं तो आपका महत्त्व किसी चारण से अधिक न होगा। यदि आप गुणी हैं तो आपके गुणगायक भी होगे। दृश्य को दर्शक की कमी नहीं रहती।

१६ आत्मप्रशसक हीनकोटि का व्यक्ति होता है। मध्यमकोटि के मनुष्य की प्रशंसा उसके मित्रगण भी करते हैं। उत्तम पुरुष की उसके शत्रु भी करते हैं। कर्ण की प्रशसा कृष्ण भी करते थे :

स्वत. तथा मित्र-समाज से सदा,
कहा नही कौन प्रशसनीय है।
गुणी वही है जिसके प्रभाव की,
करें विरोधीजन भी सराहना॥ (अगराज)

१७. यदि आपके मित्रो की सख्या अधिक है तो यह आपकी तेजस्विता, मिलनसारिता और विश्वासपात्रता का परिचायक है। सज्जन और शूरवीर सदैव अजातशत्रु होते हैं। यदि आपकी शत्रु-सख्या अधिक है तो आप स्वभाव, व्यवहार, पुरुषार्थ से कुटिल, असभ्य या असमर्थ होंगे। संभवत. आप षड्यन्त्री, कटुभाषी या परद्वेषी होगे। अधिक संभव है कि आप अशक्त अतएव भयशील अतएव महाक्रोधी हो। इस सर्प-स्वभाव के कारण लोग लाठी लेकर आपके पीछे पड़े रहते होगे। सर्प शरीर से निर्बल, स्वभाव से बहुत भीरु और उत्तेजित होने पर महाक्रोधी और दुस्साहसी होता है। तीनो बातें प्राय. साथ चलती है : 'क्षीणा नराः निष्करुणा भवन्ति।' मित्र और शत्रु की सख्या तुलना करते समय इस बात का ध्यान रखिए कि बीस मित्र बराबर हैं एक शत्रु के।

१८ दुर्बल व्यक्ति को जिस प्रकार साधारण जलवायु के परिवर्तन से जुकाम हो जाता है वैसे ही दुर्बल हृदय वाले साधारण बातो से 'छू' जाते है। मिथ्या अहकार से लोगों को मनोमालिन्य होता है। ऐसे

व्यक्तियो को मित्र-सकट सदैव रहता है ।

१९. मूर्ख, अकुलीन और अल्पज्ञ का प्रथम चिह्न यह है कि वह अपना ही मिथ्या विज्ञापन करता रहता है । 'विद्वान कुलीनो न करोति गर्वं, गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति'—इस सम्बन्ध में महामना सुकरात के इस मत को मानना चाहिए कि ससार में सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का सरल और निश्चित उपाय यही है कि मनुष्य वास्तव में जैसा हो वैसा ही अपने को व्यक्त करे ।[1]

जार्ज बर्नार्ड शॉ के इस मत को भी ध्यान मे रखना चाहिए कि दरिद्र बने रहने का एक अच्छा उपाय है—अपने को धनी बताना या धनी होने का ढोंग करना ।[2]

क्षुद्र प्रकृति के व्यक्तियो की यह प्रवृत्ति होती है कि वे अपने प्रभाव का झूठा विज्ञापन करके दूसरों की दृष्टि में अपने को उच्च दिखलाने का प्रयत्न करते है । किसी बड़े आदमी की साधारण जान-पहचान का वे अनुचित लाभ लेना चाहते हैं और लेते भी हैं, परन्तु एक अवसर ऐसा आता है जब उनकी रही-सही प्रतिष्ठा भी मिथ्या प्रतिष्ठा के साथ धूल में मिल जाती है ।

२०. यदि आप स्वयं कीर्तिवन्त न होकर केवल पूर्वजो की कीर्ति के बल पर अपने को पुजवाना चाहते है तो यह आपका भ्रम है । चाणक्य ने लिखा है कि गुणी लोग अपने ही गुणो से प्रकाशित होते है, जन्म (अर्थात् जाति-कुल आदि) को कौन देखता है :

प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो
गच्छन्ति किं जन्मना ।

पूर्वजो के यश पर ही रहने वाले को हम आलू-वर्ग का प्राणी मानते

---

1. The shortest and surest way to live with honour in the world is to be in reality what we would appear to be.

—Socrates.

2. A good way of keeping poor is pretending to be rich.

—G. B. Shaw.

है। आलू की तरह उसका सर्वस्व पूर्वजो की मिट्टी के भीतर गड़ा रहता है। स्वयं यशस्वी होने पर पूर्वजो का यश सहायक होता है, न होने पर अपनी महिमा और भी घट जाती है, क्योकि लोग कहते हैं कि ऐसे उच्च कुल में यह तुच्छ व्यक्ति कहा से पैदा हुआ। शॉ ने तो यहां तक कहा है कि किसी बड़े आदमी का सम्बन्धी होना बडा दु खदायी है, क्योकि उसी के नाम से हमारा परिचय दिया जाता है, और हमारे स्वतन्त्र व्यक्तित्व की गणना ही नही होती।[1]

२१ धमकी देनेवाला सदा कायर होता है।[2] शक्तिवान् पुरुष धमकी नही देता। वह तो जो चाहता है उसको करके दिखा देता है। चौकनेवाली बातो से लोगो को आकर्षित करने वाला झूठा गिना जाता है और प्राय: ईसप की कहानियो मे वर्णित गड़रिये की तरह धोखा खाता है। वह गड-रिया रोज 'भेड़िया आया, भेडिया आया' कहकर चिल्लाता था। लोग सहायतार्थ दौड़कर जाते तो देखते कि वहा कुछ नही था। एक दिन सच-मुच भेड़िया आ गया। गड़रिया बहुत चिल्लाया, परन्तु लोग यह समझ-कर नही गए कि उसको चौकाने की आदत ही है। भेडिया उसको खा गया।

२२ स्वाभाविक भीरुतावश प्राय. लोग प्रतियोगिता से घबराते है और ऐसे ही कामो में हाथ लगाते है जिनमें प्रतियोगिता का भय नही रहता। वे डरते है कि कहीं विफल होने पर लोग उनकी हसी न उडाए। इससे उत्साह, साहस और आत्मविश्वास की कमी प्रकट होती है। मनस्वी व्यक्ति सदैव प्रतियोगिता का स्वागत करता है क्योकि उससे आत्मयोग्यता प्रमाणित होती है, अपने बलाबल का ठीक पता चल जाता है। अमरीका के गत प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट ने एक बार अपने राजसचिव 'कार्डेल हल' से कहा था कि थोडी स्पर्द्धा या प्रतियोगिता की भावना उत्साहदायिनी होती

---

1. It is maddening to be related to a celebrated person and never be valued for own sake. —G. B Shaw.

2 Bullies are always cowards —G. B. Shaw.

है, क्योकि वह प्रत्येक व्यक्ति में यह भावना जागरित रखती है कि वह अपने सहकर्मी से अपने को अधिक योग्य प्रमाणित करके दिखलाए; इसके कारण वे सच्चे भी बने रहते हैं।[1]

२३. यदि आप यह सोचते हैं कि भगवान् आपका काम करेगा तो उस सर्वेश को आप अपना कुली बनाते है। कोई सत्ता-महत्ताधारी किसी का सेवक होना स्वीकार नही करता। इस दुस्साहस के लिए सम्भवत. वह आपको दण्ड भी दे। 'होइहै सोइ जो राम रचि राखा' —यह कर्महीनो और भाग्यहीनो का मंत्र है। शुक्र के शब्दो मे नपुंसक लोग ही कार्य-सिद्धि के लिए देवता के भरोसे बैठते हैं: 'क्लीबा दैवमुपासते।' और वन्दनीय बुद्धिमान् लोग पौरुष ही को महत्त्व देते: 'धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुष महत्।'

देवता को सहायतार्थ पुकारना अशक्तता का लक्षण है। इसका प्रबल प्रमाण यह है कि रोग से अशक्त होने पर प्राणी के मुख से स्वभावतः राम-नाम निकलता है। नीति का मत है कि पुरुषार्थी उद्योग से लक्ष्मी को प्राप्त करता है। 'देवता देते है'—ऐसा कापुरुष लोग कहते है; दैव को भूलकर पुरुषार्थ करो और यत्न करने पर भी सफलता न मिले तो देखो कि त्रुटि कहा है:

उद्योगिन पुरुषसिहमुपैति लक्ष्मीः,
दैव हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैव निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोष॰॥

तुलसी ने भी लिखा है कि:

कादर मन कर एक अघारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥

---

1. A little rivalry is stimulating, you know. It keeps everybody going to prove that he is a better fellow than the next man. It keeps them honest too. —Roosevelt.

स्वावलम्बन के बिना देवता का भी अनुग्रह नही मिलता। देवबल होता है, परन्तु वह बाहर से नही आता; आत्मसाधना, बुद्धिप्रयोग से ही उत्पन्न होती है। जो देवप्रिय होने की आशा मे बैठा रहता है वह बकरा, पशु, मूर्ख या पागल ही होता है। देवप्रिय के ये शाब्दिक अर्थ है।

सर्वोत्तम यह है कि आप अपने पुरुषार्थ को उद्दीप्त रखिए। इस विषय मे महावीर कर्ण को आदर्श मानना चाहिए। सूतकुल मे पलकर आत्मपौरुष से उसने आत्मोत्थान किया, राज्य-स्थापना, दिग्विजय की ओर निर्भय होकर पुरुषार्थ दिखाते हुए कर्मक्षेत्र मे प्राण-त्याग किया, पुरुपार्थ से उसने देव कृष्ण तक को मोहित और मर्यादाभ्रष्ट कर दिया। राजसभा में कृष्ण के समक्ष कुरुराज द्वारा कही हुई अपनी लिखी यह कर्ण-प्रशस्ति हमे इस प्रसग में याद आती है :

स्वबाहु से अर्जित राज्य-कीर्ति के,
स्वकर्म से सचित भाग्य के धनी।
हठोद्यमी, सत्य-पराक्रमी तथा,
अनन्य दानी नर-राज कर्ण हैं ॥

× × ×

स्वय विधाता इनके ललाट की,
अदृष्ट-लेखा यदि मेटने लगे।
कभी न होगे मन मे हताश ये,
समर्थ जो हैं पुरुषार्थ शक्ति से ॥ (अगराज)

२४. जिसके काम में शीत, उष्ण, भय, प्रेम, धन तथा दारिद्र्य बाधक नही होते, वही पडित कहलाता है, ऐसा विदुर का मत है :

यस्य कृत्य न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भय रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥ (महाभारत)

उद्योगी पुरुष ऋतु, साधन-असाधन की अपेक्षा नही करता। आलसी ही धूप, ठंडक, बरसात और आर्थिक स्थिति से प्रभावित होता है। उद्योगी

का प्रत्येक पल शुभ-मुहूर्त होता है। उसके लिए कुछ भी भारस्वरूप नहीं होता, क्योंकि वह समर्थ होता है। व्यवसायी के लिए कोई स्थान दूर नही होता; विद्वान् को कोई स्थान पराया नही होता, क्योकि वह जहा जाता है वही विद्वत्ता से सबको अपना बना लेता है; प्रियवक्ता को कोई पराया नहीं होता, क्योकि उसकी वाणी में वशीकरण होता है :

कोऽतिभार. समर्थानां किं दूर व्यवसायिनाम् ।
को विदेश. सुविद्याना, कः पर. प्रियवादिनाम् ।। (पचतंत्र)

यदि आप ऐसे नही हैं तो निरुद्योगी और खिन्न एव हताश होगे।

२५. यदि कामो को करने मे आप अपने को असमर्थ पाते हैं तो यह काम की कठिनाई का नही, बल्कि आपकी अयोग्यता, अशक्तता और आत्महीनता का विज्ञापन है। कठिनाई का अनुभव बल, उत्साह की कमी और आलस्य से होता है। कार्लाइल के मत से अकर्मण्यता मे अनन्त निराशा ही मिलती है।[1] उद्योगी व्यक्ति के सामने साध्य-असाध्य का प्रश्न नही उठता, उसके लिए तो सभी कुछ साध्य होता है : 'उद्युक्ताना मनुष्याणां गम्यागम्य न विद्यते।' (मार्कण्डेय पुराण)।

यदि आप मनस्वी होगे तो कार्य की महत्ता को पहले देखेगे और कठिनाइयों की परवाह न करके उसको सफल करने मे तत्पर हो जाएगे। मनस्वी कार्यार्थी सुख-दु.ख की परवाह नही करते : 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दु ख न च सुखम् ।' (भर्तृहरि)।

२६. यदि आपने अपने घर को अपना बन्धनागार बना लिया तो आप बाहरी जगत् के लिए अनुपयुक्त होगे। गृहमोही कभी उन्नति नही करता। वह चिरमोही (गधा) होकर घर की माया में बधकर घर के आंगन मे ही नाचता और उसके लिए 'ज्यो तेली के बैल को घर ही कोस पचास' की उक्ति घटित होती है। वह स्त्री-बच्चों का मुह देखता हुआ पड़ा रहता है और कुछ दिनो में उसी का लटका हुआ मुंह देखने के योग्य हो जाता है। निर्धन होने पर उसके स्त्री-बच्चे भी उससे विरक्त हो जाते है। बिना

1. In idleness there is perpetual despair.

बाहर जाए मनुष्य यथाजात (अर्थात् जैसा पैदा होता है वैसा ही मूर्ख) बना रहता है।

इस सम्बन्ध में हमे अंग्रेजो या मारवाड़ियों का आदर्श सामने रखना चाहिए। 'जहां न जाए रवि, तहा जाए कवि' की तरह 'जहा न जाए गाड़ी, तहां जाए मारवाड़ी' की उक्ति कही जा सकती है। मारवाड़ी भी स्वदेश, स्वजाति, स्वकुल का अनन्य प्रेमी होता है, परन्तु वह बैठा नही रहता। व्यापार के लिए निकलने पर उसको गृहमोह नही सताता। देश-देशान्तरो में जाकर वह धन-संग्रह करता है और उससे अपने घर की समृद्धि बढ़ाता है। वह सब बातो मे दूरदर्शी होता है; दूर के व्यापार-योग्य स्थानों को देखता है, आगे आनेवाले अवसर को पहले ही देख लेता है; किस काम मे आगे चलकर लाभ होगा, उसको पहचान लेता है और लक्ष्मी कितनी दूर पर खड़ी है, इसको समझकर ठीक मार्ग पर चलता है।

२७ यदि आप घर को एक जजाल मानते है तो यह आपकी भूल है। उसी के नियन्त्रण से आपकी स्वभावज उच्छृंखलता और पशुता दबी रहती है। वह न होता तो आप अनाथालय मे पैदा हुए होते या पले होते। घर कितना भी बुरा हो, वह एक स्थान होता है जहा मनुष्य अन्तिम आश्रय लेता है। डॉक्टर जॉनसन ने सत्य ही लिखा है कि घर में सुखी होना ही हमारी प्रत्येक आकाक्षा का अन्तिम ध्येय होता है।[1]

यदि घर मे आपकी डोरी कोई ठीक से पकड़े रहे तो आप पतंग की तरह चाहे जहां उड़ सकते हैं। डोरी टूटने पर कही न कही गिर जाएगे या अटक जाएंगे।

२८. यदि आपकी किसी बात के लोग अनेक अर्थ लगाए तो उसका मतलब यह नही होगा कि आप असाधारण वक्ता हैं। निश्चय ही आपकी बातें भ्रमपूर्ण होंगी, आप स्पष्टवक्ता न होंगे, आपके विचार अनिश्चित होंगे अथवा आप छलवश 'किन्तु', 'परन्तु' के साथ बोलते होंगे। यह भी

---

1. To be happy at home is the ultimate result of all ambition.
—Johnson.

सम्भव है कि आप मनोभावो को व्यक्त करने की कला न जानते हो।

२९. अंग्रेजी के एक विद्वान् का कथन है कि अधिकांश लोग जब आपसे राय लेने आते हैं तो वास्तव में, वे अपने पूर्वनिश्चित विचारो के सम्बन्ध में आपकी सहमति लेने आते हैं। इससे उनका कोई लाभ नही होता। उनका समर्थन कीजिए तो वे आपकी सम्मति को महामान्य मानेंगे; उनके मत की सत्य आलोचना कीजिए तो वे आपकी बात को व्यर्थ समझेंगे। चतुर व्यक्ति नये विचारो का सदैव स्वागत करता है और लोगों की स्पष्ट सम्मति लेकर अपनी अपूर्णता को पूर्ण करता है।

३०. आपकी बातें सुनते-सुनते यदि श्रोता ऊघने लगे या अन्यमनस्क हो जाए तो इसका अर्थ है कि आप निरर्थक प्रलाप करते हैं, बहुवादी है, एक ही बात की पुनरावृत्ति करते है या आपकी बातचीत की शैली प्रभावोत्पादक नही है अथवा श्रोता की दृष्टि में आप स्वय प्रभावशाली नही है। यह भी हो सकता है कि आप आत्मप्रशंसा या परनिन्दा करते हो, जो दूसरे को प्रिय न लगती हो।

३१. खण्डन-मण्डन करनेवाला सरस वक्ता नही होता। सदा हां मे हां मिलानेवाला विचारहीन होता है। बाल की खाल खीचनेवाला सकीर्ण विचारो का माना जाता है और ईंट का जवाब पत्थर से देनेवाला उद्दण्ड।

३२. यदि आप लोगों के बीच में झेंपते हैं तो सम्भवतः अत्यधिक एकान्तसेवी, सकोची, अनात्मविश्वासी या मानसिक क्लीब अथवा बहुत दबे हुए व्यक्ति होंगे। आडम्बरी लोग भी झेंपते या भडकते है क्योकि बहुत बन-ठनकर निकलने पर भी उनको यह भ्रम बना ही रहता है कि अभी उनका शृंगार अपूर्ण है।

३३. यदि सभा-समाज मे आप सबके सामने निर्भय हो कर नही बैठ सकते तो आप में कोई स्वाभाविक, चारित्रिक या सामाजिक दुर्बलता होगी। सम्भव है, आपकी आर्थिक स्थिति ऐसी हो कि आप दूसरो से अपने को छोटा मानते हो। हो सकता है कि आप स्वभाव से ही उदासीन हो, मलिन या एकान्तप्रेमी हों। सम्भव है आप षड्यन्त्री हो। यह भी

हो सकता है कि आपकी शिक्षा ऐसी हुई हो कि आप दूसरो के पिछलगुए ही बने रहें।

कुछ भी हो, यदि आप यथायोग्य स्थान के अधिकारी बनने का प्रयत्न नही करते, तो उससे आपकी भीरुता और अयोग्यता प्रकट होती है। उन्नतिशील व्यक्ति अपने को आकर्षण का केन्द्र बनाने का प्रयत्न करता है तथा अवनतिशील व्यक्ति अपने को छिपाने का। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट का लड़का अपने पिता की मनोवृत्ति को देखकर उनके विषय में कहता था कि जब वे किसी के विवाहोत्सव में जाते थे तो उनकी आकाक्षा यह रहती थी कि वे ही वर होते तो कितना अच्छा होता, किसी की शव-यात्रा में सम्मिलित होने पर वे ही शव होते तो कितना आनन्द आता, क्योंकि तब सबकी दृष्टि उन्हीं पर लगी होती। समाज के सामने अपने को इस तरह खोलने की इच्छा उसी मे उठेगी जो उन्नतिकाम हो और जिसका सामाजिक आदर्श ऊचा हो। ऐसा व्यक्ति विश्वास रखता है कि चाहे हजार आखें उसकी ओर देखें, उसका रूप कलकहीन लगेगा। जिसके हृदय में भय का दुर्विचार रहता है, वही अपराधी बनकर कोने मे बैठता है।

३८. जिसमे आत्मसम्मान नही होता, वही सबके सामने हाथ जोड़े खडा रहता है। स्वावलम्बी पुरुष स्वात्माभिमानी होता है। अकर्मण्य, आलसी, कापुरुष और अपराधी लोग ही बात-बात में द्रवित होते हैं। यदि आत्मप्रभाव द्वारा आप अपनी टोपी या पगडी की मर्यादा नही बचा सकते, तो अच्छा होगा कि उसके स्थान पर किसी का जूता धारण करें।

३५. नतमस्तक होना या कमर झुका कर चलना निश्चय ही अशक्तता का लक्षण है। प्रमाण प्रत्यक्ष है—वृद्धावस्था मे मनुष्य ज्यो-ज्यो अशक्त होता जाता है, त्यो-त्यों उसकी कमर झुकती जाती है और गर्दन भी। मेरुदण्ड को उन्नत और भालखण्ड को उच्च रखने से पुरुषार्थ प्रकट होता है। आत्मसयमी, मनस्वी एव शक्तिशाली ही अपने शरीर को

दण्डवत् खडा रखता है; अपराधी, भीरु एव कापुरुष अकारण दण्डवत् करने का या पैर पडने का आदी हो जाता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि शरीर चाहे छोटा हो या बडा, वह जब सीधा उठता रहता है तभी मनुष्य का व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है। उसी समय ज्ञात होता है कि उस मनुष्य के उन्नत शरीर के रूप में उसकी मनुष्यता या आत्मशक्ति का मानदण्ड सामने है। अपने ही छन्दोबद्ध शब्दों में हम इसी को अधिक आकर्षक ढंग से यो कहते हैं :

उठा हुआ काचन-शैल-शृंग-सा,
शरीर था शोभित अगराज का।
प्रमाण था आत्म-विकास का यथा;
मनुष्यता-मापक मानदण्ड था॥ (अंगराज)

३६. यदि आपको मित्रता निभाने मे सदैव कठिनाई जान पडे तो प्रथम अपने स्वभाव को दोष दीजिए। सम्भवतः आप स्वार्थवश किसी से मित्रता स्थापित करते होगे और स्वार्थ भग्न होने पर आपकी मित्रता भी खडित हो जाती होगी। हो सकता है कि आपके स्वभाव में अहंकार, कृतघ्नता, दुर्विनीतता और दम्भ हो जिनके कारण जल्दी-जल्दी आपको मित्र-सकट भोगना पडता हो। यह भी सम्भव है कि आप बिना सोचे-विचारे किसी को भी सामने पाकर उसको अपना मित्र बना लेते हों और बाद मे धोखा खाकर चेतते हो। कुछ भी हो, इतना मानना चाहिए कि मित्रता बार-बार बदलने का वस्तु नही है। उसको निभाने से ही अपना गौरव बढ़ता है अपनी शक्ति-प्रतिष्ठा स्थिर होती है। यदि आपका स्व-भाव निर्दोष है तो ऐसे ही व्यक्ति को मित्र बनाइए जो सुख मे साझीदार होने का दुष्प्रयत्न न करे और विपत्ति में पूरा साथ दे। स्वय भी इसी आदर्श का पालन कीजिए और सयत्न मित्रता की रक्षा कीजिए, क्योंकि 'सर्वथा सुकर मित्र, दुष्कर प्रतिपालनम्'—इस सम्बन्ध में इस युक्ति को याद रखिए :

सज्जन ऐसा कीजिए, ढाल सरीखा होय।
सुख में तो पीछे रहे, दुख में आगे होय ॥

३७ यदि आपके कुछ मित्र ऐसे है जिनसे आप लुक-छिपकर ही मिलते हैं तो आपका जीवन भेदपूर्ण होगा। आप कुचक्री हो सकते है, आपकी लीलाएं विचित्र हो सकती है। एक अग्रेजी कहावत है कि मनुष्य अपनी उस सगति के कारण पहचाना जाता है जिसको कि वह समझता है कि कोई जानता नही।[1]

३८. यदि किसी मनोरंजक कला से आपको स्वाभाविक अनुराग नही है तो आप महाशुष्क होगे और अविश्वास के पात्र भी। आपके स्वभाव मे कठोरता, जड़ता, निराशा, मलिनता होगी और विचारो में संकीर्णता। भर्तृहरि ने कुछ सोच-समझकर ही कहा था कि साहित्य-सगीत-कला से हीन मनुष्य विना सीग-पूछ का पशु होता है :

साहित्य - सगीत - कला - विहीन ,
साक्षात् पशु. पुच्छ-विषाणहीन ।

३६. ईश्वर-वन्दना के बाद समाचारपत्र पढना ही आजकल का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम है। यदि आप उनको नही पढते तो समय से पीछे रहेंगे। यदि उनमे वेसिर-पैर की वातें ही पढते हैं तो अपनी ज्ञान-हत्या करते है। समाचारपत्रो से देश, समाज और मानव-विचारो की प्रगति का ज्ञान करना चाहिए।

४०. यदि आप अत्याचारी के सामने झुक जाते है तो आप कापुरुष, निर्वीर्य होगे। यदि अपने समक्ष झुकनेवाले के सामने शेर वन जाते है तो आप हृदय से शृगाल होगे। झरवेरी के जगल मे शेर वन जाने से विल्ली शेर थोडे वन जाती है। सौजन्य और वड़प्पन इसमे होता है कि जो आपका सम्मान करता है उसका आप भी सम्मान करें। शेखसादी का उपदेश है कि जो तुम्हारे सामने झुकता है, उसके सामने तुम भी झुक

---

1. A man is known by the company he thinks nobody knows he is keeping.

जाओ । निर्बल पर क्रूरता करके आप उसको किसी समय जीवन से हताश बना देंगे और इसको स्मरण रखिए कि जीवन से हताश व्यक्ति का आक्रमण वडा भयकर होता है। तुलसीदास की इन पक्तियो को इस सम्वन्ध मे याद रखिए :

अतिशय रगड़ करै जो कोई ।
अनल प्रकट चन्दन ते होई ।। (मानस)

४१. सुप्रसिद्ध विद्वान् गेटे ने लिखा है कि मनुष्य अपने स्वभाव या चरित्र का ऐसा स्पष्ट विज्ञापन और किसी क्रिया से नही करता जैसा कि किसी भी वस्तु-विशेष की ओर देखकर हसने से।[1]

कैसे अवसर पर मनुष्य को हसी आती है और कैसे आती है—इसी से उसके स्वभाव का पता चलता है । सभ्य व्यक्ति हास्य-विनोद मे भी सभ्य रहता है। निर्लज्ज व्यक्ति दूसरो का उपहास करता है, दूसरो की त्रुटियो पर क्रूरता की हसी हसता है । गम्भीर, अस्वस्थ, चिन्तित या मलिन स्वभाव के व्यक्ति कम हसते हैं। असभ्य, अकर्मण्य, निश्चिन्त, चचल और विनोदी स्वभाव के लोग अट्टहास करते है। शीलवान् और सुकुमार स्वभाव के व्यक्ति मुस्कान-प्रेमी होते है । धूर्त और चाटुकार केवल कठ से हसते है तथा सहृदय और निर्भीक व्यक्ति हृदय के भी नीचे नाभि से। बड़ो के साथ खिलखिलाना अनधिकार चेष्टा है; नौकरो या हीन व्यक्तियो के साथ हास्य-व्यग्य करने से प्रभुत्व घटता है । लक्ष्मण ने शूर्पणखा से व्यंग्य किया था तो राम ने उसको यही उपदेश दिया था कि दुष्ट-बुद्धि और निम्नकोटि के मनुष्यो के साथ परिहास न करना चाहिए :

क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहास. न कथञ्चन । (रामायण)

४२. यदि स्थानीय समारोहो में आप अप्रयास आमन्त्रित होते है तो हम मानेंगे कि समाज मे आपका एक स्थान है। आमन्त्रित होकर जाने पर यदि आपका यथोचित सत्कार न हो तो हम समझेंगे कि आप केवल

---

1. By nothing do men show their character more than by the things they laugh at.

पड़ोसी होने के नाते या समारोह की जनसंख्या बढ़ाने के लिए ही बुलाए गए थे। यदि कहीं जाकर आप स्वयं अपने को धन्य मानते हैं तो समझ लीजिए कि आप अभी सम्मान के योग्य नही हैं। यदि दूसरे लोग आपके दर्शनो से अपना अहोभाग्य समझें तो प्रथम तो उनकी सज्जनता को श्रेय दीजिए, तदुपरान्त सन्तोष कीजिए कि आप नगण्य नही हैं।

४३ अनुभवी डॉक्टरो का कहना है कि तीन बीमारो के पीछे एक ऐसा बीमार होता है जिसको वास्तव मे कोई बीमारी नही होती। अतएव कल्पित बीमारी से पीडित होकर निरुत्साह न बनिए। ठीक-ठीक देख लीजिए कि आपका मन बहाना करके सुस्ताना तो नहीं चाहता।

४४. यदि आपके कान में कोई बात पहुचते ही नगर-भर मे फैल जाती है तो आप बडे भयकर जीव होगे। कोई आपका विश्वास न करता होगा। मत्र को गुप्त रखने से मनुष्य का बडप्पन प्रकट होता है। बहुत-से लोग बडी से बड़ी बात को पचा लेते हैं; वे महापुरुष होते है। हलके लोग छोटी बातें पाकर भी चिनगारी से पैट्रोल के पीपे की तरह जलने लगते है।

४५. यदि आप बच्चो के बाप बने रहना चाहते हैं तो उनके अध्यापक न बनिए। अध्यापक बनते ही आप उनके प्रेम से वचित हो जाएगे और आपकी पदवी आप से छिन जाएगी।

४६. यदि आप अपनी स्त्री के स्वामी है तो सुखी होगे। सखा होगे तो सखी जैसे बनकर रहते होगे, क्योकि स्त्रियो के सखा नही होते। दास होगे तो मर्द नही लतमर्द होगे।

४७. यदि आप किसी चंचला के कथित पति है तो आप के हृदय-आकाश में दु ख के धाराधर दिन-रात उमड़े रहते होगे। यदि आप चण्डेश हैं तो चण्डेश (शिव) की तरह दिन में कई बार हलाहल घूटते होगे। भगवान् आपको शांति दे। शाति-याचना के पूर्व न्यायपूर्वक एक बात को देख लीजिए, कही आप ही ने तो अपनी नारी-उपासना से अपनी पत्नी को स्वेच्छाचारिणी और अभिमानिनी नही बना दिया है।

यह भी देख लीजिए कि कही आप का पुरुषत्व तो नही खण्डित है। इस का भी पता लगा लीजिए कि आपकी स्त्री पहले सुशीला होकर आपके साथ विवाहित होने पर तो दु:शीला नही हो गई। यदि आप निर्दोष हैं तो किसी दुष्टा के कारण अपने जीवन को नष्ट न कीजिए।

४८. यदि आपके घर मे पधारते ही आतंक का राज्य स्थापित हो जाए तो आपसे बड़ा अभागा कौन होगा ? आप अवश्य कायर होगे और बाहर का क्रोध आकर घर मे अपने आश्रितो पर उतारते होगे। 'ठोकर लगी पहाड को फोड़े घर की सील' की उक्ति आप ही के किसी पूर्वज के लिए लिखी गई होगी।

४९. शत्रुनाश के निमित्त देवोपासना निष्फल होती है। साधु-महात्मा की तरह विश्वात्मा भी किसी अपकर्म मे सहायक नही होता। अच्छा हो, यदि उतने समय मे आप दड-बैठक करें, जिससे आपके सुदृढ शरीर को देखकर आपके शत्रु आपसे भयभीत हो। प्रार्थना मे बड़ा बल होता है, परन्तु तभी जब उसके साथ सद्भावना हो।

५०. यदि आप स्वय ही अपने आदर्श है तो बहुत उन्नति न कर सकेंगे। अपने ही पैरो की ओर देखनेवाला व्यक्ति आगे का मार्ग कैसे देखेगा ?

५१. अनधिकारी होते हुए भी कोई उच्च पद पाकर यदि आप पद का मद प्रदर्शित करते है तो आपकी दशा उस बौने जैसी होगी जो पहाड़ की चोटी पर खडा होकर यह सोचता हो कि नीचेवाले उसको विशाल-काय समझते होगे। दुबला-पतला आदमी यदि हाथी पर बैठा दिया जाए तो क्या वह मोटा हो जाएगा ? अयोग्य होकर भी यदि आप किसी युक्ति से उच्च-पदस्थ हो गए है तो आपको अभिमान न करना चाहिए। राज-महल के कंगूरे पर बैठने पर भी कौआ गरुड़ की पदवी नही पा सकता : 'प्रासादशिखरस्थोपि काको न गरुडायते।'

५२. एक अंग्रेजी कहावत है कि यदि कोई व्यक्ति इसकी चिन्ता न करे कि अमुक कार्य करने का श्रेय किसको मिलेगा तो वह प्रत्येक कार्य

को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है। वहुत-से कार्य इसलिए बिगडते है कि इनमे से प्रत्येक यह चाहता है कि सारा श्रेय उमी को मिले, इसलिए सब एक-दूसरे के साथ पूर्ण सहयोग नही करते। यदि आप सफलता चाहते हैं तो श्रेय के शेयर (हिस्से) औरो को वाटिए जिससे वे भी उस काम में हाथ वटाए।

५३. यदि आप शीघ्र रीझनेवाले होगे, तो आपको वहुत-से वादे भी करने पड़ते होगे, और आप उनको पूरे भी न कर पाते होगे। एक वात और याद रखिए—शीघ्रवरदानी को कोई न कोई शीघ्रकोपी उसी प्रकार मिल जाता है जैसे शिव को भस्मासुर मिल गया था।

५४. स्वप्न में भी यदि आप भयानक दृश्य देखते हैं तो उससे अपनी मानसिक भीरुता का अनुमान कीजिए। यदि आप सुन्दरी स्त्रियो को देखते हैं, तो अपनी अतृप्त प्रेम-वासना की ओर ध्यान दीजिए। यदि स्वप्न में प्रीतिभोज ही दिखलाई पड़ें तो समझिए कि आपको तृप्तिदायक भोजन नही मिल रहा है। वेसिर-पैर के स्वप्न दिखाई पड़ें तो अपनी पाचन-शक्ति और चित्त की अस्तव्यस्तता को सुधारिए। प्रत्येक दशा मे मन के बोझ को उतारिए। प्रगाढ निद्रा मे स्वप्न घातक होते है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक पहले स्वप्न-विज्ञान पर विश्वास नही करते थे। अव वे वड़े-वडे ग्रथ लिखकर यह प्रमाणित करते हैं कि स्वप्नों से आपकी पूरी मनोदशा पढी जा सकती है क्योकि स्वप्नावस्था मे चतुर चेतन मन प्रसुप्त रहता है, अतएव भीतर की वृत्तिया बुद्धि-कोशल से छिपाई नही जा सकती। स्वप्न-मच पर खुलकर क्रीडा करने लगती हैं।

५५. दभी और मूर्ख लोग चलते समय पैर पटकते है। सुशील व्यक्ति मृदु गति से चलता है। सामुद्रिक मत से पैर पटककर चलना दुर्भाग्य-सूचक होता है। इसका यह अर्थ नही कि चोरो की तरह दवे पाव चलने से आप सौभाग्यशाली माने जाएगे। अभिप्राय यह है कि न राक्षस-गति से चलिए, न चोर-गति से, वल्कि मनुष्य की तरह सतुलित गति से चलिए।

५६. यदि आप व्यवसायी है और बहुत से ग्राहको के साथ व्यवहार करते है तो आपके लिए विनम्र, सुशील और मृदुभाषी होना आवश्यक है। आप गम्भीर या अहकारी बनकर बैठेंगे तो ग्राहक खो देंगे। एक अनुभवी व्यक्ति ने कहा है कि जो हसमुख न हो, उसे दुकानदारी का काम न करना चाहिए। ग्राहक आपके माल पर उतना ही रीझते है जितना आपके शिष्ट व्यवहार पर। वे आपकी वस्तु का ही नही, बल्कि आपकी सरलता और सज्जनता का भी मूल्य देना चाहते है। बड़ी कम्पनियो के विक्रय-विभाग में आजकल लड़किया विक्रयिका बनाकर नियुक्त की जाती हैं। इसका रहस्य यही है कि वे अपनी स्वभाव-सुलभ कोमलता से ग्राहक को आकर्षित कर लेती है।

५७. एक विलायती समाजशास्त्री ने गृह-कलह निवारणार्थ कुछ नियम प्रकाशित किए हैं। उनमें एक यह है कि प्रतिमास अपनी स्त्री-बच्चो को कुछ पैसे जेबखर्च के तौर पर दे देने चाहिए, जिन्हें वे अपना समझ कर खर्च करने या बचाने के लिए स्वतन्त्र हों। इससे उनके मन मे यह बात नही जमने पाती कि वे एक-एक पैसे के लिए आप पर अवलम्बित हैं। ऐसा न करने से उनके मन मे आपके प्रति ईर्ष्या-द्वेष की भावनाएं उठ सकती हैं।

५८. यदि आप किसी ओषधि व चूर्ण का सेवन नियमित रूप से करते हैं तो आप शरीर से अस्वस्थ या स्वभाव से व्यसनी होगे। ओषधियां जब दैनिक आहार बन जाती हैं तो शरीर की स्वाभाविक क्रिया मन्द पड़ जाती है। स्वाभाविक आहार अन्न ही है।

५९. किसी कार्य में विफल होकर हताश हो जाना कापुरुषता है। गिरने में हानि नही है, गिरकर पड़े रहने में हानि होती है। निरुद्योगी व्यक्ति एक बार गिरकर वहीं कराहता पड़ा रहता है; शूरवीरों के तो कबंध भी खड़े होकर लड़ते है।

६०. यदि कभी-कभी आपके मन में आत्मघात के विचार उठते है तो सत्य मानिए, आपकी आत्मा अपराधी है; आप अकर्मण्य, स्वार्थी,

साहसहीन, क्रूरबुद्धि है। आपको अवसर मिले तो आप किसी की हत्या करके अपने स्वार्थ की सिद्धि कर लेंगे। ऐसा अवसर नही मिलता, इसलिए आप अपनी हत्या करके अपनी हत्या-प्रवृत्ति को शान्त करना चाहते हैं। आपका गृह-जीवन विफल होगा। शारीरिक व्यथा कितनी भी भयकर हो, उसके कारण आत्मघात का विचार नहीं उठता। केवल मानसिक पीड़ा, ग्लानि, लज्जा, भीरुता, असहनशीलता, असमर्थता और क्रोधाधिक्य मे आत्मनाशी विचार उठते हैं। अतएव अपनी मनोव्याधियो का उपचार कीजिए। उपचार यही है कि आशा को बलवती बनाकर किसी काम मे लग जाइए।

६१. कभी-कभी ऐसा होता है कि छोटे-छोटे कार्यों मे हमे निरन्तर सफलता मिलती जाती है, और जहा सफलता की आशा नही रहती वहां भी सफलता मिल जाती है। उस समय यह मानना चाहिए कि समय अपने अनुकूल है, अपना भाग्योदय हो रहा है। उस समय कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य करने से सफलता मिलने की अधिक आशा होगी। इसलिए तत्त्वज्ञो ने कहा है कि जब समय मुस्कराता हुआ मिले तो उससे अधिकाधिक लाभ ले लेना चाहिए। दैष्टिक विधान (भाग्यविधान या पूर्वनिश्चित कर्म) मे कोई विश्वास करे या न करे, इतना मानना पड़ेगा कि अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिया चुपचाप भी आकर हमारी जीवनदशा पर प्रभाव डालती हैं। वायुमण्डल मे असंख्य तरगें हैं जो हमारे शरीर को ही नही जीवन को स्पर्श करके उसकी गति में साधक या बाधक बन जाती हैं।

६२. यदि आप अत्यधिक आशावादी है, तो कल्पनाजीवी होगे और परिणामतः निराशा के बहुत-से झोके निरन्तर सहते होगे, क्योंकि कल्पना जगत् के निर्मित और अतिरजित सुख प्रत्यक्ष जगत् मे नही मिलते। 'मति अति रंक मनोरथ राऊ' की मनोवृत्ति वाले ही उग्र आशावादी होते हैं। वे मनमोदक खाते हैं, आकाश-गगा में नहाते हैं, मृगमरीचिका का जल पीते है और आकाश-कुसुम लेकर पश्चिम दिशा मे सूर्य भगवान् का

आह्वान करते हैं। ऐसे लोगो के चरण प्राय: गलत रास्ते पर पड़ते हैं, क्योकि उनकी दृष्टि कही और तैरती रहती है। निराशावादी कर्म को अधर्म समझता है, कल्पित भय से पीड़ित और सन्देहग्रस्त रहता है। वह सर्वथा विश्वासशून्य होता है।

६३. वर्तमानकाल में रहने पर न तो अधिक प्राचीन और न अधिक अर्वाचीन होना चाहिए। समय के साथ चलना चाहिए। देशकाल सभी परिवर्तनशील है और परिवर्तन संसार का निश्चित धर्म है। अतएव सामयिक रीति-नीति का अनुकरण करना चाहिए। शेखसादी की यह बात एक अश तक मान्य है कि जब तूफानो के देश में पहुचे तो तू भी अपनी एक आख बन्द कर ले। इसका अर्थ यह नही है कि विलायत जाने पर अपनी जातीयता और सभ्यता का परित्याग कर देना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि व्यावहारिक जगत् मे 'कालानुवर्ती भव' इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि प्राचीनता और आधुनिकता का विषय-सम्मिश्रण न हो। यदि आप हवन करते हैं तो घी से कीजिए, वनस्पति घी से नही; मन्दिर में जाते हैं तो शख बजाइए, मोटर का 'हार्न' नही; दफ्तर जाते है तो जूते पहनकर जाइए, खडाऊं नही।

६४. व्यक्तिगत चरित्र का प्रभाव जीवन के प्रत्येक कार्य पर पड़ता है। चरित्र तो व्यक्ति के साथ लगा ही रहता है। एक अंग्रेजी विचारक के अनुसार जो व्यक्ति निजी जीवन मे दुर्जन रहता है वह सामाजिक जीवन मे सज्जन नही हो सकता, क्योकि स्थान-परिवर्तन होने पर भी व्यक्ति तो वही रहता है।[1]

निवेदन

अपने गुणो-अवगुणों को इन उत्तरो से नापिए और देखिए कि आप कहां छोटे पड़ते हैं। इनके आधार पर आप दूसरो को भी देखिए। परन्तु

---

1. He who acts wickedly in private life can never be expected to show himself noble in public conduct, for it is not the man, but only the place that is changed.

सर्वप्रथम आत्म-निरूपण कर-लीजिए। आत्म-वंचना से आप स्वय धोखे में रहेंगे। यदि आप स्वय अपने को सुधारे बिना यह चाहे कि समाज आपके बनावटी रूप को असली मान ले, तो यह आपका आत्म-विभ्रम है। समाज के सूक्ष्मदर्शन-यन्त्र के आगे मानव-चरित्र की छोटी-छोटी बातें भी स्पष्ट दिखलाई पडती हैं। आप मुह मे ताला लगाकर बैठें, तो आपके व्यवहार-कर्म आपकी आत्मकहानी सबको सुनाने लगते हैं : करतूती कहि देत आप कहिए नहि साई।

१०. चयनिका

मगल-सूत्र

१

असतो मा सद् गमय ।—असत् से हमे सत् की ओर ले चलो ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।—अधकार से हमे प्रकाश में ले चलो ।
मृत्योर्मा अमृत गमय ।—मृत्यु से हमे अमरता की ओर ले चलो ।
(बृहदारण्यक उपनिषद्)

२

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।। (ऋग्वेद)

—तुम्हारा अभिप्राय एक समान हो, तुम्हारा अंतःकरण एक समान हो, और तुम्हारा मन एक समान हो, जिससे तुम्हारा सुसाह्य होगा, अर्थात् संघशक्ति की दृढता होगी ।

३

'सत्यं हि परम बलम्'—सत्य ही परम बल है । भीष्म ने युधिष्ठिर को अपनी मृत्यु के पूर्व यह उपदेश दिया था ।

४

'मनस्ते महदस्तु च'—तू सदैव अपने मन को महान् बनाए रख । युधिष्ठिर के लिए कुन्ती का यही अन्तिम उपदेश था ।

५

'जीवितेनापि मे रक्ष्या कीर्तिस्तद्विद्धि मे व्रतम्'—चाहे हमारे प्राण भले ही जाएं, पर अपनी कीर्ति की रक्षा करना मेरा व्रत है ।—सूर्य ने जब

महारथी कर्ण से कहा कि तू अपने कवच-कुण्डल इन्द्र को दान में न देना, नही तो आयुर्बल क्षीण हो जाएगा, और जीवन ही नष्ट हो जाएगा, तो मरने पर तेरी कीर्ति किस काम आएगी : 'मृतस्य कीर्त्या किं कार्यम्'—तब कर्ण ने उपर्युक्त उत्तर दिया था।

६

उच्छ्रयस्व महते सौभगाय (ऋग्वेद)—महान् सौभाग्य की प्राप्ति के लिए उन्नतिशील बनो।

७

'न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन' (ऋग्वेद)—मैं मरने के लिए कदापि नही पैदा हुआ हूं।

८

भद्र कर्णेभि. शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाऽसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहित यदायु ॥ (ऋग्वेद)
—हे देवगण! हम अपने कानो से कल्याणकर वचन सुनें, हम नेत्रों से मगलमय वस्तुएं देखें, हम शरीर से दृढ और ससत्त्व होकर तुम्हारी स्तुति करके ईश्वर द्वारा निर्धारित आयु को भोगें।

९

योगश्चित्तवृत्तिनिरोध (पतञ्जलि)—चित्त की वृत्तियो को वश में रखना ही योग है।

१०

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्। (महाभारत)
—दु.ख को दूर करने की एक ही अमोघ औषधि है—मन से दु.खों की चिन्ता न करना।

११

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मान नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ (गीता)
—मनुष्य को उचित है वह स्वय ही आत्मोद्धार करे और अपनी

अवनति अपने-आप न करे। मनुष्य अपना मित्र या शत्रु स्वयं ही होता है।

उद्योग करते रहो

१

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः। चरैवेति, चरैवेति॥

—जो मनुष्य बैठा रहता है, उसका सौभाग्य भी बैठा रहता है। जो उठकर खडा हो जाता है उसका सौभाग्य भी खड़ा हो जाता है। जो स्वय शिथिल रहता है, उसका सौभाग्य भी सोता रहता है। जो उठकर चल पड़ता है, उसका सौभाग्य भी सक्रिय हो जाता है—इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

२

चरन्व मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। चरैवेति, चरैवेति॥

—जो मनुष्य गतिमान् रहता है, वही मधु पाता है, वही स्वादिष्ठ फल खाता है। परिश्रमी सूर्य को देखो, जो कभी आलस्य नही करता। अतएव चलते रहो, चलते रहो।

३

कलिः शयानो भवति, सजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्। चरैवेति, चरैवेति॥
(ऐतरेय ब्राह्मण)

—पड़े सोते रहना कलियुग है, ऊंघते रहना ही द्वापर है, उठ बैठना ही त्रेता है और चल पड़ना ही सतयुग है। अतः चलते रहो, चलते रहो।

४

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक् पन्थां यातवे-सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥ (ऋग्वेद)

—मनुष्यो! उठो, हमारे शरीरो को संचालित करने वाला प्राण

उदय हो गया, अन्धकार विनष्ट हो गया, प्रकाश आ गया है। उषा ने सूर्य की यात्रा का मार्ग बना दिया है। जिस देश में उषा अन्न देकर हमारी वृद्धि करती है, हम उसी ओर जाएं। अर्थात् प्रभात होते ही कार्यक्षेत्र मे प्रवेश करो।

५

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगा.॥ (पचतत्र)

कार्य मनोरथ से नही, उद्यम से सिद्ध होते हैं। सोते हुए सिंह के मुह मे मृग अपने-आप नही चले जाते।

बुद्धि-बल

१

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्ष च या वेत्ति बुद्धि· सा पार्थ सात्त्विकी॥ (गीता)

—हे पार्थ! जिस बुद्धि से यह ज्ञान होता है कि किस कार्य को करना चाहिए और किस कार्य से अलग रहना चाहिए, कौन-सा काम करने के योग्य है और कौन-सा नही, कहा डरना चाहिए और कहा नही तथा किस बात से हम बंध जाएगे और किससे स्वतत्र हो जाएगे, वह सात्त्विक बुद्धि है—निश्चित निर्णय करने वाली सद्बुद्धि।

२

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥ (गीता)

—धर्म-अधर्म, कार्य-अकार्य का ठीक-ठीक निरूपण जो बुद्धि न कर सके, उस को राजसी कहते हैं—सन्देहग्रस्त बुद्धि।

३

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिःसा पार्थ तामसी॥ (गीता)

—जो बुद्धि धर्म को अधर्म मानकर सभी बातो में विपरीत निर्णय

करती है, उसको तामसी बुद्धि कहते हैं—दुर्बुद्धि ।

४

मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा ।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ।। (शिव-गीता)

—मोक्ष किसी स्थान पर रखा हुआ नही मिलता और न उसको ढूंढने के लिए किसी दूसरे गाव को ही जाना पड़ता है। हृदय की अज्ञान-ग्रन्थि का नष्ट होना ही मोक्ष कहा जाता है।

५

शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मोहः परासुता ।
ईर्ष्या मानो विचिकित्साकृपाऽसूया जुगुप्सता ।
द्वादशैते बुद्धिनाशहेतवो मानसा मलाः ।।(कालिकापुराण)

—शोक, क्रोध, लोभ, काम, मोह, आलस्य, ईर्ष्या, मान, सन्देह, पक्षपात, गुणवान् के प्रति दोषारोपण, निन्दा—ये बारह मानस-मल है जिनके कारण बुद्धि नष्ट होती है ।

६

य. सततं परिपृच्छति शृणोति सन्धारयत्यहर्निशम् ।
तस्य दिवाकरकिरणैर्नलिनीव विवर्द्धते बुद्धिः ।। (पचतत्र)

—जो सदा पूछता, सुनता, रात-दिन धारण करता है, उसकी बुद्धि सूर्य की किरणो से कमलिनी के समान बढती है ।

७

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत ।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च ।। (महाभारत)

—बुद्धि से कार्य करने वाले श्रेष्ठ होते हैं, बाहु से कर्म करने वाले मध्यम श्रेणी के। जघा पीड़ित करने वाले निकृष्ट होते है—वे केवल भार ढोते हैं ।

८

बुद्धेर्बुद्धिमता लोके नास्त्यगम्यं हि किञ्चन ।

बुद्धया यतो हता नन्दाश्चाणक्येनासिपाणय: ।। (पचतत्र)

—बुद्धिमानो की बुद्धि के सम्मुख ससार मे कुछ भी असाध्य नही है। बुद्धि से ही शस्त्रहीन चाणक्य ने सशस्त्र नन्द का नाश कर डाला ।

९

दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्या दूरे हिनस्ति स: । (पचतत्र)

—बुद्धिमान् की भुजाए बड़ी लम्बी होती हैं, जिनसे वह दूर से वार करता है ।

१०

शस्त्रैर्हता न हि हता रिपवो भवन्ति,
प्रज्ञाहतास्तु रिपव: सुहता भवन्ति ।
शस्त्र निहन्ति पुरुषस्य शरीरमेव,
प्रज्ञा कुलञ्च, विभवञ्च, यशश्च हन्ति ।। (पचतंत्र)

—शस्त्र से शत्रु का पूर्ण विनाश नहीं होता। बुद्धि द्वारा नष्ट किए हुए शत्रु का लोप ही हो जाता है । शस्त्र से पुरुष का शरीर ही नष्ट होता है; बुद्धि के प्रहार से तो वश-वैभव, कीर्ति सभी विनष्ट हो जाते है ।

वाणी और यश

१

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्त ।
अत्रा सखाय: सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ।। (ऋग्वेद)

—जिस प्रकार सूप से सत्तू निकाला जाता है, बुद्धिमान् लोग उसी प्रकार बुद्धि-बल द्वारा परिष्कृत भाषा को प्रकट करते हैं। उस समय उनको अपने अभ्युदय का ज्ञान रहता है। उनकी वाणी में मगलमयी लक्ष्मी निवास करती है ।

२

सर्वे नन्दन्ति यशसागते न सभासाहेन सख्या सखाय: ।
किल्विषस्पृत् पितुषणिर्ह्येषामर हितो भवति वाजिनाय ।। (ऋग्वेद)

—यश मित्र का काम करता है, वह सभा-समाज से प्रधानता प्राप्त

करता है। इसको प्राप्त करके सभी प्रसन्न होते है, क्योकि यश के द्वारा दुर्नाम दूर होता है, अन्न प्राप्त होता है, शक्ति मिलती है और सब तरह से लाभ होता है।

आत्म-शक्ति

१

शक्ति विना महेशानि ! सदाऽहं शवरूपकः।
शक्तियुक्तो यदा देवि ! शिवोऽहं सर्वकामदः ॥ (पद्मपुराण)

शिव कहते हैं—हे पार्वती ! शक्ति के बिना हम भी शव के समान हैं। शक्ति-युक्त होने पर ही हम शिव और सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ बनते हैं।

२

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न त भर्त्तारमिच्छन्ति, षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥ (पंचतंत्र)

—जिसके प्रसन्न होने से किसी का लाभ नही होता और क्रुद्ध होने से किसी की हानि नही होती, ऐसे नपुसक पति को स्त्रिया भी अपना स्वामी नहीं बनाना चाहती।

कर्म ही धर्म है

अपहाय निज कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः।
ते हरेर्द्वेषिणः पापाः धर्मार्थं जन्म यद्धरे ॥ (विष्णुपुराण)

—अपने (स्वधर्मोक्त) कर्मों को छोड (केवल) कृष्ण-कृष्ण कहते रहने वाले लोग हरि के द्वेषी और पापी हैं, क्योकि स्वय हरि का जन्म भी तो धर्म की रक्षा के लिए ही होता है। (गीता-रहस्य)।

पाप-पुण्य

१

अष्टादशपुराणाना सारं सार समुद्धृतम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

—दूसरो के प्रति उपकार करना ही पुण्य, और दूसरों को कष्ट देना

ही पाप है; यही अठारह पुराणों का सार है।

२

न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूल यदात्मन.।
एप सक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्त्तते ॥ (महाभारत)

—दूसरो के साथ ऐसा व्यवहार न करे जो स्वयं अपने को ही प्रतिकूल जान पडे। यही समस्त धर्मशास्त्र का सार है; अन्य व्यवहार तो स्वार्थवश होते है।

३

यदन्येपा हितं न स्यात् आत्मन. कर्म पौरुपम्।
अपत्रपेत वा येन न तत्कुर्यात् कथञ्चन ॥ (महाभारत)

—अपने जिस कर्म से दूसरों का लाभ नही होता और जिसके करने मे स्वय अपने को लज्जा-सकोच मालूम होता है, उसको कभी न करना चाहिए।

सत्पुरुप के लक्षण

१

यस्य प्रसादे पद्मास्ते, विजयश्च पराक्रमे।
मृत्युश्च वसति क्रोधे, सर्वतेजोमयो हि सः ॥

—जिसकी प्रसन्नता से लक्ष्मी की वृद्धि होती है, जिसके पराक्रम का परिणाम विजय होता है, जिसके क्रोध में दूसरो के प्राण तक नप्ट करने की शक्ति होती है, वही महातेजस्वी होता है।

२

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

—जो उदारचरित होते हैं, सारा ससार ही उनका कुटुम्ब होता है।

३

अधमाः कलिमिच्छन्ति, सन्धिमिच्छन्ति मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति, मानो हि महतां धनम् ॥(गरुडपुराण)

—नीच पुरुप सदा झगड़ा पसन्द करते है; मध्यम कोटि के मनुष्य

कैसे भी शान्ति के लिए लालायित रहते हैं, श्रेष्ठ पुरुष सम्मान-प्राप्ति की कामना करते हैं। आत्मसम्मान ही महापुरुषों का धन होता है।

४

सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः।
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः॥ (रामायण)

सीता ने राम के सम्बन्ध में हनुमान् से कहा, "राम सबके प्रिय, साधु, बलवान् आत्मावाले, तत्कालोचित कर्म में कुशल और नदियो से समुद्र की तरह सदा सज्जनो से घिरे रहते है।"

५

कार्यसिद्धेर्मतिश्चैव तस्मिन् वानरपुङ्गवे।
व्यवसायश्च वीर्यञ्च श्रुत चास्ति प्रतिष्ठितम्॥ (रामायण)

सुग्रीव ने हनुमान् के सम्बन्ध मे राम को बताया कि उसमें कार्य-सिद्धि की बुद्धि (उपाय-शक्ति) है, उद्योग, बल और पाडित्य सभी हैं।

६

पात्रे त्यागी, गुणे रागी, भोगी परिजनैः सह।
शास्त्रे बोद्धा, रणे योद्धा, पुरुषः पञ्चलक्षणः॥

—सुपात्र के प्रति दानी होना, गुणानुरागी होना, स्वजनो के साथ सुख-दुख भोगना, शास्त्र का ज्ञानी होना, युद्ध मे पराक्रमी होना—यही पाच लक्षण पुरुष होने के है।

७

स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणीः। (भर्तृहरि)

—जिसने परमार्थ को ही अपना स्वार्थ बना लिया है, वह सर्वश्रेष्ठ सत्पुरुष है।

८

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिद हि महात्मनाम्॥
(भर्तृहरि)

—विपत्ति मे धैर्य रखना, ऐश्वर्यशाली होने पर क्षमावान् होना सभा में वाक्पटुता दिखाना, युद्ध में पराक्रम दिखाना, कीर्ति-अर्जन मे अनुराग रखना, विद्याव्यसनी होना—ये गुण महात्माओ मे स्वभाव से ही होते है ।

९

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधि॰,
प्रिय कृत्वा मौन सदसि कथनं चाप्युपकृते॰।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभि भवसारा परकथा,
सता केनोद्दिष्टं विषममसिधारा व्रतमिदम् ॥ (भर्तृहरि)

—दान को गुप्त रखना, अपने घर आए हुए पुरुष का सत्कार करना, परोपकार करके मौन रहना, दूसरो के किए हुए उपकार का सभा में वर्णन करना, धन पाकर गर्व न करना और पराई चर्चा में उसके निरादर की बात बचाकर कहना, यह तलवार की धार के समान कठिन व्रत सत्पुरुषो को किसने बताया है ।

१०

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभगेऽप्यसुकर,
त्वसन्तो नाभ्यर्थ्या॰ सुहृदपि न याच्यः कृशधन॰।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेय च महता,
सतां केनोद्दिष्ट विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥

—सज्जन अपने प्राण भले ही त्याग दे, पर वे नीच कर्म नही करते । वे दुष्ट जनो के सामने हाथ नही फैलाते, अल्पधन होने पर मित्र से भी याचना नही करते है । विपत्ति मे भी वे महान् बने रहते है और सत्पुरुषो का ही आचरण करते हैं। सज्जनो के लिए यह कठिन व्रत किसने निर्दिष्ट किया है—अर्थात् ये तो उनके स्वाभाविक गुण होते हैं ।

११

मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दु ख न च सुखम् । (भर्तृहरि)

—मनस्वी और कार्यार्थी लोग दु:ख और सुख में एक-से रहते हैं, उनकी परवाह नही करते हैं।

१२

महान्महत्स्वेव करोति विक्रमम्—बड़े आदमी बड़े आदमियो के साथ ही वीरता दिखलाते है।

१३

प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्,
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ।। (विदुर)

—जो वाणी-व्यवहार में कुशल, यथातथ्य वर्णन करने वाला, तर्क-वितर्क मे प्रवीण, प्रतिभाशाली, ग्रन्थ-अभिप्राय को शीघ्र समझनेवाला होता है, वही पण्डित कहलाता है।

राष्ट्र-भारती की कुछ सूक्तियां

१. रहिमन मोहिं न सुहाय, अमी पियावत मान बिन।
वरु विष देय बुलाय, मानसहित मरिवो भलो ।। (रहीम)

२. आवत ही हरषे नही, नैनन नही सनेह।
तुलसी तहा न जाइए, कचन बरसे मेह ।। (तुलसी)

३. तुलसी तृण जल कूल को, निरधन निपट निकाज।
कै राखै कै सग चलै, बांह गहे की लाज ।। (तुलसी)

४. प्रेम वैर अरु पुण्य-अघ, जस-अपजस जय हान।
बात-बीज इन सबन को, तुलसी कहहिं सुजान ।। (तुलसी)

५. गुनी जनन के हृदय को, बेधत है सो कौन।
असमझवार सराहिबो, समझवार को मौन ।। (अज्ञात)

६. तुलसी असमय के सखा, धीरज, धरम विवेक।
साहित, साहस, सत्यव्रत, राम भरोसो एक ।। (तुलसी)

७. कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच गृह, जरत धनिक धनधाम ।। (तुलसी)

८. काहु न कोउ सुख दु:खकर दाता।

निज कृत करम भोग सब भ्राता ॥ (तुलसी)

९. जहां सुमति तह सम्पति नाना।
जहा कुमति तह विपति निधाना ॥ (तुलसी)

१०. जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान।
मोल करो तरवारि का, पड़ा रहन दो म्यान ॥ (कबीर)

११. जिन ढूढा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठ।
मैं वपुरा बूडन डरा, रहा किनारे बैठ ॥ (कबीर)

१२. नांव न जाने गाव का, विन जाने कित जाव।
चलता-चलता जुग भया, पाव कोस पर गाव ॥ (कबीर)

१३. धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सीचै सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय ॥ (कबीर)

१४. आव गया, आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनो तब ही गए, जवहि कहा कछु देह ॥ (कबीर)

१५. कवहुक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें, सत सुभाव गहौंगो।
जथा लाभ सतोष सदा, काहू सो कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निवहौंगो।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगतमान सम सीतल मन परगुन औगुन न कहौंगो।
परिहरि देहजनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
'तुलसिदास' प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो ॥ (तुलसी)

१६. कुलवल जैसो होय सो, तैसी करिहै वात।
वणिक पुत्र जानै कहा, गढ लेवे की वात ॥

अंग्रेजी की कुछ सूक्तियां

१

A single man without a family and traditions, has a fanatical belief in a higher mission may go beyond

the limits of human law.

—Manstein, Commander-In-Chief, German Army.

१

मैनस्टीन ने 'न्यूरमबर्ग ट्रायल' में हिटलर के सम्बन्ध में गवाही देते हुए कहा था :

"एक अकेला मनुष्य जिसके पीछे कोई वंश या कुल-परम्परा नही, जिसे उच्चतर आदर्श की प्रबल आकांक्षा हो, साधारण मानव-धर्म का अतिक्रमण कर सकता है।"

२

. The crowd loves the strong man, the crowd is like a woman. —Mussolini.

—जनता बलवान् पुरुषो को चाहती है; वह स्त्री की तरह होती है।

३

The heightsby great men reached and kept.
Were not attained by sudden flight,
But they, while their companions slept,
Were toiling upwards in the night. —Longfellow

—महान् व्यक्तियो ने जो प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वह उन्हें एकाएक एक ही प्रयास में नही मिल गई है। जब उनके अन्य साथी लोग सोए पड़े थे तो वे चुपचाप आत्मोत्थान के लिए प्रयत्नशील थे। इस प्रकार वे उच्चता के शिखर पर पहुंचकर उच्च बन सके।

४

But for me and for us all, reverses are nothing but strokes of the whip, and it is practically these which we needed to drive us forward. —Hitler

—मेरे लिए और हमारे सबके लिए प्रतिकूल परिस्थितियां और कुछ नहीं केवल चाबुक के प्रहार हैं, और वस्तुतः आगे बढ़ने के लिए हमें इन्हीं

की आवश्यकता थी ।

५

A people which is not convinced of its own value can never achieve anything.

—जो जाति गौरव को नही समझती, वह कभी उन्नति नही कर सकती ।

६

The punishment suffered by the wise who refuse to take part in Government is to live under the Government of bad man. —Plato

—ऐसे बुद्धिमान् व्यक्ति, जो गवर्नमेण्ट के सचालन मे स्वयं नही भाग लेते, दुष्ट मनुष्यो द्वारा शासित होने का दण्ड भोगते है ।

७

A bad man is worse when he pretends to be a saint.

—Bacon

—जो दुष्ट होकर भी साधु होने का ढोंग करता है, वह महादुष्ट है ।

८

—Liberty is not merely a privilege to be conferred, it is a habit to be acquired. —Lloyod George

—स्वतन्त्रता केवल दूसरो द्वारा प्राप्त होने वाला एक विशेषाधिकार नही है, वल्कि वह एक स्वभाव-सुलभ गुण है, जिसका अभ्यास करना पड़ता है ।

९

We know accurately only when we know little, with knowledge doubt increases. —Goethe

—जब हम ज्ञान के भार से दबे नही रहते तो जितना जानते हैं उस

को शुद्ध और निर्दोष रूप मे, अर्थात् पूर्णरूपेण जानते हैं; ज्ञान की अजीर्णता के साथ चित्त मे भ्रम-सन्देह की भी वृद्धि होती है।

१०

Even the best things are not equal to their fame.

—Thoreau.

—सर्वोत्तम वस्तुए भी अपनी प्रसिद्धि के समान श्रेष्ठ नही होती।

◆ ◆ ◆